परदानशीन

[चित्रकार—श्रीयुत् भानु स्मार्त ।

सम्पादक—
शिवदेव उपाध्याय 'सतीश', बी०ए०, बी०एल०

मई, १९४०
वर्ष ८, खण्ड १६
अङ्क २, पूर्ण संख्या ९२
बैसाख, १९९७

तुम्हारे मन्दिरमें

मैं आज तुम्हारे मन्दिरमें,
पूजाका कुछ सामान लिये—
आया हूं, एक वीतरागी-सा—
केवल अपने प्राण लिये ।।

दो प्रहर बीत भी सके न,
तन जर्जर हो गया—बहुत जर्जर,
जैसे तरु एक, और उसमें,
सांसोंका गूंज रहा मर्मर ;
है शून्य दृष्टि, प्रतिविम्बित है
यह शून्य-शून्य-सा अमराम्बर,
तारोंके दो आंसू अटके हैं,
एक इधर है—एक उधर ;
यह फूल खिला है—बेचारा !!
केवल गिरनेका ज्ञान लिये ।। मैं आज—

यह कौन कह रहा है...."देखो—
सन्ध्या प्रातःमें है अन्तर,"
इन सांसोंके लघु - लघु प्रवाहमें,
बीत चुके हैं मन्वन्तर,
यह सब संसार सिमिट जैसे,
बन गया आज मेरा अन्तर,
चिर अन्धकारमें दीपक-सी
मेरी चितवन हो रही अमर;
मैं जागृत हूं ! मैं सोऊंगा क्यों ?
बिना एक पहिचान लिये ।। मैं आज—

—रामकुमार वर्मा, एम० ए०

हिटलर गोलीका शिकार होगा ?

श्री विजनकुमार शर्मा

हमें जलाके रहेंगे न आप भी ठण्डे
कि आहे सोख्ता-जांकी बेअसर नहीं होती।

"बर्चेस गार्डेनवाले मकानके १२ मीलके फासलेपर हिटलरकी लाश एक पनालेमें क्षत-विक्षत अवस्थामें पायी गयी......। दो सप्ताहसे बर्लिन चान्सलरीसे फ्यूरर गायब थे और काले रक्षकोंके सारे यूरोपमें खोजनेपर भी कहीं पता नहीं चला था।...फ्यूररके दो हत्याकारियोंने उनके शीश-हीन बदनके कोटके पाकेटमें एक पत्र रख छोड़ा है, जिसमें उन्होंने हत्याकी बात स्वीकार की है। सम्भवतः वे स्विजर-लैण्ड भाग गये हैं। यह बात निस्सन्देह प्रकट हो जाती है कि १९३३ में शक्ति प्राप्त करनेके बादसे फ्यूररने जो असंख्य हत्यायें कीं और यहूदियों एवं कैथलिकोंको जैसी-जैसी नारकीय यन्त्रणायें दीं, उनका प्रतिशोध लेना ही इस हत्याका उद्देश्य है।

"तृतीय जर्मन रीखके चान्सलरकी लाश आज दो बोरोंमें बंधी अन्त्येष्टि-क्रियाके लिए म्यूनिखमें रखी हुई है।

"इस बीच जेनरल हरमान गोयरिङ्ग और डा० जासेफ गोबेल्स, जो हिटलरके प्रायः २० साल तक साथी रहे हैं, गिरफ्तारकर मोबिट जेलमें डाल दिये गये हैं, जिसमें पिछले छः सालके भीतर उन्होंने हजारों जर्मनोंको भेजा था। उनपर हिटलरको खत्म कर स्वयं अधिकार ग्रहण करनेका अभियोग लगाया गया है।

"अस्थायी तौरपर रीख-अफसरोंका एक जत्था रीखका शासन कर रहा है।

"हत्याकारी जो पत्र छोड़ गये हैं, उसपर उनके हस्ताक्षरोंको देखनेसे पता चलता है कि उनमें एक यहूदी है, दूसरा कैथलिक। उनके नाम हैं स्टम्पा और टिल्वर्ज। पर गेस्टापोने छानबीन कर अनुमान लगाया है कि ये नाम काल्पनिक हैं।

"रीख-अफसरोंके जिस जत्थेके हाथमें शासनकी बाग-डोर आ गयी है, उसने घोषणा की है कि यहूदियों और कैथलिकोंको अब किसी प्रकारका डर नहीं रहा। सरकारी रेडियो-स्टेशनोंसे आधे-आधे घण्टेपर घोषणा होती रहती है कि वे अब निर्भय हैं; क्योंकि हिटलर मर चुका है और गोयरिङ्ग और गोबेल्स जेलमें बन्द कर दिये गये हैं।

"यद्यपि रेडियो द्वारा घोषणायें हो चुकी हैं कि यहूदियों और कैथलिकोंको मार्शल लाके समय—जो इस समय जारी है—यन्त्रणा देना मृत्युदण्डसे दण्डनीय होगा, फिर भी उनके विरुद्ध यत्र-तत्र विरोधी प्रदर्शन हुए हैं।

"यद्यपि इस बातकी घोषणा की जा चुकी है कि नात्सियोंसे किसीको किसी प्रकारकी यन्त्रणा अथवा हत्याकी आशङ्का नहीं करनी चाहिए, फिर भी हजारों भयत्रस्त यहूदी स्विजरलैण्ड, पोलैण्ड और जेकोस्लोवेकियाके सीमान्तोंपर भाग गये हैं।"

ये पंक्तियां हैं अमेरिका द्वारा प्रकाशित उस पुस्तककी, जिसमें कहा गया है :—

"ये पंक्तियां काल्पनिक हैं; किन्तु यह उस घटनाकी एक आनुमानिक रिपोर्ट है, जिसके सम्बन्धमें संसार किसी दिन सबेरे ही सुनेगा, और सुनेगा—दस वर्षोंमें नहीं, पांच वर्षोंमें अथवा दो वर्षोंमें भी नहीं—सम्भवतः सप्ताहों—सिर्फ दस सप्ताहोंके भीतर ही।"

जर्मनीसे गुप्त रूपसे प्राप्त समाचारोंके आधारपर इस लेखकका दावा है कि जर्मनीकी जनता हिटलरके पागलपन-भरे, क्रूर, काले कारनामोंसे इतनी तङ्ग आ गयी है कि वह हिटलरसे जर्मनीका पिण्ड छुड़ानेपर तुल गयी है। जर्मनीमें भीतर ही भीतर जिस असन्तोषकी आग धधक रही है, उसका विस्फोट अवश्यम्भावी है और सम्भवतः अतिनिकट भविष्यमें ही।

इतिहासमें ऐसे व्यक्तियोंका अभाव नहीं है, जिन्होंने अत्याचार ही को अपनो महत्ताका साधन बना रखा था। उन सब अत्याचारियोंमें चाहे जैसी भिन्नता रही हो; पर एक बात सबके सम्बन्धमें सच रही है कि जब उनके अत्याचारोंका प्याला लबालब हो गया है, तभी जानपर खेलकर कुछ लोगोंने उन्हें तलवारके घाट उतार दिया है। फ्लोरेन्सका शासक अलसेण्डो डी मेडिसी पन्द्रहवें लुईकी भांति अक्सर

कहा करता था कि "राष्ट्र मैं ही हूं।" और शासन-प्रबन्ध-को लेकर जिसकी ऐसी मनोवृत्ति हो, प्रजा उससे कितनी सन्तुष्ट रहेगी, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि अलसेण्डो तलवारके घाट उतार दिया गया। इसीलिए जब हिटलर कहता है :—"मैं जर्मनीका भाग्य हूं। मैं जैसा उचित समझता हूं, वैसा करता हूं।" और जब इस आधारपर वह रक्तकी विशुद्धता तथा जर्मनीके पुनर्गठनके नामपर पागलपन-भरे काम करता है, तब उसका भाग्य भी खोटा मालूम होता है और उसके जीवनकी आशङ्कायें प्रकट होने लगती हैं।

हिटलर—एक समस्या

हिटलरने यूरोपीय राजनीतिमें जैसी हलचल मचा रखी है, उसे लेकर राजनीतिमें ही वह एक प्रधान व्यक्ति होता, तब तो उतनी बात न थी। लेकिन वह तो आज मनोवैज्ञानिकोंके लिए भी विश्लेषणका विषय बन गया है। एमिल लुडविग तथा एच०जी० वेल्स जैसे विचारकोंने उसकी मनोवृत्तियोंको अति-असाधारण कहा है और कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिकोंने उसे पागल बताया है। अमेरिकाके तीन मनोवैज्ञानिकोंने —जिन्होंने चिकित्सा-शास्त्रमें भी विशेषता प्राप्त की है—न्यूयार्ककी विज्ञान-समितिकी प्रार्थनापर अपनी-अपनी सम्मतियां दी थीं।

यहूदी नारीपर नात्सी कोड़ोंके निशान।

मनिङ्गर क्लिनिक, टोमेका, कान्ससके प्रधान डा० कार्ल ए० मनिङ्गरने लिखा है :—"मनोवैज्ञानिकोंने वर्षोंकी खोजके बाद यह निष्कर्ष निकाला है कि भीषण महत्त्वाकांक्षायें, उत्पत्ति-सम्बन्धी विचित्र सिद्धान्त तथा उन्हें कार्यान्वित करनेके लिए भीषण अत्याचार और उन्माद, इन बातोंका पाया जाना पागलपनकी अवस्था है। असाधारण अवस्थाओंमें ये लोग या तो पागलखानेमें बन्द कर दिये जाते हैं, अथवा झक्की समझकर समाज इनकी उपेक्षा करता है। ऐसे व्यक्तियोंकी अहम्मन्यता, क्रूरता, सिद्धान्त-हीनता तथा उन्मत्तता उन्हें स्वयं बड़ी प्यारी लगती है, और यद्यपि अन्तमें चलकर यह उन्हें स्वयं खा जाती है, पर तब तक समाजको उनके उन्मत्त कार्योंसे बड़ी क्षति उठानी पड़ती है।"

बोस्टन यूनिवर्सिटीके प्रोफेसर डा० आस्कर जे० टीडरने लिखा है:—"हिटलरके व्यक्तित्वमें बचपन भरा हुआ है। उसका खिसियाना स्वभाव, घबराके रो पड़ना तथा दूसरे भावेद्वेगोंसे इसका पता चलता है। सम्भवतः वह दुःखवादी है। बच्चोंकी तरह खिसियाकर वह घोर अशान्ति मचा सकता है।"
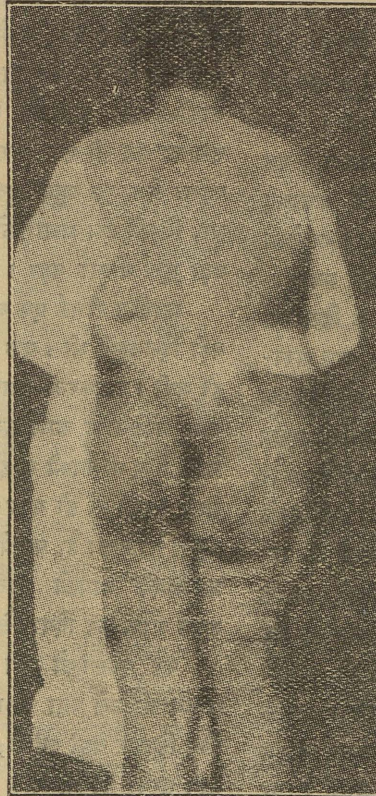
न्यूयार्कके डा० ए० ए० ब्रिटनने कहा है :—"हिटलरके जीवनका विश्लेषण करनेपर पता चलता है कि घृणा ही उसका धर्म है। यहूदियोंके प्रति उसकी घृणा तथा जर्मनोंके प्रति प्रेम, ये दोनों ही घृणाके कारण—दुःखको भुलानेके लिए सुखकी खोज—हैं। ऐसी हिंसक घृणाका अन्त स्वयं घृणा करनेवालेमें होता है।"

हिटलर—यहूदी है ?

तो इस प्रकार संसार-भरमें अशान्ति मचा रखनेवाला यह व्यक्ति है कौन ? वर्तमान युद्ध छिड़नेके बादसे हिटलरमें लोगोंकी दिलचस्पी और भी बढ़ गयी है और इसीलिए उसके प्रारम्भिक जीवनकालकी कितनी ही बातें प्रकाशमें आयी हैं।

बचपनसे ही हिटलरमें कुछ असाधारण बातें दिखाई पड़ती थीं। और बच्चोंकी अपेक्षा वह अधिक देर तक रोता, चिल्लाता और बुरी तरह शोर-गुल करता। चलने-फिरने लायक जब वह हुआ, तो उसकी दो आदतें दिखाई पड़ीं। तितलियोंको पकड़कर वह उनके पङ्ख नोचकर फेंक देता और

मेंढक जहां कहीं मिलते, पकड़कर उनकी टांगें चीरकर फेंक देता। डांट-फटकार, यहां तक कि मार खानेपर भी उसकी यह आदत नहीं छूटी।

उसकी मामी फ्रा० मोसियाने हिटलरके सम्बन्धमें लिखा है कि "एक बार जब वह चार वर्षका था, हम लोगोंने देखा, वह एक चूहेको पकड़कर यों ही जीता खा रहा है। उसके बापने यह देखकर उसे मारा-पीटा, पर वह इसपर भी हंसता रहा।"

इस बातके भी प्रमाण हैं कि हिटलरमें यहूदी रक्त ही नहीं है, बल्कि अवैध रूपसे उसका जन्म हुआ है। उसका बाप भी एक निर्धन किसान कन्याका अवैध पुत्र था।

हिटलरने अपनी आत्म-कथामें लिखा है कि बचपनमें वह बराबर लड़कोंका सरदार बन जाता और उन्हें कवायद कराया करता था। हिटलरने ऐसा लिखकर यह दिखानेकी कोशिश की है कि बचपनसे ही उसमें नेतृत्व करनेके स्वाभाविक गुण रहे हैं। इस सम्बन्धमें जार्ज ट्रालर नामक हिटलरके एक समकालीन व्यक्तिने लिखा है कि "हिटलरने यह बात सरासर झूठी लिखी है। बल्कि बचपनमें तो हम लोग उसे उजबक समझते थे। लेकिन उसमें एक बात थी। वह हम लोगोंको एकत्र करके कभी-कभी अपनी बात सुननेके लिए विवश करता और न सुननेपर बुरी तरह चिढ़ जाता और किसी भी पेड़के सामने खड़ा होकर, उसे श्रोता मानकर भाषण करने लगता। हम लोग उसे यहूदी समझते थे और क्यों न समझें, जब कि उसका बाप यहूदी था। हम लोग उससे डरते थे, क्योंकि वह बड़ा ही डरावना व्यक्ति था। यहूदी उन दिनों भी अच्छी नजरसे नहीं देखे जाते थे, इसलिए वह नहीं चाहता था कि उसका लड़का यहूदीके रूपमें तरह-तरहका अपमान सहन करे। अब तो हम लोगोंको यह सोचकर लज्जा आती है, पर बचपनमें हम लोग उसे यहूदी कहकर चिढ़ाया करते थे। उस समय हिटलर गुस्सेसे पागल हो जाता और यहूदियोंको गाली देने लगता था। कभी-कभी उसका बाप हम लोगोंको मारने दौड़ता और एक बार तो खिसियाकर बहुत दूर तक लाठी लिये हम लोगोंके पीछे दौड़ता रहा, जब तक कि जमीनपर वह गिर नहीं गया।

"इसलिए हिटलरका यह कहना कि बचपनमें ही वह हम लोगोंका सरदार था, सफेद झूठ है।"

नारियोंसे घृणा या प्रतिहिंसा ?

मनोवैज्ञानिकोंने इस बातका भी विवेचन किया है कि हिटलरको नारियोंसे इतनी घृणा क्यों है। यह घृणा क्या वास्तवमें घृणा ही है, अथवा उसकी कुचली हुई आशाओंके कारण उसका असन्तोष है, जो प्रतिहिंसाके रूपमें प्रकट हो रहा है। इस सम्बन्धमें उसके पिछले जीवनकी कहानियोंको बताया जाता है, जब हिटलरने प्रेम करनेकी कोशिश की थी, पर उसे सदा ही इसमें निराशा हुई। मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि इन निराशाओंके कारण ही आज उसे समस्त नारी-मात्रसे घृणा हो गयी है। यहूदियोंके प्रति उसकी घृणाका यह भी एक कारण बताया जाता है, क्योंकि उसका पहला प्रेम एक यहूदी युवतीसे ही २० सालकी उम्रमें हुआ था, जिसमें इस अभागेको निराशा ही नहीं हुई, बल्कि इसे बड़ा मूर्ख बनना पड़ा।

फ्रालिन टीनर्ट एक यहूदी युवती थी, जिसे राजनीतिमें बड़ी दिलचस्पी थी। एक होटलमें उसकी हिटलरसे मुलाकात हो गयी। हिटलरकी दशा उन दिनों अच्छी न थी। वह इधर-उधर छोटे-मोटे काम करके जो कुछ कमाता था, वह उसके पेटके लिए भी काफी न होता था; पर वह फ्रालिनकी ओर बुरी तरह आकर्षित हो गया। यद्यपि हिटलर जानता था कि यह यहूदी बालिका है, पर प्रेम जाति-धर्म कब देखता है। लेकिन फ्रालिनके बापको एडल्फकी हरकतें नापसन्द थीं। और उसने साफ कह दिया कि वह उसके घर न जाया करे।

पर एडल्फको गये बिना चैन कब पड़ता। एक दिन सन्ध्याको उसे पता चला कि उसका बाप घरपर नहीं है, इसलिए हिटलर वहां पहुंचा; पर पहुंचते ही फ्रालिनने बताया कि बाप घरपर ही मौजूद है। अतः वह बाहर चलने लगा। चलते-चलते उसने कहा कि अगर फ्रालिन उसके नामपर हवामें एक चुम्बन निछावर कर दे, तो वह उसे बहुत बढ़िया गीत गाकर सुनायेगा। और तब एडल्फ नीचे उतर आया। और कल्पना कीजिये कि सड़कपर एडल्फ खड़ा गा रहा है इस आशामें कि फ्रालिन तीसरी मञ्जिलसे उसके नाम एक चुम्बन निछावर कर देगी। एडल्फ वास्तवमें गा ही रहा था कि अकस्मात् खिड़की खुली। उसने सोचा, फ्रालिन खिड़कीपर आ रही है; पर खिड़कीकी ओर देखा, तो देखा कि उसका बाप

झांक रहा है। उसने ऊपरसे ही कोई चीज हिटलरपर फेंकी। बेचारा किसी प्रकार जान लेकर भागा।

एडल्फने इसके बाद और भी कई प्रयत्न किये थे, पर उसे कभी भी सफलता नहीं मिली। काफे फर्सरगमें लुडेनडार्फ और रोमकी बातचीतका एक अंश नीचे दिया जाता है, जिससे हिटलरके तत्कालीन जीवनपर कुछ प्रकाश पड़ता है।

गोयरिङ्ग पागलपनके रोगसे पीड़ित है ? उस कार्डकी नकल, जिससे वह पागलखानेमें डाला गया था। कार्डपर बायें सिरेपर गोयरिङ्गका नाम अङ्कित है।

लुडेन डार्फ—इस पागल व्यक्ति हिटलरके बारेमें अक्सर लोग मुझसे बात करते हैं। क्या यह शराब पीता, धूम्रपान करता, स्त्रियों अथवा बालकोंसे प्रेम करता है ?

रोम—इस तरहकी एक भी बुराई उसमें नहीं है, फील्ड मार्शल।

लुडे०—तुम्हारी रायमें कुछ भी मानवीय भावना उसमें है ?

रोम—उसे कई बार नारियोंसे प्रेम करनेमें विफलता प्राप्त हुई है। उसके सम्बन्धमें मुझे तो सिर्फ इतना ही मालूम हुआ है कि वह अपनी भाञ्जीके साथ सोता है।

लुडे०—ओह, यह तो कोई अपराध नहीं है, लेकिन उसकी उम्र क्या है ?

रोम— पन्द्रह वर्ष, मार्शल लुडेनडार्फ, यह एक विचित्र-सी बात है। युद्धके दिनोंमें उसने परिवारमें कोई भी दिलचस्पी नहीं दिखायी। लेकिन उसकी बहनकी लड़की बड़ी आकर्षक है। यही एक मानवीय भावना उसने दिखायी है।

लुडे०—तुम्हें ठीक तरहसे मालूम है, यह बात सच है ?

रोम—निश्चय ही। तीन महीने खुद मेरी भतीजीने अपनी आंखों यह सब देखा है। मुझे क्षमा करना, अगर मैं इसका विस्तृत वर्णन न करूं।

इसके बाद हिटलरकी इस भाञ्जीने गीभर हालकी घटनाके बाद आत्मघात कर लिया था।

नात्सी नेताओंका भ्रष्टाचरण

हिटलरने वर्तमान युद्धके प्रारम्भ होते ही इस बातकी घोषणा कर दी थी कि उसके बाद गोयरिङ्ग जर्मनीका डिक्टेटर होगा। इस गोयरिङ्गसे उसकी पहली मुलाकात उन्हीं दिनों हुई थी, जिन दिनोंकी बात ऊपर लिखी जा चुकी है। युद्धके दिनोंमें गोयरिङ्ग वायुयान-उड़ाकेके रूपमें बड़ी ख्याति प्राप्त कर चुका था। कितने ही लेखकोंने इसका कारण यह बताया है कि वह सङ्खिया काफी परिमाणमें नियमानुकूल खाया करता है। हिटलरने पहली मुलाकातमें ही जान लिया कि उसके पास काफी पैसे हैं और वह सेनाका अवसर-प्राप्त कप्तान है। गोयरिङ्गने इतनी सम्पत्ति कैसे एकत्र कर ली, इसके सम्बन्धमें भी तरह-तरहकी बातें कही जाती हैं। कहते हैं कि हन्नुसें नामक एक जादूगरके साथ रहकर ठग-विद्या द्वारा उसने बहुत पैसे एकत्र किये। बादको हन्नुसेंको किस प्रकार गोलीसे उड़ा दिया गया, यह कहानी यहां अनावश्यक है। रोमके जरिये ही हिटलर और गोयरिङ्गकी भेंट हुई थी। और रोमके जरिये ही एक दूसरे धनी व्यक्ति अर्न्स्ट हेन्सटेलसे भी मुलाकात हुई। हिटलर, गोयरिङ्ग, हन्नुसें और हेन्सटेलने अपने दलको बढ़ाना शुरू किया। पहले दो व्यक्ति सङ्गठन करनेमें लगे और पिछले दो व्यक्तियोंने पार्टीके लिए पैसा पानीकी तरह बहाना शुरू किया।

लेकिन इस पैसेका सब सदुपयोग ही नहीं करते थे। शराब और स्त्रियोंपर भी उनका खर्च बहुत अधिक पड़ता था। इसके लिए एक बार हिटलरको चेतावनी भी दी गयी थी, जिसमें कहा गया था:—

"हम लोग जानते हैं कि फ्यूरर कलाकार (पोस्टकार्डपर रङ्गीन तसवीरें बनानेवाले) हैं, और सुन्दरियोंके साथ उनकी विलासिताको बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए, पर उन्हें
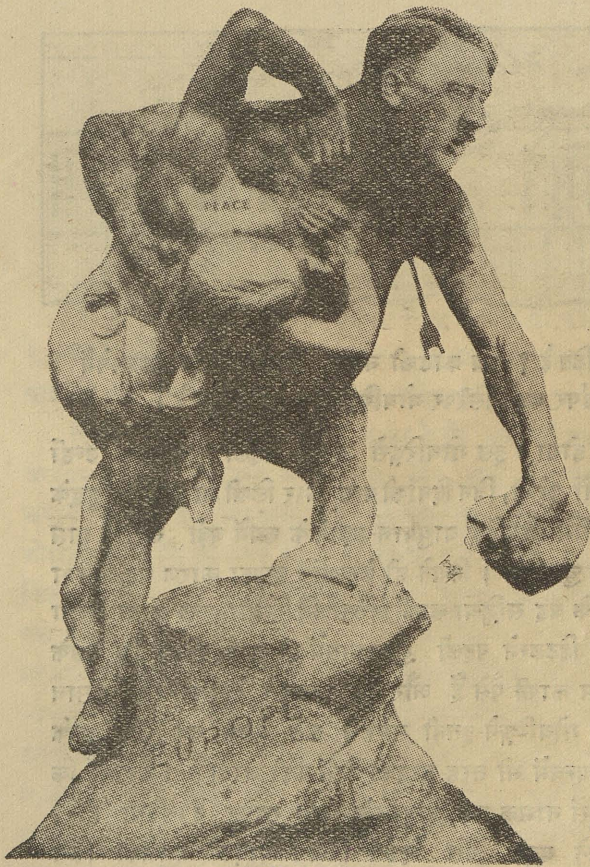
शान्ति और हिटलर।

इस बातको भी महसूस करना चाहिए कि उनपर तथा उनके किये हुए कार्योंपर सबकी नजर लगी रहती है और उनके कार्योंसे ही हमारे दलके सम्बन्धमें लोग राय कायम करेंगे, इसलिए उन्हें सावधान होकर चलना चाहिए।"

इस सम्बन्धमें एक मजेदार बात और भी जान लेनी चाहिए। सुन्दरियोंके साथ विलासलीलाकी जो बातें कही गयी हैं, उनके सम्बन्धमें बात यह है कि वास्तवमें वे सुन्दरियां नहीं होती थीं। नारी-वेषमें वे होते थे सुन्दर बालक, जिन्हें गोयरिङ्गकी देख-रेखमें सुन्दरियोंकी भांति तैयार किया जाता था। उन दिनों इस प्रकारकी कुत्सित मनोवृत्ति किस रूपमें सैनिकोंमें फैल गयी थी, इसका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि रोम खुलेआम कहा करता था कि सम-यौन-सम्बन्ध प्रत्येक जर्मनका जन्मगत अधिकार है। स्वयं रोम कैसी कुत्सित वृत्तिका आदमी था, इसके सम्बन्धमें उसकी हत्याके प्रसङ्गपर कुछ लिखा जायगा।

एक लेखकने लिखा है:—नात्सी पार्टीकी एक बड़ी विचित्रता सम-यौन-सम्बन्धी झुकावमें दिखाई पड़ती है। हजारों युवकोंमें यह बीमारी दिखाई पड़ी। हिटलर सम-यौन-सम्बन्धमें स्वयं चाहे दिलचस्पी न लेता रहा हो, पर इसको वह इतना बुरा न मानता था, यह इसीसे जाहिर है कि उसके आस-पास इस रोगमें मुबतिला कितने ही लोग थे और उसने उन सबको बरदाश्त किया। ......शीलर नामक एक युवकमें हिटलरकी दिलचस्पी मालूम होती थी और कहते हैं कि १९३० में उसने शीलरको कितने ही प्रेम-पत्र लिखे थे। उसने ये प्रेम-पत्र सुरक्षित रखे थे, लेकिन हिटलरके झक्की स्वभावसे घबराकर शीलर अन्तमें स्विजरलैण्ड भाग गया। उसे अपनी जानका भी खतरा था, क्योंकि हिटलर स्वयं डर गया था कि शीलर उसके प्रेमपत्रोंको कहीं प्रकट न कर दे। यद्यपि नात्सियोंमें यह रोग बुरी तरह फैला था, पर इससे हिटलरका राजनीतिक जीवन ही जनताके लिए खत्म हो जाता, इसमें सन्देह नहीं।

"राइखस्टाग जल रहा है"

जर्मनीकी हालत जैसी होती जा रही थी, उसमें हिटलर जैसे धूर्तके बढ़नेके काफी अवसर थे। जैसा कि कहा गया है, हिटलरका आतङ्कवादमें सदासे विश्वास रहा है। पर इसके लिए आधार क्या निकाले जायें, इसकी तलाशमें वह सदासे था। यहूदियोंके प्रति गोबेल्स जैसा प्रचार करता रहा है, उसका परिणाम यह हुआ कि यहूदियोंके सम्बन्धमें सभीकी धारणायें बदल गयीं। इस मनोवृत्तिका एक मनोवैज्ञानिक पहलू भी है। कितनी ही बार कहा गया है कि हिटलर बिना तनिक भी रक्तपात किये आगे बढ़ता गया है; पर वास्तवमें सचाई यह है कि उसने जर्मन जनतापर जैसा आतङ्क जमा रखा, उसके परिणाम-स्वरूप उसका विरोधी कुछ भी करनेमें असमर्थ हो गया। हिटलरकी यह अपनी 'टेकनीक' रही है कि आतङ्कित करके वह आत्म-समर्पण करनेपर विवश कर दे। राइखस्टागके अग्निकाण्डको लेकर भी इसीलिए लोग विश्वास करते हैं कि ये सब काम उसीने कराये थे।

राइखस्टागके अग्निकाण्डसे सारे जर्मनीमें एक साथ ही तहलका मच गया। और इस बातके अनुमान लगाये जाने लगे कि आखिर ऐसा अग्निकाण्ड हो कैसे गया। इस अपराधमें लुबे नामक एक २५ वर्षीय युवक गिरफ्तार किया गया। कहा जाता है कि वह रोमका बाल-मित्र था। गोबेल्स और गोयरिङ्गने इस अग्निकाण्डके लिए रोमसे मिलकर पहलेसे षड्यन्त्र कर रखा था और जब यह घटना हो गयी, तो नात्सी सरकारने घोषणा की—"जर्मनीके बोल्शेविकों द्वारा की जानेवाली जर्मनीकी यह सबसे भीषण घटना है।" और इस घोषणाके साथ ही राइखस्टागके सभी कम्यूनिस्ट सदस्यों तथा अन्यान्य कम्यूनिस्टोंको तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। एक ओर दमकलों द्वारा राइखस्टागकी आग बुझायी जा रही थी और दूसरी ओर साम्यवादियों, समाजवादियों, शान्तिवादी लेखकों, डाक्टरों, वकीलोंको सोतेसे जगा-जगाकर गिरफ्तार किया जा रहा था।

न्याय और प्रतिहिंसा हिटलरका पीछा कर रहे हैं।

अदालतमें पेश किये जानेपर लुबेने जो बयान दिया था, उसके सिलसिलेमें उत्तेजित होते हुए उसने कहा थाः—"कहां हैं वे विश्वासघाती हिटलर, गोयरिङ्ग और गोबेल्स ? और रोम कहां है ? मुझे नहीं, उन्हें आज इस अदालतमें खड़ा किया जाना चाहिए था। उन्होंने ही मुझे आग लगानेके लिए उभाड़ा और वचन दिया था कि वे मुझे बचा लेंगे। उन्होंने कहा था—"

लुबेको और कुछ कहने नहीं दिया गया। अधिकारियोंको आशङ्का थी कि उसे पूरा बयान देनेका अवसर दिया गया, तो वह न जाने कैसा भण्डाफोड़ करने लगे।

रोमकी सनसनीखेज हत्या

कैप्टेन रोम उन व्यक्तियोंमें था, जिनके कारण हिटलरके राजनीतिक अभ्युदयमें बहुत बड़ी सहायता मिली। वह उन दिनों नात्सी सेनाका कमाण्डर भी था। अतः उसका प्रभाव इतना बढ़ गया था कि हिटलरको इससे आशङ्का होने लगी और वह उससे छुटकारा पानेका अवसर ढूंढ़ने लगा। एक दिन उसने एक पत्र लिखाः—"मेरे परम मित्र एवं साथी लड़ाके, नेशनल सोशलिस्ट आन्दोलन और जर्मन जातिकी अथक सेवा करनेके कारण तुम्हें धन्यवाद देनेके लिए मेरी आन्तरिक प्रेरणा होती है। क्या तुम एक बार मुझसे आकर मिलोगे मेरे सबसे प्यारे मित्र ?"

रोमने पत्र पढ़ा और बिना किसी सन्देहके ९ जून १९३४ को उससे मिलने चल पड़ा। लगभग ९ घण्टे तक उनमें बातें होती रहीं। अन्तमें हिटलरने रोमसे कुछ दिनों तक विश्राम करनेके लिए कहा। इसके बाद रोमसे सदाके लिए पिण्ड छुड़ा लेनेका जो षड्यन्त्र था, उसका अन्तिम दृश्य अत्यन्त

भीषण है। रातके सन्नाटेमें जब रोम तथा उसके साथी सो रहे थे, हिटलर और गोबेल्स छःनली भरी पिस्तौल लिये भीतर पहुंचे। उनके आगे-आगे अङ्ग-रक्षक दोनों हाथोंमें भरी पिस्तौलें लेकर चल रहे थे। रोमका दरवाजा खोला गया। वह सोनेका पायजामा पहने पड़ा था। कहते हैं कि एक नवयुवक उसके साथ नङ्गे-धड़ङ्गे पड़ा था। हिटलरने पहुंचते ही रोमको फटकारना शुरू किया कि उसने हिटलरको अधिकारच्युत करनेके लिए षड्यन्त्र किया था। रोम ज्यों-का-त्यों अचम्भेमें पड़ा रह गया; क्योंकि उसके ही प्रभावसे जो व्यक्ति राजनीतिक प्रभुता प्राप्त कर चुका था, वही उसे गिरानेकी कोशिश करेगा, यह बात समझमें न आयी। जब कि उसने वास्तवमें ऐसा कुछ कभी किया ही नहीं था, तब वह आश्चर्यसे हिटलरका मुंह ताकता रह गया कि हिटलरने उसे कोड़ोंसे पीटना शुरू कर दिया।

दूसरे कमरेमें हाइने सोया था। इस सम्बन्धमें सरकारी रिपोर्टके अनुसार "हाइने अपने शोफरके साथ नङ्गी-धड़ङ्गी अवस्थामें सो रहा था। वे दोनों सम-यौन-सम्बन्ध रखनेवाले पापी थे। दोनोंको उसी अवस्थामें गोली मार दी गयी।" रोमसे बार-बार कहा गया कि वह आत्मघात कर ले, लेकिन जब उसने इस बातपर जोर डाला कि हिटलर खुद उसे अपना निशाना बनाये, तो उसे गोली मार दी गयी और वह वहीं ढेर हो गया।

इसके पश्चात् तीन दिन तक जर्मनीमें भीषण आतङ्क बना रहा। लगभग १२०० आदमियोंको गोलीसे उड़ा दिया गया। यह सब काण्ड गोयरिङ्गने किया, जिसके लिए राइखस्टागमें हिटलरने अपने ऊपर जिम्मेदारी ली। ३० जूनके इस हत्याकाण्डके बाद गिरफ्तारियोंका तांता लगा और बिना मामला चलाये सन्दिग्ध व्यक्तियोंको नजरबन्दीमें डाला जाने लगा। कहते हैं कि कुल ७३ जेलोंमें प्रायः ४६०,००० व्यक्तियोंको बन्द किया गया और हिटलर द्वारा होनेवाली सारी हत्याओं-की संख्या प्रायः १२६,००० बतायी जाती है। इन सबका कारण नात्सी अधिकारियों द्वारा यह बताया जाता है कि "अगर इनके साथ ऐसा बर्ताव न किया गया होता, तो देशभक्त जर्मन जनता इनका रस चूस लेती, क्योंकि इन्हीं दुष्टोंने नवम्बर १९१८ में जर्मनोंको विद्रोहके लिए उभाड़ा था।"

× × ×

यह है उस व्यक्तिकी कहानी, जिसके कारण आज दूसरा महायुद्ध छिड़ा हुआ है। संसार आज भीषण आतङ्कसे कांप रहा है और निरीह प्राणी अपनी दयनीयतामें सोचता है कि कैसा भीषण अन्धकारपूर्ण भविष्य उसके सामने है।

लेकिन क्या जर्मनी और उसका वर्तमान भाग्य-विधाता सुरक्षित है? उक्त अमेरिकनने, जिसके शब्द ऊपर दिये गये हैं, लिखा है:—जर्मन चान्सलरीके भयसे कांपते और रोते, घबराते हुए एक व्यक्तिकी गोलियां इन्तजार कर रही हैं। वह अपनी खिड़कीसे व्याकुल नेत्रोंसे ताकता और व्यग्र हो उठता है। असंख्य पुरुषों, स्त्रियों और बच्चोंके खूनकी डरावनी तस्वीरें उसके दिमागमें नाच उठती हैं और वह घबराकर आंखें बन्द कर लेता है, जैसे वे लहूमें लथपथ उसके सामने ही रक्तरञ्जित भूमिमें गिरकर ढेर हो रही हों!
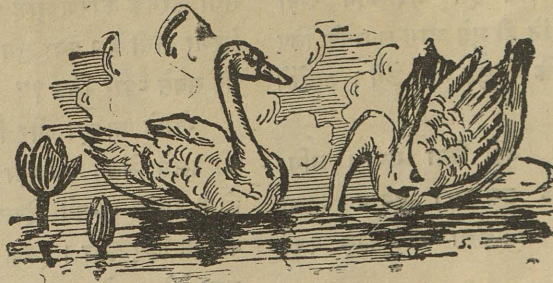
आधुनिक युद्धमें विज्ञानकी ध्वंस-लीला

श्री भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव, एम० एस-सी०

युद्धमें आग्नेय पदार्थका इस्तेमाल ११ वीं शताब्दीमें चीनवालोंने किया था। जलते हुए आगके शोले दुश्मनकी फौजोंपर हाथसे या तीर-कमानके जरिये फेंके जाते थे। कुछ काल उपरान्त बारूदका प्रयोग भी युद्ध-स्थलपर किया जाने लगा। वैसे तो चीनवालोंने बारूदकी ईजाद ६ ठीं शताब्दीमें ही कर ली थी; किन्तु इसका प्रयोग आतिशबाजी तक ही कई सदियों तक सीमित रहा। तेरहवीं शताब्दीमें मङ्गोलियामें सबसे पहले हाथसे फेंके जानेवाले बमगोले बने। फिर इंगलेण्ड, फ्रान्स, इटली आदि देशोंमें भी लोग बारूदका इस्तेमाल करना जान गये। यूरोपमें सबसे पहले १२४७ में बारूदका प्रयोग युद्ध-स्थलमें किया गया था।

चौदहवीं शताब्दीमें सर्वप्रथम तोपें तैयार हुईं। टर्कीके सुलतान द्वितीय मुहम्मदने एक विशालकाय तोप ढलवायी थी, जिससे ४ मन वजनके गोले दागे जाते थे। इस तोपकी आवाज १३ मीलके फासले तक सुनाई देती थी! गत यूरोपीय महायुद्धमें जर्मनीकी 'बिग बर्था' नामक तोपने ८० मीलके फासलेपर ४॥ मनके वजनवाले बमके गोले फेंके थे। इस युद्धमें तोपके गोले तैयार करनेमें मित्रराष्ट्रों तथा जर्मनी दोनोंने बेतहाशा रुपये फूंके थे। १९१७ की पहली जनवरीसे सन्धि-दिवस तक फ्रेञ्च फैक्टरियोंमें प्रतिदिन १ लाख ७९ हजार छोटे साइजके बमगोले और ४०००० बड़े साइजके तैयार किये गये थे।

विषाक्त गैसोंका इस्तेमाल भी गत महायुद्धमें ही बड़े पैमानेपर हुआ था। किन्तु १३ वीं शताब्दीमें मङ्गोल लोगोंने यूरोपके अन्दर घुसनेके प्रयत्नमें जो लड़ाइयां लड़ीं, उनमें शत्रुकी लाइन्समें उन्होंने बिष्ठा-सरीखी बदबूदार चीजें फेंकी थीं, ताकि शत्रुदलके सैनिक घबराकर पीछे हट जायें। पिछले महायुद्धमें लगभग १२ किस्मकी जहरीली गैसें कामयाबीके साथ इस्तेमाल हुई थीं, यद्यपि ३००० से भी ज्यादा किस्मकी भिन्न जहरीली गैसें केमिस्ट्री जाननेवालोंको मालूम हैं।

आजकलके एक बड़े आकारके बम बरसानेवाले वायुयानमें केवल पांच व्यक्ति सवार होते हैं। एक वायुयान-सञ्चालक—पाइलट, दूसरा निशाना लेकर बम गिरानेवाला, तीसरा रेडियोके सङ्केतसे वायुयानको ठीक रास्तेपर ले जानेवाला और इनके अतिरिक्त दो मशीनगन चलानेवाले सैनिक होते हैं। पाइलटकी सीटके नीचे पेंदेपर लेटा हुआ निशानेबाज एक विशेष यन्त्रके जरिये निशाना साधता है। इस निशानेबाजके दाहने हाथके पास स्विच लगे रहते हैं, जिन्हें दबाते ही, पीछे रखे हुए बम एक-एक करके नीचे गिरते हैं। जिस यन्त्रसे निशाना साधा जाता है, उसमें वायुयानकी ऊंचाई, उसकी दिशा तथा रफ्तार सबका लिहाज किया गया होता है। और यदि ठीक तौरसे इस यन्त्रका इस्तेमाल किया जाय, तो करीब शत-प्रतिशत निशाना ठीक जगहपर बैठता है।

बम बरसानेके भी कई तरीके प्रचलित हैं। तेज उड़ते हुए वायुयानसे जब बमगोला गिरता है, तो वह ठीक लम्बवत् नीचेको नहीं गिरता, बल्कि खम खाकर आगेको झुकाव लिये हुए मीलों आगे गिरता है। कभी-कभी वायुयानको सीधे निशानेकी ओर उड़ाते हैं और तब सीधमें बम गिराकर फौरन् वायुयानको झटकेके साथ ऊपर उठा लेते हैं। बम गिरानेके लिए नन्हें-नन्हें पैराशूटका भी इस्तेमाल अब किया जाने लगा है। जिस क्षण पैराशूट खुलता है, उस क्षणसे जमीनपर पहुंचने तक पैराशूटवाला बम एकदम लम्बवत् नीचे जाता है।

बम गिरानेवाले इंगलैण्डके वायुयानोंकी रफ्तार २९० मील तक पहुंच चुकी है। टङ्कीमें एक बार पेट्रोल भरकर ३३०० मीलकी यात्रा इन जहाजोंपर एक उड़ानमें पूरी की जा सकती है। इसके माने यह हुए कि सुबह ६ बजे लन्दनसे रवाना होकर दोपहरको मास्कोमें गोले बरसाकर शाम तक ये वायुयान पुनः लन्दनके एयरोड्रोममें वापस आ सकते हैं।

स्वयं काम करनेवाले वायुयान—तोप दागनेवाले सैनिकोंको निशानेबाजीकी शिक्षा देनेके लिए नयी तरकीबें ईजाद की गयी हैं। पहले वायुयानके पीछे एक लम्बी रस्सीमें रबरका गुब्बारा बांध देते थे। जब वायुयान आसमानमें
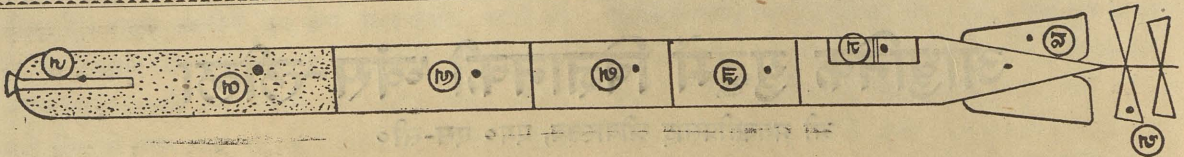
टार्पेडो :—(ट) फ्यूज़पिन, (ठ) डायनामाइट, (ड) संकुचित वायु, (ढ) गहराईपर नियन्त्रण रखनेका यन्त्र, (ण) इञ्जिन, (त) जाइरास्कोप, (थ) साधनेका ब्लेड, (द) प्रापेलर।

उड़ता, तो उसके साथ पीछे-पीछे यह गुब्बारा भी उड़ता था। इसीपर अन्य हवाई जहाजोंके सैनिक निशाना मारनेका अभ्यास करते। किन्तु ऐसे गुब्बारेको तेजीके साथ घुमा-फिराकर गोलीके निशानेसे बचा सकना सम्भव न था। फिर इसकी शक्ल भी हवाई जहाज-सरीखी न थी। अब निशानेकी प्रैक्टिसके लिए माडल हवाई जहाज इस्तेमाल होते हैं। ये हवाई जहाज एक नन्हें-से इञ्जिनकी शक्तिसे आकाशमें पूरे एक मीलकी उंचाई तक उड़ सकते हैं।

एक मोटरकी छतपर रखकर इस माडल वायुयानको चांदमारीके मैदानमें ले आते हैं। वहांपर गुलेलके सिद्धान्त-पर बने हुए एक स्टैण्डपर इसे ठीक कर देते हैं। स्टैण्डमें लगे हुए लचीले तारको खींचकर जब उसे छोड़ते हैं, तो इस झटकेको खाकर माडल वायुयान आकाशमें तीरकी भांति छूट पड़ता है। इस माडल वायुयानपर कोई चालक नहीं बैठता। किन्तु इसपर रेडियो-तरङ्गोंकी मददसे नीचे मैदानमें बैठा हुआ बेतारके तारका आपरेटर पूर्ण नियन्त्रण रखता है।

स्टैण्डपर ज्योंही वायुयान आगे बढ़ा, मैदानमें बैठे हुए आपरेटरने बेतारके तारके यन्त्रपर बटन दबाया और माडलका इञ्जन चालू हो गया। जमीनपरसे ही आपरेटर डायल घुमा-घुमाकर इस माडल वायुयानको चाहे जिस दिशामें उसकी इच्छा हो, ले जा सकता है। मानो सचमुच शत्रुका जहाज आक्रमणसे बचनेके लिए तरह-तरहके पैंतरे बदल रहा है।

गोली लगनेपर यह माडल वायुयान बेतहाशा जमीनपर नहीं गिरता। इसकी पीठपर एक पैराशूट बंधा हुआ होता है। आपरेटरने ज्योंही देखा कि माडलको गोली लग गयी है, उसने फौरन् दूसरा स्विच दबाया और माडलका पैराशूट खुल गया। अब धीरे-धीरे माडल वायुयान जमीनपर उतर आया। इसके अस्थिपञ्जरको जमीनकी टक्करसे कोई हानि नहीं पहुंची।

बम भी कई प्रकारके होते हैं, यद्यपि वे सब एक ही सिद्धान्तपर बने होते हैं। मजबूत लोहेकी चद्दरकी गावदुम-नुमा शक्ल बनी होती है। गावदुम (स्ट्रीम लाइन) होनेसे हवाकी रुकावटका प्रभाव बमपर नहीं पड़ता, अतः तीव्र वेगसे यह अपने निशानेकी ओर बढ़ता है। प्रत्येक बमके अन्दर तीन मुख्य भाग होते हैं। एकदम सामने ही सिरेपर फ्यूज लगा होता है, फिर उसके पीछे विस्फोटक पदार्थ भरे होते हैं। और सबसे पीछे, पूंछपर पतवार-जैसे फाल लगे होते हैं, जिनका काम यह होता है कि बमको सीधे रास्तेपर रखें। चित्रमें बमके तीनों भाग स्पष्ट दिखाये गये हैं।

सामने लगा हुआ फ्यूज टक्कर खाते ही भीतरकी ओर तुरन्त घुसकर विस्फोटक पदार्थसे जा टकराता है। फलस्वरूप बमके अन्दरके तमाम रासायनिक पदार्थ विस्फोट करके बाहरको फूटकर निकलते हैं। तीव्र वेगके साथ बमके बाहरी हिस्सेके लोहेका खोल नन्हें-नन्हें टुकड़ोंमें चारों तरफ फैल जाता है। तुरन्त विस्फोट होनेवाले बमका कार्यक्षेत्र बहुत ही विस्तृत होता है; किन्तु किसी जहाज या इमारतको भेदकर बहुत दूर अन्दर तक ये नहीं जा सकते। अतः तुरन्त विस्फोटक बम ऐसे मौकोंपर इस्तेमाल किये जाते हैं, जहां किसी भीड़ इत्यादिको क्षति पहुंचानी होती है।

तहखानेके अन्दर तक बम घुस जाय, इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिए दूसरे प्रकारका फ्यूज इस्तेमाल करते हैं। यदि ऐसा बम किसी चीजसे टकराता है, तो यह फौरन ही विस्फोट नहीं करता, बल्कि उस चीजको भेदकर काफी दूर तक अन्दरको घुस जाता है और तब यह विस्फोट करता है। ऐसा फ्यूज बमकी दुमके पास लगा रहता है। फ्यूजकी पिन एक स्क्रूमें लगी होती है और उस स्क्रूके बाहरी हिस्सेपर ब्लेण्ड-वाली पङ्खेनुमा एक नन्हीं-सी चर्खी फिट की हुई रहती है। जब बम नीचेकी ओर तेजीके साथ गिरता है, तो हवाके वेगसे यह चर्खी उलटी ओर घूमने लगती है और इस तरह बमके

सौ-दो सौ फीट नीचे तक पहुंचते-पहुंचते तक चर्खी स्क्रूसे बाहर निकल पड़ती है। किन्तु फ्यूजकी पिनको एक कमानी विस्फोटक पदार्थसे अलग किये रहती है, इस कारण चर्खीके बाहर निकलते ही यह पिन विस्फोटक पदार्थ तक नहीं पहुंच जाती। जिस वक्त किसी मकानकी छतसे यह बम टकराता है, अपनी तीव्रगतिके कारण यह छतको भेदकर अन्दर पहुंच जाता है। १०००० फीट-की ऊंचाईसे गिरनेपर जमीनपर पहुंचते-पहुंचते बमकी रफ्तार ९०० मील प्रति घण्टे पहुंच जाती है। जिस वक्त यह छतसे टकराता है, एकाएक उसकी रफ्तारमें भारी कमी हो जाती है; किन्तु फ्यूज पिन अपनी पहली रफ्तारसे ही आगेको बढ़ती है। नतीजा यह होता है कि स्प्रिंगको दबाकर यह पिन आगेको सरक आती है और विस्फोटक पदार्थसे जा टकराती है और समूचा बम फूट उठता है। स्प्रिंग दबाकर पिनको आगे बढ़नेमें थोड़ा समय लगता है, करीब एक सेकेण्डका बीसवां भाग। किन्तु इतनी देरमें बम मकानके अन्दर ३०,४० फीट तक प्रवेश कर चुका होता है। अन्दर घिरी हुई जगहमें विस्फोट होनेसे इसका वेग भी बहुत बढ़ जाता है और इस प्रकार ऐसे बम मजबूत इमारतोंको एक लमहेमें धराशायी कर सकते हैं। बम-वर्षासे रक्षा करनेके लिए बनाये हुए तहखाने और खाइयां भी इस बमके प्रभावसे बच नहीं सकतीं।

टार्पेडोके फटनेके बीस सेकेण्डके बाद जहाजकी दशा।

आग्नेय बम—कुछ बम निरे आग लगानेवाले ही होते हैं। इनका आकार बहुत ही छोटा होता है—प्रायः ६ इञ्च या हदसे हद १२ इञ्च लम्बे ये होते हैं। इनकी मोटाई आध इञ्चके बराबर होती है। आग्नेय बमके अन्दर थर्माइट भरते हैं। थर्माइट वास्तवमें अल्यूमिनियमके चूर्ण और लोहेके मैग्नेटिक आक्साइडका मिश्रण होता है—एक फ्यूजसे पहले मैग्नीसियमके एक पतले तारमें आग लगती है, फिर इसकी तेज गर्मीसे थर्माइट भी जल उठता है। थर्माइटके जलनेसे असह्य ताप उत्पन्न होता है—२९०० डिग्री! कड़ेसे कड़ा इस्पात उस तापक्रमपर पिघलकर पानी हो जाता है। थर्माइट-को जलनेके लिए आक्सिजन या हवाकी जरूरत भी नहीं होती। अतः पानीके अन्दर भी थर्माइटका मिश्रण बखूबी जलता है। आग्नेय बमकी आग बुझानेके लिए पानीका प्रयोग करना निरी मूर्खता होगी, क्योंकि उस ऊंचे तापमानपर पानी तुरन्त ही भाप बन जाता है। केवल बालू

और रेत ही ऐसे बमोंसे हमारी रक्षा कर सकती है।

एक चौड़ी सन्दूकचीमें कई सौ आग्नेय बम रखे रहते हैं। और पूरा केस नीचेको गिराया जाता है। तेज रफ्तार पकड़ लेनेके कारण ये नन्हें-नन्हें बम सन्दूकचीको तोड़कर तितर-बितर हो जाते हैं और कई गजके घेरे तक पहुंच जाते हैं। इस ढङ्गसे दो-तीन वायुयान समूचे शहरमें देखते-देखते आग लगा सकते हैं। अकसर तो ऐसा भी करते हैं कि पहले आग्नेय बमोंकी वर्षा की, फिर तुरन्त ही विषाक्त गैससे भरे हुए बम गिराये। ऐसे मौकेपर मस्टर्ड गैस इस्तेमाल करते हैं। बमके अन्दर द्रव महाई भरा रहता है—जरा-सी बारूदकी मददसे विस्फोट कराकर इस द्रव पदार्थको गैस-रूपमें परिणत कर लेते हैं। जमीनपर जब बम फूटता है, तो यह भारी गैस धरातलपर सब जगह पहुंच जाती है। भारी होनेके नाते खाइयों और तहखानोंके अन्दर भी यह पहुंच जाती है।

देरसे विस्फोट करनेवाला बम—(च) नुकीला मजबूत सिरा, (छ) डायनामाइट, (ज) बारूद, (झ) साधनेवाले ब्लेड, (ञ) दुममें लगा हुआ फ्यूज।

इस गैसमें सबसे भयानक गुण यह है कि इसके अन्दर गन्ध नहीं होती। इसे सूंघनेके कुछ समय पश्चात् आंखें सूज आती हैं और शरीरकी त्वचापर जगह-जगह छाले उभर आते हैं। इस गैसका घातक प्रभाव तो नहीं पड़ता; किन्तु सैनिकों तथा नागरिकोंकी कार्यक्षमता कुछ कालके लिए एकदम नष्ट-सी अवश्य हो जाती है।

टार्पेडो—आधुनिक युगकी सबसे अधिक खतरनाक युद्ध-सामग्रियोंमें टार्पेडोका स्थान सर्वोपरि है। टार्पेडोसे मिलता-जुलता सर्वप्रथम अस्त्र अमेरिकन गृह-युद्धमें इस्तेमाल किया गया था। एक हलके कनस्टरमें विस्फोटक पदार्थ भर देते थे, और उसके सिरपर एक टोपी लगी रहती थी। एक लम्बे लग्गेके सिरेमें यह कनस्टर बंधा रहता था। रातके अंधेरेमें एक छोटी-सी किश्तीपर बैठकर शत्रुके जहाजी बेड़ेके नजदीक लग्गेमें बंधे हुए कनस्टरको ले जाते थे और उसे विस्फोट कराकर शत्रुके जहाजको बेहद क्षति पहुंचा देते थे। किन्तु अकसर ऐसा भी होता था कि खुद अपनी किश्ती भी उसी विस्फोटके चपेटमें आ जाती थी। सैनिक दृष्टिसे इस अस्त्रमें यह एक भारी दोष था। अतः सेना-विभागने इस अस्त्रको नहीं अपनाया। हां, कितने ही उत्साही आविष्कारक इस फिक्रमें अवश्य लग गये कि ऐसी किश्ती बनायी जाय कि उसमें विस्फोट पदार्थ भरकर उसे किसी खास दिशामें रवाना कर दिया जाय, तो वह अपने आप बिना किसी नाविककी मदद-के अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुंचकर विस्फोट कर जाय।

तुरन्त विस्फोट करनेवाला बम—(क) बमको साधनेवाले ब्लेड, (ख) मजबूत लोहेकी चद्दर, (ग) डायनामाइट, (घ) बारूद, (ङ) सामनेका फ्यूज।

इस क्षेत्रमें लगभग १८६० में एक अंगरेज ह्वाइटहेडने सर्वप्रथम सफलता प्राप्त की। उसने कई सालके अनुसन्धान-के उपरान्त एक वास्तविक टार्पेडोका निर्माण किया, जो

संकुचित हवा (High pressure)के बलपर तीव्र गतिसे करीब आध मील तक जा सकता था। आधुनिक टार्पेडोका जन्म मानो उसी समय हुआ। ह्वाइटहेडके इस आविष्कारके कुछ ही दिन पहले आस्ट्रियाके एक सैनिक अफसरने एक ऐसे टार्पेडोके बनानेकी सोची थी, जिसमें चालक शक्ति एक भापके इञ्जिनसे टार्पेडोको मिलती रहे। टार्पेडोके अन्दर ही इस इञ्जिनको रखनेकी स्कीम थी; किन्तु महीनों मगज खपानेपर भी उसे कामयाबी हासिल न हुई और तब हारकर ह्वाइटहेडसे सलाह लेने गया और उक्त टार्पेडोको, जो संकुचित हवाके बलपर चलता था, इन दोनोंने मिलकर तैयार किया।

ह्वाइटहेडके टार्पेडोमें केवल ९ सेर डायनामाइट भरा था। इस टार्पेडोकी रफ्तार दौड़ते हुए आदमीकी रफ्तारसे ज्यादा न थी; किन्तु इस टार्पेडोका सबसे भारी दोष यह था कि पानीके अन्दर यह सीधा नहीं जाता था। या तो शीघ्र ही ऊपर पानीकी सतहपर यह उठ आता था या फिर नीचे जाकर तहमें गड़ जाता था। समुद्रकी उत्ताल तरङ्गें उसे सीधे रास्तेसे विचलित कर देती थीं। आखिर ह्वाइटहेडने टार्पेडोके इस दोषको भी दूर कर दिया। उसने एक तरकीब ऐसी निकाली, जिसकी वजहसे टार्पेडो तमाम रास्ते-भर एक खास गहराईपर चलता। इस नयी तरकीबकी ईजादके महत्त्वका अन्दाज केवल अकेली इस बातसे लगाया जा सकता है कि ब्रिटिश गवर्नमेण्टने इस भेदको १५००० पौण्डमें खरीद लिया। कुछ ही दिनों उपरान्त फ्रान्स, जर्मनी और इटलीने भी टार्पेडो बनानेके भेद ह्वाइटहेडसे भारी रकमें देकर खरीद लिये और देखते-देखते ह्वाइटहेड करोड़पति बन गया। फिर भी उसने टार्पेडो सम्बन्धी अपने अनुसन्धान जारी रखे और उसमें बराबर सुधार करता गया।

ह्वाइटहेडके टार्पेडोकी सफलतासे उत्साहित होकर अमेरिकन आविष्कारक एडिसन तथा सिम्सने मिलकर एक नये ढङ्गका टार्पेडो बनाया, जो विद्युत्-शक्तिकी मददसे चलता था। टार्पेडोके अन्दर ही बिजलीका मोटर इञ्जन लगा रहता, जो उसे आगेको बढ़ाता। मोटरके लिए विद्युत्-शक्ति जहाजपरसे एक लम्बे तारके जरिये आती थी। यह तार करीब पौने तीन मील लम्बा था। विद्युत्-धाराकी सहायतासे इस टार्पेडोको इच्छित दिशामें घुमा-फिरा भी सकते थे। किन्तु उसपर पूर्ण नियन्त्रण रखना सहज काम न था। पेरूके खिलाफ युद्धमें एक ऐसा ही टार्पेडो जब शत्रुके जहाजकी ओर फेंका गया, तो उसको ठीक रास्तेपर रखनेके लिए विद्युत्धाराका प्रयोग करनेपर इतनी गड़बड़ी हुई कि टार्पेडो घूमकर फिर अपने ही जहाजकी ओर लौटा। इस भयावह परिस्थितिमें एक साहसी नाविकने गोता लगाया, और उस टार्पेडोके रास्तेको घुमा दिया। जहाजकी बगलसे निकलकर यह विद्युत् टार्पेडो एक चट्टानसे जा टकराया। और इस तरह अपने सिर आयी हुई आफतसे छुटकारा मिला। टार्पेडोका सिद्धान्त समझना कुछ मुश्किल नहीं है; किन्तु इसके भिन्न-भिन्न पुर्जोंके बारेमें पूरी जानकारी हासिल
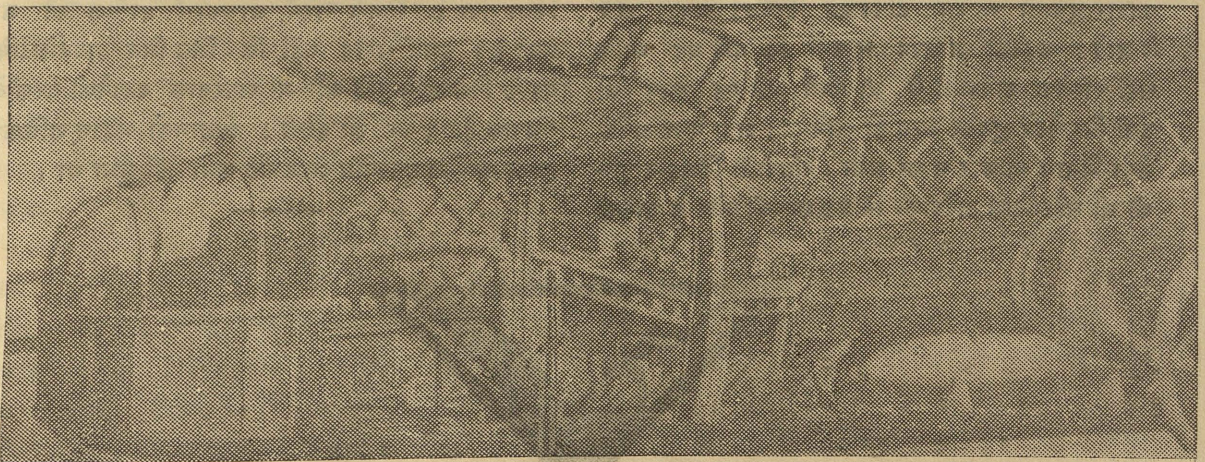
जहाजसे बम-वर्षा।

करनेमें अक्ल हैरान हो जाती है। प्रत्येक टार्पेडोके अन्दर लगभग ६००० भिन्न-भिन्न पुर्जे होते हैं और महीनोंमें एक टार्पेडो तैयार हो पाता है। पानीके बाहर या उसके अन्दर सीधी लाइनमें टार्पेडो अपने लक्ष्य तक तीव्र गतिसे जाता और शत्रुके जहाजसे टकराकर विस्फोट करता है—शत्रुके जहाजके साथ-साथ स्वयं भी नष्ट हो जाता है।

टार्पेडोके सामनेवाले भाग—उसकी नाकपर फ्यूज लगा रहता है। फ्यूजके पीछे ही विस्फोटक पदार्थ रहता है। निशानेसे टकराते ही फ्यूज पिन विस्फोटक पदार्थको भेदकर उसे विस्फोट करा देती है। विस्फोटक पदार्थके पीछे ही इस्पातके मजबूत सिलेण्डरके अन्दर संकुचित (हाई प्रेशर) हवा भरी रहती है। इस सिलेण्डरके पीछे इञ्जिन कम्पार्टमेण्ट बना रहता है। सिलेण्डरसे हवा निकलकर वेगके साथ इञ्जिनमें आती है और इसे चालू रखती है। पेट्रोल, भाप और संकुचित वायुके बलपर यह इञ्जिन चलता है। इञ्जिनको ठण्डा रखनेके लिए समुद्रका ही पानी इस्तेमाल होता है। इञ्जिनके पीछे टार्पेडोकी दुमके पास दो ब्लेडदार पङ्खे लगे रहते हैं। इनका सम्बन्ध इसी इञ्जनसे रहता है, और इञ्जनके चलनेपर ये पङ्खे विपरीत दिशामें तेजीसे घूमते हैं। और इस तरह टार्पेडोका समतुलन कायम रखते हैं।

टार्पेडोको अपने रास्तेपर सही रखनेके लिए भी समय-समयपर लोगोंने भिन्न-भिन्न तरकीबें सोची हैं। जापानियोंने एक टार्पेडो ऐसा बनाया था कि उसमें एक व्यक्ति बैठकर पतवार घुमाता रहे और टार्पेडोको इच्छित लक्ष्यकी ओर ले जाये। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि यदि वह व्यक्ति सही रास्तेपर टार्पेडोको ले जा सका, तो वह स्वयं भी उसी विस्फोटमें भुनकर खत्म हो जायेगा। अतः ऐसा टार्पेडो सेना-विभाग स्वीकार न कर सका। रेडियोकी विद्युत्-तरङ्गोंकी भी सहायतासे टार्पेडोको निश्चित लक्ष्यकी ओर ले जानेकी बात सोची गयी; किन्तु इसमें भी सफलता न मिल सकी। चुम्बकीय टार्पेडोका भी प्रयोग किया गया कि शत्रुके जहाजमें लगे लोहेकी ओर खिंचकर टार्पेडो स्वयं उसके पास चला जाय और उससे टकराकर उसका और अपना दोनोंका काम तमाम कर दे। किन्तु इस प्रकारके टार्पेडो अभी कारगर नहीं हो पाये हैं। आधुनिक टार्पेडोकी पूंछके पास लगभग १॥ सेर वजनका एक जाइरास्कोप लगा रहता है। एक बार सही निशानेकी ओर जब टार्पेडो दाग दिया जाता है, तो इस जाइरास्कोपके कारण बिलकुल एक सीधी रेखामें टार्पेडो आगे बढ़ता है। दाहिने-बायें जरा भी नहीं बल खाता। जाइरास्कोपके अन्दर एक पहिया प्रति सेकेण्डमें सैकड़ों बार चक्कर लगाता रहता है। इसी घूमते हुए पहियेके जोरसे टार्पेडो अपने सही रास्तेसे बिचलता नहीं।

हवाई आक्रमणके लिए एक खास किस्मका टार्पेडो तैयार किया गया, जो किसी शहरपर गिराये जानेपर स्वयं भट्ठियोंवाले विशालकाय कारखानोंपर जाकर फटेगा। इस टार्पेडोके सिरेपर दो यन्त्र लगे होते हैं, जो उष्णताकी किरणोंसे विशेष प्रभावित होते हैं। जब ये किसी कारोबारी शहरपर फेंके जायेंगे, तो ये यन्त्र भट्ठियोंकी आंचसे प्रभावित होकर टार्पेडोको उन्हीं कारखानोंमें ले जायेंगे और इस तरह गलत निशाना लगानेवाला उड़ाका भी शत्रुके मुल्कको भारी हानि पहुंचा सकता है।

इस स्थानपर केवल उन्हीं बम और टार्पेडोका जिक्र किया गया है, जिनके बारेमें जानकारी हासिल की जा सकी है। इसमें सन्देह नहीं कि भिन्न-भिन्न गवर्नमेंटोंके यहांके विशेषज्ञोंने इन्हें और भी खतरनाक बनानेकी तरकीबें अब तक ईजाद कर ली होंगी। विज्ञानकी महान् शक्तिका इतना जबर्दस्त दुरुपयोग आज तक कभी नहीं हुआ था।

———
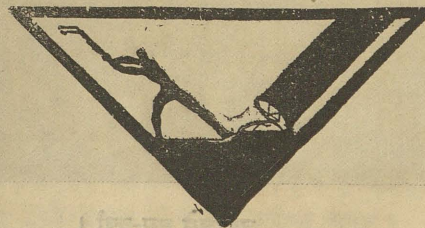
भूल

श्रीमती सत्यवती शर्मा

"बीबीजी!"

"क्यों?"

"एक स्त्री मिलना चाहती है।"

"किसलिए?"

"नौकरीकी तलाशमें आयी है। क्या उसे अन्दर भेज दूं?" यह कहकर बूढ़ा नौकर जगतू मालकिनकी ओर देखने लगा।

दोपहरका समय था। मिस्टर कान्तिमोहन बैरिस्टरकी पत्नी उषा इस समय गृह-कार्योंसे छुट्टी पाकर बैठी एक ऊनी जरसी बना रही थी। वह पिछले कई दिनोंसे एक अच्छी नौकरानीकी तलाशमें थी। उसने सलाइयोंसे बिना दृष्टि उठाये ही जवाब दिया—"हां, उसे अन्दर भेज दो।"

एक ही मिनटके अनन्तर फटे-पुराने वस्त्र पहने एक दुबली-पतली स्त्री उषाके सम्मुख आ खड़ी हुई। उसके साथ एक पांच-छः वर्षका बालक भी था। मां तथा पुत्र दोनोंके चेहरे करुणाकी छायासे मलिन थे। दीनता तो मानो टपकी पड़ती थी। गृह-स्वामिनीकी आज्ञा पानेपर दोनों उसके निकट फर्शपर बैठ गये।

"क्या तुम नौकरी करोगी?" उषाने प्रश्न किया।

"जी हां। इसीलिए तो आपकी शरणमें आयी हूं।" वह स्त्री याचना-भरे नेत्रोंसे उषाकी ओर देखते हुए कहने लगी—"मुझे सामनी कोठीवालोंने भेजा है। यदि आपकी दया होगी, तो हम दोनों मां-बेटेकी रोटियोंका सहारा हो जायगा।"

उस स्त्रीकी दर्द-भरी सूरत देखकर उषाका हृदय पिघल उठा। उसके जीमें तो आया कि वह उसको अपने यहां नौकर रख ले। परन्तु उसके बच्चेकी तरफ देखकर वह सोचमें पड़ गयी। उसके पतिको तो बच्चोंके जिक्रसे ही घृणा थी। वह तो पड़ोसमें भी बच्चोंको चीखते-चिल्लाते देखकर घबरा उठते थे। केवल इसी कारण उसने कितनी ही अच्छी-अच्छी नौकरानियोंको रखनेसे इनकार कर दिया था। परन्तु आज तो उस स्त्रीकी आंखोंमें उमड़ी वेदनाने उषाके अन्तरको छू लिया था। उसे एकाएक कुछ जवाब न सूझ पड़ा।

मालकिनको चुप देखकर वह स्त्री फिर कहने लगी—"तो मुझे क्या आज्ञा है?"

उषा इस विषयपर थोड़ी देर और सोच लेनेके अभिप्रायसे बोली—"तो तुम क्या-क्या काम कर सकोगी?"

"जी, मैं घरके सभी काम, खाना बनाना, सफाई तथा बच्चोंकी देख-रेख इत्यादि कर लूंगी।" स्त्रीकी आंखोंमें आशाकी एक रेखा चमकी।

"देखो भई! एक बात है। यदि तुम अपने बच्चेको अपने घरपर छोड़कर यहां कामपर आ सको, तो मुझे तुम्हें रखनेमें कोई एतराज न होगा, लेकिन यह याद रखना कि साहबको बिलकुल खबर न हो कि तुम्हारे कोई बच्चा भी है। उनको बच्चोंसे बहुत नफरत है।"

"बच्चोंसे नफरत है? अच्छा?"

"हां, है। लेकिन तुम इस बातको छोड़ो। बोलो, तुम्हें मेरी शर्त स्वीकार है?"

"लेकिन बीबीजी! मैं तो बे-घर हूं।" उसने आंखोंमें छलकते हुए आंसुओंको छिपाते हुए कहा।

"अच्छा, तुम बे-घर हो?" उसने तीखी दृष्टिसे औरतके चेहरेकी तरफ देखा। स्त्रीकी आंखोंमें खेलते हुए आंसू उसकी नजरोंसे छिप न सके। वह फिर सोचमें पड़ गयी। आखिर उसे एक बात सूझ गयी। उनकी कोठीसे कोई मील-भरकी दूरीपर उनकी कुछ कोठरियां किरायेपर उठी रहती थीं। आजकल एक खाली पड़ी हुई थी। उसने सोचा, क्यों न वही कोठरी इसे रहनेके लिए दे दूं।

"अच्छा! यदि तुम्हें रहनेके लिए मैं एक कोठरी, जो यहांसे कुछ अन्तरपर है, दे दूं, तो क्या तुम इसको वहां छोड़कर कामपर आ सकोगी?"

बच्चेको इतनी दूर अकेला छोड़नेकी बात सुनकर श्यामाका दिल कांप-सा गया। क्योंकि अब उसके अन्धकारमय जीवनमें केवल वही एक ज्योतिकी रेखा थी। उसको

सारा दिन अपनेसे दूर एक कोठरीमें अकेला छोड़कर वह किस तरह रह सकेगी, वह बेचैन हो गयी। लेकिन इसके सिवाय और चारा ही क्या था। आखिर उसने स्वीकृति दे दी।

वेतनके विषयमें उसको कहना ही क्या था। गृह-स्वामिनीने जितना कहा, उसीको सौभाग्य समझकर श्यामा दूसरे दिनसे बैरिस्टरके घर कामपर जाने लगी।

(२)

उस घरमें श्यामाने कुछ ही दिनोंमें अपने लिए एक विशेष स्थान प्राप्त कर लिया। धीरे-धीरे प्रायः घरके सभी काम एक-एक करके उसके हाथोंमें आने लगे। बाजारसे सामान इत्यादि लाना, धोबीको कपड़े देना और लेना तथा घरकी सफाई आदि सब उसीको करनी पड़ती। उषाने तो घरकी देख-रेख करनी भी छोड़ दी थी। बैरिस्टर साहबको और किसीका बनाया भोजन ही पसन्द न आता था। यदि उनके कमरेकी सफाई एक दिन भी कोई अन्य नौकर करता, तो उस बेचारेकी तो शामत ही आ जाती। क्योंकि जितने सुरुचिपूर्ण ढङ्गसे श्यामा वस्तुओंको सजाती, वैसी निपुणता दूसरे नौकरोंमें कहां थी। सारांश यह कि इन थोड़े-से दिनोंमें ही श्यामा उस घरका एक आवश्यकीय अङ्ग बन गयी।

श्यामा प्रतिदिन प्रातः पांच बजे उठकर अपनी कोठरीको झाड़-बुहारकर स्नान आदि करती, फिर कोठीसे लाया हुआ थोड़ा-सा खाना रामूके लिए रखकर, अपनी पड़ोसिन यमुनासे, जो एक साईसकी पत्नी थी, बच्चेका ख्याल रखनेकी प्रार्थना कर स्वयं सात बजते बजते बैरिस्टर साहबके बंगलेपर पहुंच जाती। रातको आठ-नौ बजेसे पहले उसका घर लौटना नहीं होता था। बेचारा रामू सारा दिन मातृ-विहीन बच्चेकी तरह इधर-उधर डोलता रहता।

रामूको इस तरह अकेला रहनेकी आदत न थी। और चाहे कुछ भी क्यों न रहा हो, परन्तु मांके प्यारसे तो वह कभी भी वञ्चित नहीं रहा था। दोपहर तो वह किसी तरह गलीके बालकोंके साथ खेलकर काट लेता, लेकिन ज्यों-ज्यों दिन ढलता जाता, उसकी उदासी बढ़ती जाती। सन्ध्या होते ही वह द्वारके एक कोनेमें दुबककर बैठ जाता और मांके आनेकी बाट जोहता। वहीं पड़े-पड़े अक्सर वह सो भी जाता।

(३)

नवम्बर लग गया था। जाड़ेने अपने पर फैलाने आरम्भ कर दिये थे। धूपमें कुछ कोमलता तथा वायुमें थोड़ी कंपकंपी आ चली थी। रातके ग्यारह बजनेको थे। बैरिस्टर साहबके घरमें आज मेहमानोंकी दावत होनेके कारण अभी तक श्यामा लौट न पायी थी। बड़ी कठिनतासे ग्यारह बजे काम खतम करके श्यामा जल्दी-जल्दी पग बढ़ाती हुई घरकी ओर चल दी। उसका रामू उसकी प्रतीक्षामें बैठा होगा। सड़कों और गलियोंमें लगभग सन्नाटा छाया हुआ था। हां, कहीं-कहीं कुत्तोंके भूंकनेका शब्द अवश्य सुनाई दे जाता था। श्यामा सड़ककी बत्तियोंके सहारे अपनी ही छायामें उलझती चली जा रही थी। मन न जाने क्यों किसी अज्ञात आशङ्काके भयसे सिहर-सिहर उठता था।

घरके दरवाजेपर पहुंचकर उसने देखा कि उसका रामू नित्यकी तरह उसी कोनेमें सिकुड़ा पड़ा है। पहले तो वह मांके पांवोंकी आहट पा झट उठ खड़ा होता था, लेकिन आज तो वह आवाज देनेपर भी नहीं उठा। श्यामाने पास जाकर माथेपर हाथ रखा। माथा अङ्गारेकी भांति जल रहा था। रामू बुखारमें बेढ़ध था। श्यामाका हृदय बैठ गया। कांपते हुए हाथोंसे बालकको उठाया और भीतर ले जाकर चारपाईपर सुला दिया। बेचारीको कुछ सूझ ही न पड़ता था कि क्या करे। घण्टा दो घण्टे बीतनेपर बच्चा छातीकी पीड़ासे कराहने लगा। श्यामाने तेल गरम करके बच्चेकी छातीपर मालिश की। आग जलाकर सेंक भी किया। परन्तु कुछ लाभ न हुआ। सारी रात बेचारी बालकके सिरहाने बैठी आंसू बहाती रही। लेकिन उसके पास ऐसा कौन था, जो उस अबलाके हृदयकी बेचैनी माप सकता।

दूसरे दिन श्यामा कामपर न जा सकी। उसने पड़ोसिन यमुनाके हाथ स्वामिनीसे दो-तीन दिनकी छुट्टीके लिए कहला भेजा।

(४)

"अभी तक मेरा कमरा क्यों नहीं साफ हुआ, उषा ?" मिस्टर कान्तिमोहन पत्नीकी ओर देखते हुए कहने लगे— "पुस्तकें धूलसे सनी पड़ी हैं। और देखो तो, ऐनकका एक

शीशा भी टूटा पड़ा है। ये नौकर बिल्कुल नालायक हैं। क्या श्यामा आज भी नहीं आयी ?"

"नहीं।"

"क्यों ? जगतूको भेजकर पता तो लो कि क्या बात है ?"

"उसका लड़का बीमार है। वह कुछ दिन नहीं आ सकेगी।" उषाने डरते-डरते जवाब दिया।

"लड़का ! क्या उसके लड़का भी है ?" बैरिस्टर साहब गरजते हुए कहने लगे—"सब कुछ जानते-बूझते हुए भी तुमने बच्चेवाली नौकरानीको क्यों रखा ?"

"इसलिए कि उन दोनों मां-बेटेकी निर्धनता और कष्टने मुझे परास्त कर दिया था। कोशिश करनेपर भी मैं उसको टाल न सकी।" उषाने सहमी हुई आवाजमें कहा—"लेकिन आप नाराज क्यों होते हैं, श्यामा रामूको हमारे घर तो कभी नहीं लाती।"

"अच्छा, तो फिर वह कहां रहती है ?" उसके पतिने फिर पूछा।

"उस बेचारीके पास तो रहनेको कोई जगह न थी। बच्चेके कारण मैंने ही अपनी कोठरियोंमेंसे एक कोठरी, जो बहुत दिनोंसे खाली थी, उसे दे रखी है।" उषाने शङ्कित नेत्रोंसे पतिकी ओर देखा।

कान्तिमोहन केवल हूं कहकर अपने कमरेमें चले गये।

उषा किसी दुःखद परिणामकी आशङ्कासे कांप उठी।

(९)

श्यामा उस दिन दो सप्ताहके अनन्तर कामपर आयी। उसके मुंहपर प्रसन्नता और कृतज्ञता झलक रही थी। श्यामाको आयी देख, उषाने पूछा—"आ गयी हो ? अब तो रामू अच्छा है न ?"

"हां बीबीजी, आपकी दयासे अब तो वह बिलकुल ठीक है। यदि आप कृपा करके डाक्टर और रुपये न भेजतीं, तो उसके जीवनकी कुछ आशा न थी।"

"डाक्टर और रुपये ? मैंने भेजे ?" उषाके आश्चर्यका ठिकाना न था।

"आपने नहीं, तो और किसने ? जगतूने ही तो सब कुछ किया है।"

"जगतूने ?" उषाकी हैरानी और भी बढ़ रही थी—"बुलाओ उसे।"

श्यामा गयी और दो ही क्षणोंमें जगतूको साथ लेकर लौट आयी।

"क्यों रे जगतू ! श्यामा यह क्या कहानी कह रही है ?"

"बीबीजी······"

जगतूने अभी कहना शुरू ही किया था कि कान्तिमोहनने तेजीसे कमरेमें प्रवेश किया।

"क्या झगड़ा चल रहा है ?" उसने मुस्कराकर पूछा।

"कुछ नहीं," उनकी पत्नीने जवाब दिया—"श्यामा मुझे किसी एक बातके लिए यों ही यश दे रही है, जो मैंने स्वप्नमें भी नहीं की।"

"यों ही कौन किसीको यश देने आता है उषा ! क्या जाने तुम सचमुच उस यशकी अधिकारिणी होओ ही।" कान्तिमोहन खिलखिलाकर हंसे और बाहर चले गये।

उषाने जाते हुए पतिकी ओर प्रशंसा-भरे भावसे देखा।

"मैं भी आज तक कितनी भारी भूलमें रहती चली आ रही थी।" उसने सोचा और सोचते-सोचते उसका चेहरा खिल उठा। *

---

* लाहौर रेडियो स्टेशनपर पठित एवं उसके सौजन्यसे प्रकाशित।
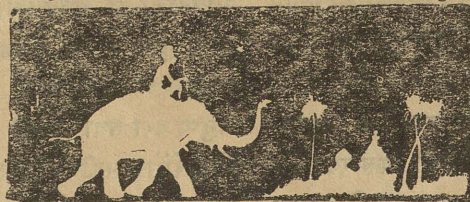
समाजमें पुरुष और नारीका सम्बन्ध

श्री रामस्वरूप व्यास

प्राणियोंके दूसरे वर्गोंमें नर व मादाका जो अर्थ होता है, मनुष्य-समाजमें स्त्री व पुरुषका उससे कहीं भिन्न अर्थ होता है। दूसरे प्राणियोंमें, खासकर उच्च वर्गके प्राणियोंमें नर व मादाका जो सम्बन्ध होता है, वह अधिकतर उनकी प्रजननकी विशेषताओंपर निर्भर रहता है। परन्तु मनुष्य-समाजमें वह इसके अतिरिक्त दूसरे रूप भी धारण कर लेता है, जिन्हें हम सामाजिक सम्बन्धोंके नामसे पुकारते हैं। यों तो कुछ दूसरे प्रकारके प्राणियोंमें भी कुछ सामाजिक व्यवस्था मिलती है। अनेक प्रकारके कीड़े-मकोड़ों तथा पशु-पक्षियोंमें सामाजिक व्यवस्थाका कुछ आभास मिलता है। मधुमक्खियों तथा चींटियोंका सामाजिक जीवन प्रसिद्ध है; परन्तु यह प्रारम्भिक अवस्थासे आगे नहीं बढ़ सका है।

मनुष्य-समाजकी व्यवस्थाका मुख्य लक्षण यह है कि यह विचार-प्रधान है। इसका अर्थ यह नहीं कि मनुष्यकी सामाजिक व्यवस्था प्रकृतिके नियमों तथा जीवनकी आवश्यकताओंका उल्लङ्घन कर सकती है, बल्कि यह कि मुख्य बातोंको छोड़कर मनुष्यकी सामाजिक व्यवस्था एक विचार-की व्यवस्था है, एक मानसिक सृजन है। मनुष्यमें यदि विचारनेकी शक्ति न होती, तब आज न तो उसकी सामाजिक व्यवस्था ही इतनी उन्नतिशील होती, और न वह अक्सर जीवनकी मुख्य बातोंकी उपेक्षा कर जीवनको विकृत बना डालती। प्राणियोंके जीवनके मुख्य लक्षणोंको छोड़कर, मनुष्य-समाजकी जो विशेषता है, वह यह कि यह विचारपर निर्भर है, जब कि दूसरे प्राणियोंने जिस व्यवस्थाको जन्म दिया है, उसमें यह तत्त्व नहींके बराबर है।

इस कारण जहां मनुष्यको सामाजिक व्यवस्थाकी प्रगति करनेके लिए अवसर मिला, वहां साथ ही उसे अपने निर्माण किये हुए विचारोंके बन्धनमें बंधकर अनेक बार भटकना भी पड़ा और कहीं तो वह अब भी भटक रहा है। मनुष्य-समाजमें स्त्री व पुरुषका सम्बन्ध भी इसी प्रकारका है। मनुष्यने इस सम्बन्धमें जिस प्रकारकी व्यवस्थाकी रचना की, उसने उसे सीधे मार्गपर न ले जाकर भूल-भुलैयामें डाल दिया, जिसमें वह आज तक भटक रहा है।

मनुष्य-समाजमें स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध केवल प्रजननसे ही सम्बन्ध नहीं रखता। यह उसके जीवनका एक आवश्यक अङ्ग अवश्य है; परन्तु इसे उसने दूसरे प्रकारके विचारोंसे इस प्रकार आच्छादित कर दिया है कि इस मायाजालको खोलना बड़ा कठिन काम हो गया है। स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध धार्मिक, नैतिक, आर्थिक अनेक प्रकारके विचारों द्वारा बंधा है। ये विचार उसके जीवनकी आवश्यकताओं तथा सारे समाजकी प्रगति और इससे कितना सम्बन्ध रखते हैं, यह कह सकना कठिन होगा। परन्तु आजकलके जीवनकी कठिनाइयोंको देखते हुए यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन विचारोंके ऊपर स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी व्यवस्था करके वास्तविक सुख-शान्ति देनेवाली व्यवस्थाको जन्म नहीं दिया जा सका है। अभी तक स्त्री-पुरुषके आपसके सम्बन्धोंकी व्यवस्थाकी नींवमें मुख्यतः तीन तत्त्व काम कर रहे हैं—एक धर्म, दूसरे नैतिकता, तीसरे अर्थ। हम इन तीनों शब्दोंको इनके व्यापक अर्थमें नहीं ले सकेंगे। यहां तो हमें इनका प्रतिदिनके उपयोगका अर्थ ही लेना पड़ेगा।

समाजकी आदि व्यवस्थाके जन्मसे लेकर अब तक धर्मने उसकी रचनापर मुख्य प्रभाव डाला है, यहां तक कि लगभग सारी मुख्य सामाजिक व्यवस्थायें धर्मोंके नामसे प्रसिद्ध हैं, जैसे मुसलिम धर्म, ईसाई धर्म इत्यादि। धर्मके मूलमें प्रकृतिके व्यापारोंके प्रति आश्चर्यकी भावना है। प्रारम्भ-कालमें मनुष्यके पास न साधन थे, न दूसरे माप-दण्ड और न बुद्धिकी परिपक्वता। इसलिए उस समय विचारोंकी अपेक्षा भावनाको ही मुख्य स्थान मिला था। भय तथा प्रार्थना इसके मुख्य अङ्ग थे। पहले प्रकृतिकी शक्तियों, फिर भयावह जन्तुओं और फिर अपने समान रूप रखनेवाले देवताओंसे मनुष्य डरा तथा उनकी पूजा-प्रार्थना की। इसी प्रकारके विचारोंसे उसकी नैतिकता भी जन्मी तथा स्वर्ग व नरकका भय तथा लालच दिखाकर लोगोंको समाजके बताये हुए

मार्गपर चलनेको बाध्य करना इसका मुख्य काम हुआ। आर्थिक व्यवस्थाके भिन्न-भिन्न रूपोंने भी स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंपर अपनी छाप डाली।

अब तकके मुख्य-मुख्य धर्म इस संसारकी अपेक्षा आनेवाले जीवनको ही अधिक महत्व देते आये हैं। वे इस शरीर तथा शरीरके सुखको आनेवाले जीवनके ऊपर वार देना चाहते हैं। इसलिए इन धर्मोंके अन्तर्गत जिस सामाजिक व्यवस्थाका जन्म हुआ, उसमें उन वस्तुओंकी अवगणना की गयी, जो इस संसारमें लिप्त रखें। पुरुषके लिए स्त्री एक ऐसी ही वस्तु थी। और कुछ कारणोंसे पुरुष मानसिक परिपक्वताको पहले पहुंचा, इसलिए उसके विचारोंका समाजपर मुख्य प्रभाव पड़ा। पुरुषने स्त्रीकी अवगणना की, उसे नरकका द्वार बताया तथा जीवनकी एक आवश्यक बुराईके समान उसे स्वीकार किया। इसके अतिरिक्त वह जातीयताके रहस्यको, जिसके पीछे सन्तानका सृजन छिपा हुआ था, नहीं समझ सका; यह उसके लिए एक आश्चर्यका विषय ही रहा। इस प्रकार अवगणना तथा आश्चर्यसे मिश्रित दृष्टिकोणने नर व नारीके सम्बन्धका निर्माण किया, और अब तक यही दृष्टिकोण चला आता है। इस दृष्टिकोणके साथ-साथ आर्थिक अवस्थाओंका भी इस सम्बन्धपर कुछ कम प्रभाव न पड़ा। प्रारम्भिक अवस्थामें शिकारी जीवन बितानेके समय स्त्री-पुरुष समान थे, उनके शरीरकी शक्तिमें भी कोई विशेष अन्तर न था। इसके बाद जब जानवरोंको पालकर तथा खेतीबारी करके मनुष्यने जीवन-यापन करना सीखा, तबसे स्त्रीका पतन होना शुरू हो गया। स्त्री गुलाम व मजदूरी करनेका साधन बन गयी। और जब समाजमें सामन्तशाही उपजी, जिसमें बाहुबल द्वारा लोगोंको गुलाम बनाकर उनसे काम लेनेकी व्यवस्था थी, तब स्त्री एक भोग-विलासका साधन तथा मनोरञ्जनकी सामग्री भी बन गयी। और आज जो हमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धकी रूपरेखा मिलती है, वह इन्हींके द्वारा पूरी गयी है तथा हमारी विवाहकी संस्था इसीका एक स्वरूप है। दूसरा स्वरूप हमें वेश्याओंके रूपमें मिलता है। पहले रूपमें गुलामी मुख्य है, दूसरेमें मनोरञ्जन।

इस प्रारम्भिक विचार-धारापर ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते तथा इसके असली रूपको पहचानते गये, त्यों-त्यों हमने कुछ सुनहरा रङ्ग डालकर इसे आकर्षक बनानेकी कोशिश की तथा इसके द्वारा हम स्त्रियोंको काफी समय तक भुलावा देनेमें समर्थ हुए। क्योंकि इस प्रकार जो व्यवस्था जन्मी थी, वह इतनी ज्यादा पुरुषके पक्ष तथा स्त्रीके विपक्षमें थी कि इसका अब तक टिक सकना एक आश्चर्यकी बात है। यह सुनहरा रङ्ग जो पुरुषने विवाह-संस्थाको आदर्श संस्था कहकर तथा सतीत्वको जीवनका अनमोल रत्न बताकर फेंका, स्त्रीको ललचानेमें समर्थ हो गया, और वह इस शब्दजालके भुलावेमें आकर दूसरे सब कष्टों, अन्यायोंको हंसी-खुशी सहने लगी, तथा कभी-कभी स्वेच्छासे मृत पतिकी चितापर भी जलनेको तैयार हो गयी। आज भी असंख्य स्त्रियां अपनेको इस मायाजालमें फंसा रखनेमें ही अपना सौभाग्य मानती हैं। और इस बुद्धिवादके युगमें अनेक पुरुष भी तर्कोंके सहारे इस व्यवस्थाको फिरसे टिकाऊ बनाना चाहते हैं। परन्तु अब इस व्यवस्थाकी नींव इतनी खोखली हो गयी है कि फिरसे भवन निर्माण करनेके लिए दूसरी बार दो नींवें रखनेकी आवश्यकता होगी।

हमें आजकलके स्त्री-पुरुषोंके सम्बन्धोंके कुछ विशेष अङ्गोंपर दृष्टिपात करना होगा। साधारणतया समाजमें कुछ ऐसी मान्यता प्रसरित है कि स्त्री-पुरुषका जातीय सम्बन्ध एक दोष या पाप है, और इसीलिए उसपर अनेक प्रकारके बन्धन लगाने चाहिए तथा लगाये जाते हैं। यह सम्बन्ध विवाहके रूपमें कुछ कम दोषपूर्ण हो जाता है और जब यह सन्तानोत्पत्तिके लिए होता है, तब इसमें दोषकी मात्रा सबसे कम समझी जाती है। परन्तु कुछ लोग इतनेसे भी सन्तुष्ट नहीं होते और आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करनेका उपदेश देते हैं। विवाहके बाहर किसी प्रकारका जातीय सम्बन्ध घृणित दृष्टिसे देखा जाता है, हालांकि वेश्यावृत्तिके रूपमें यह सभी समाजोंमें विद्यमान है। समाजके साधारण जीवनमें भी कभी-कभी हमें इसके कुछ उदाहरण मिल जाते हैं। परन्तु इस प्रकार समाजकी मर्यादा उल्लङ्घन करनेवालोंकी दशा वही होती है, जो इस प्रकारके लोगोंकी होती है। समाज उनका तिरस्कार करता है। परन्तु यदि कहीं हमें साधारण तौरपर उपर्युक्त व्यवस्था मिलती भी है, तो विभिन्न प्रकारके समाजोंमें इसके भिन्न-भिन्न रूप हो गये हैं विवाह भी एक प्रकारका नहीं होता, और इसके साथ विवाह-विच्छेद भी

हो सकता है। विवाह-बन्धनमें बंधनेके पहले तथा बादमें कितनी ही प्रकारकी जातीय स्वतन्त्रता हमें विभिन्न समाजों-में देखनेको मिलती है। कहीं विवाहके पहले कौमार्य आवश्यक होता है, तो कहीं विवाहके पहले इस बातके प्रमाण-की आवश्यकता होती है कि लड़की बन्ध्या तो नहीं है।

आजकलके कुछ विचारक तथा समाजशास्त्री इन सब बन्धनों तथा सम्बन्धोंको आवश्यक मानते हैं तथा यह कहते हैं कि इनके पालन करनेमें ही समाजका श्रेय है। वे कहते हैं कि ये नियम यों ही अनायास नहीं आ गये, वरन् सोच-विचारकर तथा सब बातोंका ध्यान रखकर समाजके हितके लिए निर्माण किये गये हैं। हमें इन्हें यों ही नहीं फेंक देना चाहिए। इतना ही नहीं, कुछ तो यहां तक कहते हैं कि इनमें प्रजनन, जीवन-विज्ञान तथा मानस-शास्त्रकी दृष्टिसे भी कोई दोष नहीं है। परन्तु ये सब खाली तर्क हैं, इनके द्वारा हम स्त्री-पुरुषके जीवनकी वास्तविक कठिनाइयोंको दूर नहीं कर सकते। इस सम्बन्धमें हमें दो बातोंका जिक्र करना है। कहा गया है कि निकट-सम्बन्ध-निषेध व जातिके अन्दर तथा जाति-बाहरके नियम जो समाजमें प्रचलित हैं, इनके द्वारा सन्तानका ह्रास नहीं होता, इसलिए ये नियम मान्य होने चाहिए। परन्तु अभी इस विषयमें जो खोज हुई है, उससे निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि इनसे यह लाभ होता ही है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि जितना अधिक जातीय सम्बन्धोंपर प्रति-बन्ध रहता है, उतना ही मनुष्यका सांस्कृतिक जीवन उन्नत होता है। परन्तु इस विषयके कुछ विवेचकोंके मतके अनुसार इस प्रकारसे जातीय सम्बन्धोंपर प्रतिबन्ध लगानेमें कोई भी समाज अभी तक सफल नहीं हुआ। अधिकसे अधिक यह व्यवस्था दो या तीन पीढ़ी चलती है और फिर क्षीण पड़ जाती है। इसके अतिरिक्त हमें यह भी देखना है कि इस प्रकार जातीय शक्तिको सञ्चित करके जो जातीय लाभ हम उठाते हैं, वह वास्तविक लाभ होता है या नहीं। उदाहरणके तौरपर यदि किसी जातिने जातीय सम्बन्धोंपर प्रतिबन्ध लगाये, और इस प्रकार जो शक्तिका रूपान्तर हुआ, उसे सांस्कृतिक प्रगतिके लिए उपयोग न करके, दूसरी जातियोंपर आधिपत्य जमानेके लिए किया—जैसा अक्सर होता है—तब क्या इसे वास्तविक लाभ कहा जा सकता है?

इन सब बातोंसे हम इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि पुराने विचारोंको लेकर हम नयी व्यवस्थाका निर्माण नहीं कर सकते; या उन्हें युक्तिसङ्गत भी नहीं ठहरा सकते। जैसे प्राचीन कालमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धका निर्माण धर्म व नीति-ने—सङ्कीर्ण अर्थमें—किया था तथा आर्थिक व्यवस्थाने समय-समयपर इसे पलट दिया था, उसी प्रकार आज हमें स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंकी रचना मनोविज्ञान तथा प्राणिविज्ञानके नियमोंपर करनी होगी। ये दोनों विषय अपने विकासकी प्रारम्भिक अवस्थामें हैं, तो भी हमें यह ज्ञात हो गया कि इनके सहारे समाजका निर्माण करनेमें हमें काफी सहायता मिलेगी। अभी तक इन दोनों विषयोंकी खोजोंके कारण स्त्री-पुरुषके जातीय तथा सामाजिक सम्बन्धोंपर जितना प्रकाश पड़ चुका है, उतना सम्भवतः पहले कभी नहीं पड़ा था। और कमसे कम इस बातका तो निश्चय हो ही गया कि बिना इनका सहारा लिये हुए हम किसी सुन्दर समाज-की रचना न कर सकेंगे।

श्री जूलियन हक्सलेने भी इस विषयका गम्भीर विवेचन किया है। उन्होंने प्राणिविज्ञान तथा मनोविज्ञानकी मुख्य-मुख्य बातोंको लेकर दिखाया है कि हमें जातीयता सम्बन्धी अपनी धारणामें भारी परिवर्तन करना होगा। उन्होंने जातीयताका प्रजननके साथ क्या सम्बन्ध है, यह विस्तारसे बताया है। मनोविज्ञानकी दृष्टिसे उन्होंने यह बताया है कि दो प्रकारकी व्यवस्थायें होती चली आयी हैं। एक तो वह, जिसमें जातीयताका दमन कर उसे कमसे कम मार्ग दिया जाता है तथा दूसरी वह, जिसमें अधिकसे अधिक स्वत-न्त्रता हो। परन्तु उन्होंने कहा है कि ये दोनों व्यवस्थायें सन्तोषजनक नहीं हैं। हमें इस प्रकारका प्रबन्ध करना चाहिए, जिसमें न एकदम दमन हो और न एकदम स्वतन्त्रता। इसके साथ ही उनका कहना है कि जिस प्रकार जातीयताको अब तक जीवनका एक घृणित तथा तिरस्कृत अङ्ग समझा जाता था, इस प्रकारकी भावनाको हटाकर, हमें जातीयताका सम्बन्ध जीवनकी उच्च तथा रचनात्मक वृत्तियोंके साथ जोड़ना चाहिए। इस तरहसे फिर जातीयता तिरस्कार तथा घृणाकी वस्तु नहीं रहेगी और इसके साथ जीवनकी उच्चतम वृत्तियां जागेंगी। इसके अतिरिक्त वह कहते हैं कि हम जातीयताका दमन करनेमें सफल न हो सकेंगे। यह जीवनकी एक प्रबल

वृत्ति है—जितना हम समझते हैं, उससे कहीं अधिक प्रबल है—और इसके दमनसे केवल विकृति ही पैदा होगी।

यदि हम आजकलकी समाज-व्यवस्थाको खुली आंखोंसे देखेंगे, तो हमें इस विकृतिके चिह्न चारों ओर दिखाई पड़ेंगे, क्योंकि हमारी समाज-रचना विकृतिमें विश्वास रखती है। इस दमनसे एक तो स्त्री-पुरुषका सामाजिक सम्बन्ध कृत्रिम हो जाता है। दूसरे, व्यक्तिका मन तथा शरीर अनेक प्रकारके रोगों, उन्मादोंका घर बन जाता है। आज बहुत कम स्त्री-पुरुष ऐसे मिल सकेंगे, जिनका जातीय जीवन स्वस्थ हो। डा० फ्रायडने जातीय जीवन तथा तत्सम्बन्धी रोगोंके विषयमें जो खोज की है, उसने हमारी इस अस्वास्थ्यकर दशापर अच्छा प्रकाश डाला है तथा भली भांति यह दिखा दिया है कि हमारे अन्दर कितनी जातीय विकृति पैदा हो गयी है। यह विकृति केवल रोगके रूपमें ही बाहर नहीं निकलती, यह हमारे सामाजिक-सम्बन्धोंमें भी प्रकट होती है।

आजकल स्त्री-पुरुषका सम्बन्ध कितना खराब हो गया है, कहते नहीं बनता। उनका सम्बन्ध कुछ शिकार तथा शिकारी-जैसा हो गया है। आज स्त्री पुरुषका तथा पुरुष स्त्रीका अधिकसे अधिक शोषण करना चाहते हैं। दोनोंमें एक-दूसरेके प्रति अविश्वास तथा अश्रद्धा घर कर गयी है। भारतीय समाजमें तो यह सम्बन्ध असंख्य शताब्दियों पहले गढ़े हुए नियमोंपर चलकर यन्त्रवत् हो गया है। इस सम्बन्धमें स्त्रीकी अवस्था पुरुषकी अपेक्षा कहीं गिरी हुई है। बुद्धि, शारीरिक बल तथा अर्थ-सञ्चालन उसके हाथमें होनेके कारण उसका प्रभुत्व है। स्त्रीको उसने अनेक प्रकारके ऐसे शिकञ्जोंमें कस दिया है कि जिनसे उसके लिए निकलना कठिन ही नहीं, वरन् असम्भव-सा हो गया है। इस व्यवस्थाका निर्माण शायद किसी समय पुरुषने स्वार्थवश किया हो। इसके द्वारा स्त्रीका तो पतन हुआ ही, परन्तु पुरुषका भी पतन हुए बिना न रहा। स्त्रीकी उसने अपनी सम्पत्ति या मनोरञ्जनकी सामग्रीके रूपमें जो व्यवस्था की, उसका प्रभाव पुरुषपर भी पड़ा। इसके कारण जहां स्त्रीका जीवन दुखी है, वहां पुरुषका जीवन भी कुछ कम दुखी नहीं है। जातीय सन्तोष जीवनकी एक मुख्य आवश्यकता है। यह उतनी ही आवश्यक है, जितना कि भोजन इत्यादि। परन्तु हम इसे इस दृष्टिसे स्वीकार करनेमें हिचकते हैं और इसे पापपूर्ण मानकर तिरस्कार करते हैं या आवश्यक बुराईके समान स्वीकार कर दमन करनेका प्रयत्न करते हैं। जब हम इसमें सफल नहीं होते, तब ढोंगपूर्ण व्यवहार करते हैं या असाधारण दमन करके मानसको विकृत बना डालते हैं। साधारणतः सभी स्त्रियां यह अपेक्षा रखती हैं कि उनसे प्रेम किया जाय, उनकी प्रशंसा की जाय; परन्तु जब कोई पुरुष उन्हें इस दृष्टिसे देखता है, तब सर्वप्रथम उनका व्यवहार कुछ ऐसा-सा होता है कि जैसे उन्हें यह सब पसन्द नहीं है। उन प्रान्तोंमें जहां परदा नहीं है तथा स्त्रियां स्वतन्त्रतापूर्वक घरसे बाहर निकल सकती हैं, वहां अक्सर सुन्दर वस्त्रोंसे सुसज्जित होकर बाहर निकलती हैं। इससे उनकी मंशा दूसरोंको आकर्षित करनेकी ही होती है; परन्तु जब कोई पुरुष स्वाभाविक तौरपर आकर्षित होकर उनकी ओर देखता है, तब उनके मनमें यही विचार उठता है कि वह असभ्य है या बदमाश। इस प्रकारकी विरोधी बातोंसे हमारा जीवन भरा पड़ा है।

कुछ स्त्रियां और पुरुष इस प्रकारके अस्वास्थ्यकर वायुमण्डलको दूर करना चाहते हैं। स्त्रियोंने अपनी सामाजिक अवस्था सुधारनेका भी प्रयत्न शुरू कर दिया है तथा कुछ पुरुषोंका भी इसमें सहयोग होता ही है। लेकिन अब तककी व्यवस्था पुरुषके पक्षमें रही है, इसलिए इसमें स्वभावतः पुरुषका विरोध आ ही जाता है। स्त्रीके इस विरोधका कुछ पुरुष विरोध कर इसे और उकसा रहे हैं। कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह पारस्परिक विरोध कहीं अन्तर-विग्रहका रूप न धारण कर ले। और यदि ऐसा हुआ, तो इसमें स्त्री तथा पुरुष दोनोंका ही भारी अहित होगा। आज कुछ स्त्रियां पुरुषोंके प्रति विद्रोहकी भावना जागृत करके यह समझती हैं कि वे स्त्री जातिका हित कर रही हैं; परन्तु वे स्त्रियोंकी सेवा नहीं, उनके लिए आत्महत्याका मार्ग तैयार कर रही हैं। इसी प्रकार जो पुरुष स्त्रीकी स्वतन्त्रताका विरोध करके, उनके विरोधकी अग्निमें घीका काम कर रहे हैं, वे भी न पुरुषोंके हितोंकी कोई रक्षा कर रहे हैं, न समाजका कुछ लाभ। वास्तवमें तो स्त्री-पुरुषके बीचमें वर्ग-विग्रहके लिए कोई स्थान है ही नहीं। उनका काम एक-दूसरेके बिना चल ही नहीं सकता। आवश्यकता इस बातकी है कि विद्यमान एक-पक्षीय सामाजिक व्यवस्थाको ऐसी व्यवस्थामें परिणत कर दिया जाय, जो दोनोंके लाभमें हो। इस प्रकारकी पुन-

रचनामें हमें जीवनकी आवश्यकताओंका पूरा ख्याल रखना चाहिए। धार्मिक दृष्टिको तो, जिसमें जातीय जीवनको निषिद्ध कहा गया है, त्याग ही देना पड़ेगा। नैसर्गिक आवश्यकताओंको उनका उचित स्थान देना तथा जातीयताको स्वाभाविक वृत्ति मानकर उसे उचित मार्ग देना होगा। आर्थिक परतन्त्रताके कारण स्त्रीको जो कठिनाइयां झेलनी पड़ रही हैं, उन्हें भी दूर करना होगा। अर्थकी व्यवस्था पुरुष वर्गके हाथमें होनेके कारण स्त्रीका शोषण होता है। इसलिए उसे अपने जातीय आकर्षणसे लाभ उठाकर अपने जीवन-यापनके साधन प्राप्त करने पड़ते हैं। क्या विवाहमें, क्या वेश्या-वृत्तिमें, दोनों जगह यही होता है। इस प्रकारसे जीवनकी एक उच्च वृत्तिका आर्थिक कारणोंसे शोषण रोकना पड़ेगा, और इस प्रकारकी व्यवस्था करनी पड़ेगी, जिससे आर्थिक जीवन जातीय जीवनको कुचल न डाले। हमारी विवाह-संस्था जहां एक जातीय सम्बन्ध है, वहां एक आर्थिक सम्बन्ध भी है। आज तो विवाह अधिकतर आर्थिक कारणोंसे ही निश्चित किये जाते हैं। इससे समाजमें दुर्व्यवस्था फैलती है; क्योंकि अर्थका जातीय वृत्तिके साथ कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है। यह कोई आवश्यक नहीं है कि धनवानको ही जातीय तृप्तिकी आवश्यकता पड़ती हो, गरीबको नहीं। जातीय जीवन तो गरीब-अमीर सबके लिए एक-सा ही है। इसके लिए हमें ऐसी व्यवस्था करनी होगी कि जातीय जीवन अर्थकी व्यवस्थासे छुटकारा पाकर मनुष्य-जीवनमें साधारण रूप धारण कर ले। यदि ऐसा हो सका, तो वेश्यावृत्तिकी संस्था स्वयं ही नष्ट हो जायगी तथा विवाह-संस्थाकी भी बहुत-सी बुराइयां दूर हो सकेंगी।

हमने जैसा कहा, धर्म तथा नीतिको—प्रचलित अर्थोंमें—इस सम्बन्धसे निकाल देना होगा। इसका यह अर्थ नहीं कि हम इसे बिलकुल निकाल देंगे। परन्तु हमें धर्म व नीतिकी प्रचलित व्याख्याको छोड़कर, इन्हें नया अर्थ ही देना होगा तथा इनका स्थान गौण होगा। धर्म व नीति उस समय किसी वर्ग-विशेषके असमान अधिकारोंके दृढ़ करनेके काममें न लाये जा सकेंगे, वरन् सारे समाजके हितोंके लिए। स्त्री-पुरुषके नवीन सम्बन्धोंकी रचना करते समय इसका ख्याल हमें अवश्य रखना पड़ेगा। इस प्रकारकी नवीन रचनाके विषयमें हम अब उदासीन भी नहीं रह सकते, हमें इसके लिए प्रयत्न भी करना ही पड़ेगा। परन्तु हमें उस समय अपना दृष्टिकोण नहीं भूलना चाहिए। प्रो० हक्सलेने इस बातको निम्न शब्दोंमें सुन्दरतापूर्वक कहा है :—

"जो लोग मनुष्य-जीवनमें जातीयताकी समस्याओंपर विचार करते हैं, उनका बहुत करके तो सबसे भारी काम यही होगा कि वे तत्सम्बन्धी कठिनाइयों तथा बुराइयोंको दूर करें; परन्तु साथ ही विस्तृत दृष्टिकोणको भी नहीं भूलना चाहिए, तथा रचनात्मक दृष्टिसे विचार करनेके लिए हरएक प्रयत्न करना चाहिए, जिससे इस प्रकारके परिवर्तनसे कितनी भारी सम्भावनायें पैदा हो सकती हैं, यह जाना जा सके।"

———

स्त्री क्या चाहती है

श्री मनोहरलाल

कविकी कल्पनासे निकलकर—सुन्दरताकी देवी इठलाती हुई उस वृक्षके पास पहुंच गयी, जिसके नीचे मादकतामें खोया हुआ कृष्ण अपने कम्पित होठोंसे बांसुरी बजा रहा था—और जिसके ठीक ऊपर एक डालीपर बैठा हुआ पपीहा अपनी वेदनादायक आवाजमें "पी कहां", "पी कहां"का राग अलाप रहा था !

यौवनकी पीड़ासे—यमुनाकी प्रेम - उत्तेजक लहरोंसे अप्रभावित होकर, तरुणीने कटाक्षमयी मुस्कराहटसे कृष्णकी ओर देखा और फिर अपने हाथमें पकड़ी हुई कलियोंको देखनेमें मग्न हो गयी !

बिखरे हुए—घुंघराले बाल, अपने सांवले मुखसे हटाकर कृष्णने उस तितलीको अधखुली आंखोंसे देखा और चौंककर पूछा—"तो फिर तुमने कुछ सोचा ?"

तरुणीने अपनी आंखें कृष्णके मुखपर गाड़ दीं और देर तक उसकी चमकीली आंखोंमें अपना अनुपम रूप देखती रही—चांद-सदृश मुख, कमल समान नेत्र और सिरपर काली नागिनें, जो पवनके मन्द झोंकोंसे हिल-हिलकर किसीको डसनेके लिए व्याकुल हो रही थीं !

उषाकी सुनहरी आभा तरुणीपर पड़ रही थी ! एक हलकी-सी अंगड़ाई लेकर उसने निखरते हुए यौवन और उमड़ते हुए सौन्दर्यको गर्वसे देखा, फिर अभिमानपूर्ण स्वरमें कहा—"मुझे क्या आवश्यकता है कि मैं वरकी खोज करूं, किसीकी पत्नी बनकर व्यर्थमें दासी कहलाऊं।"

कृष्णने मुस्कराकर उस "विद्रोहिन"को देखा और थोड़ी देर कुछ सोचकर कहा—"तुम्हें ज्ञात नहीं कि तुममें इतनी शक्ति है कि तुम अपने वरको आसानीसे अपना दास बना सकती हो।"

प्रसन्नताकी अस्पष्ट झलक तरुणीके मुखपर नृत्य करने लगी। कृष्णने उसकी लज्जामयी मुसकानसे पता लगा लिया कि वह "जीवन-सङ्गी" पानेके लिए कितनी उत्सुक है, फिर धीरेसे कहा—"मैं तुम्हारे सम्मुख बहुत-से वर उपस्थित करता हूं, तुम अपनी इच्छासे किसी एकको पसन्द कर लेना।"

तरुणी चुपचाप खड़ी, विशाल नीले आकाशकी ओर टकटकी बांधकर देख रही थी ! थोड़ी देरके बाद उसके आसपास आभूषणोंका ढेर लग गया और इसके साथ ही एक देवताने धरतीपर पग रखा !

"मेरा नाम कुबेर है," उसने अपना परिचय स्वयं देते हुए कहा—"मेरे पास अनन्त धन है ! यदि आप मुझे अपना दास बनानेकी कृपा करें, तो मैं अपना सारा धन—विशाल भवन, रत्नोंसे सुसज्जित वस्त्र—सब आपकी सेवामें अर्पण कर दूंगा।"

तरुणीने कुबेरकी सारी सम्पत्तिको अपनी काल्पनिक आंखोंसे देखा और मनमें सोचा कि सुन्दर आभूषण पहनकर वह बहुत सुन्दर दिखाई देगी और प्रतिदिन चांदके सौन्दर्यकी हंसी उड़ायेगी !

अभी वह अपने ध्यानमें ही मग्न थी कि सहसा वृक्षपर बैठा हुआ पपीहा दुःखभरी आवाजमें बोल उठा—"पी कहां!"

तरुणीके हृदयपर वज्र गिर पड़ा ! उसने आभूषणोंको जोरसे लात मारकर कहा—"ले जाओ इनको, मैं धनकी भूखी नहीं।"

आकाशपर बादल घिर आये, बिजली कड़कने लगी ! वायुकी तीव्र लहरोंके मध्यमें एक सुडौल देवता पृथ्वीपर उतरा ! उसने आते ही बतलाया कि वह बलका स्वामी पवन है, और उसके अधिकारमें आकाशकी सभी शक्तियां हैं !

तरुणीने उस जङ्गलीको देखा, जिसके पाषाण-सदृश शरीरमें हृदय नहीं था—ऐसा हृदय, जिसमें प्रेमके कोमल भाव छिपे रहते हैं !

"मुझे इनमेंसे किसी भी वस्तुकी आवश्यकता नहीं, तुमने स्त्रीको समझनेमें भीषण भूल की है।"—यह कहकर उसने मुंह दूसरी ओर फेर लिया !

अब जो देवता आया, उसका नाम था—ब्रह्मा ! वह विद्याका देवता था। उसके बाल चांदनीके समान सफेद थे। वह लालसामयी दृष्टिसे देखता रहा—तरुणीके कम्पित होठों-

को, जो यौवनके बोझसे कांपकर चुम्बनका निमन्त्रण दे रहे थे।

ब्रह्माके मरे हुए उद्गार एक बार फिर भड़कने लगे! उसे अनुभव होने लगा कि वह फिर जवान हो गया है—उसने आगे बढ़कर कहा—"मैं तुम्हें सारे ब्रह्माण्डकी विद्या दूंगा, तुम मुझे अपना दास बना लो!"

तरुणी खिलखिलाकर हंसने लगी—"बाबाजी! क्षमा कीजिये, मुझे ऐसे दासोंकी आवश्यकता नहीं, जिनकी रक्षाके लिए मुझे और दास नियत करने पड़ें।" इतना कहकर तरुणीने जोरसे कहकहा लगाया। ब्रह्मा लज्जित होकर चला गया।

एक हाथमें मधुका प्याला और दूसरेमें "श्रृङ्गार-काव्य" लिये एक और देवता आया। उसका नाम था—कामदेव। उसकी कविताकी कल्पना थी—"मधु और सौन्दर्य!" तरुणीने उस मतवाली मूर्तिको स्नेहमयी दृष्टिसे देखा और करीब ही था कि वह उसे अपने प्यारका केन्द्र बनाती कि सहसा कामदेवकी आंखोंसे वासनाके अङ्गारे निकलने लगे! पवित्रताकी मूर्ति—स्त्रीने कामदेवको अपनी तेजमयी आंखोंसे घूरा, वह उसी समय अन्धा हो गया!

स्त्रीने रोकर कृष्णसे कहा—"क्षमा कीजिये! मैं ऐसे दासोंसे बाज आयी, न जाने किन-किन बदमाशोंसे पाला पड़ता है।"

अभी वह आगे कुछ न कहने पायी थी कि इतनेमें उसने पाससे गुजरते हुए एक सुन्दर देहधारीको देखा, जो अपनी धुनमें मस्त गाता हुआ जा रहा था!—पूछनेपर मालूम हुआ कि वह "पुरुष" है। अकस्मात् वृक्षपर बैठा हुआ पपीहा चिल्ला उठा—"पी कहां!"

तरुणीने उस जवान पुरुषको देखा, जिसमें नाटकके "हीरो" के-से तमाम गुण थे! उसे ऐसा जान पड़ा, जैसे कोई उसके हृदयकी वीणाके तारोंको छेड़ रहा है। उसे अपने उद्गारमें हलकी-सी टीस अनुभव हुई!—आज उस "अभिमानिनी"को अपना यौवन—अपना सौन्दर्य एक असह्य भार जान पड़ा! वर्षोंसे सोये हुए प्रेमने जागते ही सौन्दर्यको परास्त कर दिया!

"क्या तुम इस सुन्दर उपहारको स्वीकार करोगे?" स्त्रीकी ओर सङ्केत करते हुए कृष्णने युवकसे पूछा।

पुरुषने ठण्डी सांस लेकर कहा—"पर मेरे पास धन नहीं।"

तरुणीने चिल्लाकर कहा—"मुझे धन नहीं चाहिए।"

"और न मेरे पास बल और विद्या ही है।"

"छोड़ो इन नीरस वस्तुओंको।"

"परन्तु हां, मेरे पास एक वस्तु है, जो देवताओंके पास नहीं।"

तरुणीका दिल जोर-जोरसे धड़कने लगा, उसने कम्पित स्वरमें पूछा—"वह···वह कौन-सी वस्तु है?"

"वह है—'प्रेम', असीम प्रेम।" पुरुषने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

पुरुषका मुस्कराना था कि तरुणीके हाथकी कलियां खिलकर फूल बन गयीं!

तरुणीने पुरुषके उपहारको स्वीकार किया और शर्माते हुए कहा—"आजसे मैं आपकी दासी हूं।"

पुरुषने उसे अपने गले लगाकर कहा—"यदि तू चाहती है कि मैं तुझसे अमिट प्रेम करूं, तो दासीके बजाय मेरे हृदयकी रानी बन।" *

---

* गुजरातीसे।

———

सुधारकी तहमें

श्री रामसरन शर्मा

सभी ओर तो आज सामाजिक सुधारकी धूम है। जिधर भी देखें, जीवनके हर पहलूमें हम सुधार करनेको व्यग्र हैं।

शादीमें, मौतमें, पितृतामें, दाम्पत्य-जीवनमें, रोजकी रहन-सहनमें—हमें सब जगह ही तो सुधारकी आवश्यकता जान पड़ती है।

इसको हम कहते हैं राष्ट्रीय जागरण। हमें गर्व होता है यह समझकर कि हम ऐसे युगमें पैदा हुए हैं, जहां दाहिने-बायें सभी ओर सुधार हो रहा है। हम समझते हैं, इसमें हमारी या हमारे युगकी कोई विशेषता है। शायद हम किसी अज्ञात कारणसे भगवान्‌की विशेष सृष्टि बनकर धरा-धामपर अवतीर्ण हुए हैं। शायद हमारे हृदयोंमें ज्ञान, समझ-बूझ और मानवकी पीड़ा और उसके प्रति अन्यायकी विशेष अनुभूति है।

बड़ी भारी विडम्बना है यह हमारी। वास्तवमें ध्यानसे देखनेसे सुधार इस युगकी ही कोई विशेषता नहीं है। यह कोई हमारा ही नया अन्वेषण नहीं है। यह तो सदासे ही रहा है। चिरन्तन है, सनातन है। इसका आदि, सृष्टिका आदि और इसका अन्त भी उसीके साथ होगा।

अतीत कालके मानवसे अपनी तुलना करके देख लीजिये। आज हम, हमारा घर, हमारा नगर, हमारा सारा जीवन, मानव-जातिके युगान्तरकारी सुधारोंका समूह और परिणाम है। यह दोनों ही है। न जाने किस-किस युगमें कितने-कितने सुधारकोंने प्राणपणसे चेष्टा करके हमें इस दशापर पहुंचाया है।

आज हम तलाक, विधवा-विवाह, जाति-पांति तोड़ना आदि सुधारोंको ही अपने जीवनका, मानव-जातिके जीवनका सबसे मुख्य अङ्ग मान बैठे हैं। कमसे कम इस देशमें तो। हमें आश्चर्य होता है अपने पूर्वजोंकी दृष्टि-हीनता और रूढ़िवादपर कि वे इतने बड़े अन्यायोंके होते हुए भी जीवित क्यों रहे। क्यों नहीं उन्हें मिटानेमें स्वयंको मिटानेकी कोशिश की।

इस प्रकार मन ही मन अपनेपर तालियां पीटते समय, हम भूल जाते हैं कि आजसे पहले भी सुधारक रहे हैं और आजके बाद भी रहेंगे। बादमें आनेवाले सुधारक हमें मूर्ख, घमण्डी, अदूरदर्शी···न जाने क्या-क्या कहेंगे। आजसे पहले-के सुधारकोंके सामने भी समस्यायें थीं और उन्होंने उन्हें हल करनेमें हमसे कम हिम्मतसे काम नहीं लिया था।

आदि कालके नङ्गे मानवने थोड़े दिन बाद पत्तियोंसे शरीर ढांकना प्रारम्भ किया, ऐसा हम पढ़ते हैं। किन्तु इसे पढ़कर हम उस महान् क्रान्तिकारीकी सूझ, अध्यवसाय और लगनकी दाद नहीं देते हैं। कितना बड़ा सुधार था वह। न जाने कितने-कितने नङ्गे मनुष्योंको समझा-बुझाकर अपना बनाना पड़ा होगा। न जाने कितनी झख मारनेके बाद किसी सुधारककी समझमें यह आया होगा कि शरीरको नङ्गा रखना बुरा है और उसे पत्तियोंसे ढका जा सकता है। इतना कर लेनेके बाद भी उसका कार्य हो चुका हो, सो कठिन ही था। पहले सुधारकको पत्तियां लपेटनेपर न जाने कितना मखौल, कितना विद्रूप······शायद बायकाट भी ···सहना पड़ा होगा।

उसीकी बदौलत तो हम आज सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनते हैं।

इसी प्रकार शादी, समाज, नियम, राजा, प्रजा······ सभीको बनानेमें न जाने कितने विराट् आन्दोलन करने और आन्दोलनकारियोंको प्राण गंवाने पड़े होंगे।

इसी प्रकार पत्थर-कालसे लौह-काल और खेती-बारीसे आज तक सदा ही तो सुधार होता रहा है। सुधारक रहे हैं।

हमारी प्रकृति ही जान पड़ता है सुधार-प्रिय है।

क्या सच ही ऐसा है?

सुधार क्या होता है? उसमें क्या आवश्यक होता है?

सुधार नयी चीज होता है और वह हमारी किसी खास तकलीफको दूर करता है।

और इन दोनोंके प्राकृतिक विरोधमें ही सुधारककी कशमकशका जन्म होता है।

हम तो सदासे ही किसी भी नयी वस्तुके विरुद्ध होते हैं। कोई भी रद्दोबदल हमें स्वतः ही अपना शत्रु बना लेती है। हम सदासे ही, स्वभावसे ही रूढ़ि-प्रिय होते हैं। जो है, उसे वैसा ही रखना चाहते हैं।

इस हमारे प्राकृतिक गुण या दोषके विषयमें अधिक दलील करनेकी आवश्यकता तो जान नहीं पड़ती है। स्वयं-सिद्ध-सी बात है।

यह हो सकता है कि हमारा यह डर आदिकालसे हो, जब कि हमें इस अनजाने संसारमें, हर नयी चीज, हर नया करिश्मा डरा देता था। हम थे भी तो कितने अपाहिज और निर्बल। और आज सारे संसारपर अधिकार पा लेनेपर भी शायद हमारा यह डर नहीं निकल सका है।

किसी नयी बातसे हम घबराते तो हैं ही, किन्तु हम अपनी तात्कालिक स्थितिके विरुद्ध भी सदा हृदयमें शिकायत-सी रखते हैं। कोई भी परिस्थिति—राजासे रङ्क तककी—हमें सन्तोष प्रदान नहीं करती है। हमें उसमें भी कष्ट-सा महसूस होता है।

जब कष्ट होता है, तो बदलना भी चाहिए.........पर, बदलनेसे तो हम डरते हैं।

बड़ी अजीब-सी, पेंचीदा-सी बात है। हम एक बात चाहते भी हैं और उससे डरते भी हैं।

इन्हीं दोनों भावनाओंको मिलाकर—सुधारका जन्म होता है। सुधारके अर्थ ही हैं किसी बातको तोड़ना-फोड़ना या मिटाना नहीं, वरन् उसे ही काट-छांटकर कुछ ठीक-ठाक कर देना। यह ऐसा ही है, जैसे पेड़को माली सुधारता है। मतलब है कि काट-छांटकर सुन्दर कर देता है, न कि बिलकुल बदल ही देता है।

सुधारमें डरपोकपन भी है और हिम्मत भी। डरती-सी, कांपती-सी हिम्मत।

जब भी कभी मानव-समाजके अधिकांशमें बदल डालने-की भावना तीव्र रूपसे बलवती हो जाती है, तभी क्रान्ति हो जाती है।

क्रान्ति है परिवर्तन, पुनर्निर्माण।

इस डरपोकपनके कारण ही हम सुधारक बनते हैं, क्रान्तिकारी नहीं। इसी कारण जनताका एक भाग सदा ही क्रान्ति और सुधारोंके विरुद्ध रहता है।

यह बात सुधारकोंको बुरी-सी तो लग सकती है, पर है सत्य ही।

सुधारकी तहमें एक भावना और भी निहित रहती है। उस भावनाको हम मानव-चरित्रकी बड़ी ही निकृष्ट भावना मानते हैं। धर्म और शास्त्र सभी हमें नित्य सिखाते हैं कि हम उस कमजोरीको अपने अन्दरसे निकाल डालें। पर, उसे निकाल डालनेपर सुधार हो सकना तो असम्भव ही होगा।

वह भावना है—स्वार्थपरता, खुदगर्जी।

फिर वही अजीब-सी बात। भला सुधार-जैसे पुण्य-कार्यमें स्वार्थपरता कहां? सुधारक तो होता ही है परोपकारी।

ठीक है।

हमें इसपर जरा ध्यानसे सोचना पड़ेगा। किसी भी तथ्यको यों ही मान लेने या न मान लेनेसे काम नहीं चलता है। हम बहुधा ऐसा ही करते हैं, यहीं हमारी ट्रैजेडी है। हर बातपर निष्पक्ष विचार करना पड़ेगा। करना ही पड़ेगा।

यह तो मानना ही पड़ेगा कि कई सुधारक तो खुले प्रकारसे स्वार्थसिद्धि करते हैं। लड़कीके ब्याहमें लड़कीवाला सुधारक बननेकी कोशिश करता है, तो लड़केवाला कट्टरवादी होनेका दावा करता है। विधवा-विवाह करनेवाले वे भी होते हैं, जिनका विवाह कारणवश मुश्किलसे हो सकता हो।

ऐसी ही मिसालें और भी मिल जायेंगी।

पर हमने जो ऊपर कहा है, इन मिसालोंसे ही हम 'सुधारकी तहमें स्वार्थपरता है,' ऐसा नहीं कह सकते हैं। और कह भी तो नहीं रहे हैं।

देखिये, हम पहले कह चुके हैं कि हम सदा ही अपनी तात्कालिक परिस्थितिसे परेशान और झुंझलाये रहते हैं। हमें आज सदा ही परेशान करता है। और हम सदा ही यह सोचते हैं कि किसी प्रकार ये परिस्थितियां ऐसी बदलें कि हमें कुछ चैन मिले।

सदा ही कुछ न कुछ बदलकर हम सुखकी तलाश करते हैं।

यह तलाश ही हमारे जीवनका ध्येय-सा जान पड़ती है। हमारे सारे काम, सारी जीवन-चर्या केवल इसी एक ध्येयके निमित्त होती है। मकान, पलंग, सड़क, शादी, बच्चे...इन

सबमें ही तो हमारी सुख पानेकी भावना निहित होती है।

सो हम अपनी परिस्थितिसे सदा दुखी रहते हैं और सदा सुखकी खोजमें रहते हैं—वेश्यागामीसे महात्मा तक।

इस खोजमें ही तो हम सुधारक बन जाते हैं। प्रत्येक सुधार इसीलिए तो होता है कि हमारी—समाजकी ही सही—स्थितिमें कुछ ऐसा अन्तर पड़े कि हम और भी सुखी हों।

हम—मैं—हम सब!

यह स्वार्थपरता नहीं तो और है ही क्या? इसे ऊंचे दर्जेकी कह लीजिये—पर है अवश्य।

हमारी रायमें तो इसका होना बुरा भी नहीं है। यह एक हद तक आवश्यक है—है भी, अनिवार्य। हमारे जीवनका एक तत्त्व ही तो है।

एक बात और—इसी प्रकार सुखकी खोजमें सुधार करते-करते हम एक दिन चरम-सीमा तक पहुंच जायंगे। निरन्तर आगे बढ़नेवालेका ध्येय तक पहुंचना अवश्यम्भावी है।

यानी, नियन्ताने हमारे अन्दर स्वार्थ, सुख-प्राप्तिकी आकांक्षा, इसलिए रखी है कि हम अपनी उन्नतिकी चरम-सीमा तक पहुंच सकें।

———

गीत

मैंने तुम्हें पुकारा,
आयी लौट चतुर्दिक मेरी टकराकर ध्वनि-धारा!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

तुमने दिया न ध्यान, दौड़ द्रुत-
आयी सृष्टि विचारी;
किन्तु मुझे सब शक्ति लगा वह
उठा न पायी, हारी!
गुपचुप रोकर सजल दृष्टिसे,
मैंने शून्य निहारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

उल्का-पात विलोक लजाकर,
आंखें कर लीं नीची;
लेकर ठण्डी सांस, उठा तृण,
रेखा भूपर खींची;
कंपा बदन, रोमावलि सिहरी,
गिरा अश्रु-जल खारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

क्या, सचमुच तुम साथ न दोगे,
इस सङ्कटमें मेरा;
दूर करोगे नहीं हृदयका,
छाया हुआ अंधेरा?
आओ, प्राणाधार; हरो दुख,
मैं दुर्दिनका मारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

सहसा हुआ प्रकाश कि मैंने,
मींजे नेत्र उठाये;
देख द्वारपर किलक उठा मैं,
सुधि लेने तुम आये!
रोग, शोक, चिन्ता, पीड़ासे,
मुझे मिला छुटकारा!!
मैंने तुम्हें पुकारा!!

—विनयकुमार।

जय और पराजयका तत्त्वज्ञान

श्री सन्तराम, बी० ए०

हिन्दू जातिने चिरकालसे पराजयके तत्त्वज्ञानको अपना रखा है। सर्वसाधारणका यह विश्वास है कि व्यक्ति ऐसी शक्तियोंका दास है, जिनपर उसका कोई वश नहीं; मनुष्यकी बनावट और योग्यतायें सब वंशपरम्परा अथवा अदृष्ट द्वारा निश्चित होती हैं; उसका सुख उन अवस्थाओंपर निर्भर करता है, जो उसके बाहर हैं; सारांश यह कि वह और चाहे कुछ ही क्यों न हो, परन्तु अपने भाग्यका विधाता और अपने स्वका नायक नहीं।

इस पराजयके तत्त्वज्ञानको पुष्ट करनेमें विज्ञानने सहायता दी है। जीवविद्या (बायोलोजी) मानवको एक ऐसा जन्तु बताती है, जिसके चरितका निश्चय वंशपरम्परा (heredity) और मांस-ग्रन्थियोंके कार्य द्वारा होता है। विकासवाद उसे मर्कटसे कुछ ही अधिक वर्णित करता है। मनोविश्लेषकोंका मत है कि मनुष्य अपने मनके अचेतन प्रदेश (unconscious mind) द्वारा नियन्त्रित होता है।

मनुष्यको स्थितिके हाथकी कठपुतली समझनेका यह भाव समकालीन सामाजिक शास्त्रमें अपनी पराकाष्ठाको पहुंच चुका है, क्योंकि यह शास्त्र नर-नारियोंको अपनी परिस्थितियोंके शिकार, एक आत्माशून्य आर्थिक व्यवस्थाके पञ्जोंमें जकड़े हुए निरुपाय प्राणी प्रकट करता है। यह दृढ़तापूर्वक कहा जाता है कि उन्मुक्त व्यवस्थाके स्थानमें किसी सुचिन्तित व्यवस्थाको, या लोकतन्त्रके स्थानमें साम्यवादको, या पूंजीवादके स्थानमें कम्यूनिज्मको रखने-जैसे किसी अभेदकारी उपायसे ही बहुसंख्यक लोग सुखी हो सकते हैं।

इस प्रकार हमने भावनाओंकी एक जटिल पद्धति उत्पन्न कर ली है। यह पद्धति मानव-समाजको सहायता देनेके बजाय उसी सभ्यताकी हत्या कर डालनेकी धमकी देती है, जिसने इसे उत्पन्न किया है। कृत्रिम वैज्ञानिक सिद्धान्तोंने हमारे शब्द-भाण्डारको पराजयके योगोंसे भर दिया है। हम अविरल रूपसे ऐसे कथन सुन रहे हैं, जैसे कि "व्यक्तित्व एक ऐसी वस्तु है, जो परमेश्वरकी ओरसे विशेष मनुष्योंको मिली रहती है, वह आप प्राप्त नहीं की जा सकती" या "मुझमें अपनेको हीन समझनेका भाव है, जिससे मैं दुःख पा रहा हूं।"

ये और ऐसे ही दूसरे कथन लोगोंमें फैले हुए इस मतके द्योतक हैं कि व्यक्ति एक निस्सहाय प्राणी है, जिसका कर्तृत्व बाह्य शक्तियोंके हाथमें है। परन्तु मनोविज्ञानी यह देख रहे हैं कि यह सिद्धान्त मूलसे ही असत्य है। मनुष्य अपनेको खो बैठा था। मनोविज्ञानके नूतन अध्ययनने उसे पुनः अपने आपका और उन शक्तियोंका बोध कराया है, जो उसे प्राप्त हो सकती हैं, यदि वह अपने सम्बन्धमें हेत्वाभासोंको मनसे निकाल दे।

हमें सामाजिक निश्चिन्तता और व्यक्तिगत निश्चिन्ततामें भेद रखनेकी आवश्यकता है। सामाजिक निश्चिन्तता किसी ऐसी चीजको दिखलाती है, जो समाज व्यक्तिके लिए करता है। व्यक्तिगत निश्चिन्तता कोई ऐसी चीज है, जो व्यक्ति अपने लिए करता है। सामाजिक निश्चिन्तताके अन्तर्गत अधिकतर व्यक्तिको दी हुई वस्तुयें और धन है। व्यक्तिगत निश्चिन्तताके अन्तर्गत वे स्वभाव और कौशल हैं, जो व्यक्ति अपने लिए विकसित करता और जो उसे प्रायः सभी अवस्थाओंमें स्वतन्त्र और स्वनिष्ठ होनेमें समर्थ बनाते हैं।

मनुष्य अब तक भी सृष्टा है, अपने सृष्ट पदार्थोंका शिकार नहीं। वह स्वतन्त्र इच्छा और अगणित सम्भावनाओंका स्वामी है, परिस्थितिका दास नहीं। उसकी क्षमतायें उतनी वंशपरम्परा या दरिद्रताके कारण सीमित नहीं, जितनी कि अपने विषयमें उसकी अपनी दृष्टिके कारण।

उदाहरणार्थ, व्यक्तित्व, जो मित्र बनाने, काम पाने एवं उस कामको संभाले रहने और सफल जीवनके दूसरे रूपोंके लिए इतनी आवश्यक चीज है, ईश्वरसे दान-रूपमें अकस्मात् नहीं मिलता, वरन् यत्नपूर्वक आप प्राप्त किया जाता है। चाहें तो हम व्यक्तित्वका लक्षण इस प्रकार कर सकते हैं कि यह वह परिणाम है, जिसमें किसी व्यक्तिने अपनेमें दूसरोंके लिए रुचिकर एवं हितकर स्वभावों और कौशलोंको

विकसित किया है। उदाहरणार्थ, यह देखा गया है कि जिन बच्चोंको उनके माता-पिता खर्च करनेके लिए यों ही पैसे दे देते हैं, उनका व्यक्तित्व उन बच्चोंके व्यक्तित्वसे निर्बल होता है, जो बूट पालिश करना, घरको बुहारना, बिछौने बिछाना, तरकारी काटना आदि पारिवारिक काम करके उसके पारिश्रमिकके रूपमें माता-पितासे जेब-खर्च पाते हैं। जो नवयुवक विद्यार्थी समाचार-पत्र बेचकर या ट्यूशन करके या किसी दूकानकी चिट्ठियां लिखकर अपना निर्वाह करते हैं, उनका व्यक्तित्व बिना काम किये घरसे पैसे पानेवाले दूसरे बालकोंसे प्रायः प्रबल होता है। इन कामोंका महत्त्व इनके बदलेमें मिलनेवाले पैसों या पुरस्कारमें नहीं, वरन् उन स्वभावों और मनोभावोंमें है, जिनका इनसे विकास होता है। ये स्वभाव ऐसे हैं, जो व्यक्तिके चरित्रको बदलकर मुफ्त खानेवालेसे उसे दाता, केवल खर्च करनेवालेसे उसे पैसा पैदा करनेवाला भी बना देते हैं। सारांश यह कि उनके द्वारा व्यक्तित्वका विकास होता है।

एक समयकी बात है, न्यूयार्कके एक डिबेटिङ्ग क्लबमें विवादके लिए यह विषय रखा गया—"अपने युवकोंके लिए अमेरिका क्या करेगा?" भाषणकर्ताओंमेंसे किसीने कहा, युवकोंके लिए निःशुल्क शिक्षाका प्रबन्ध होना चाहिए, किसीने कहा, उन्हें ऐसा काम दिलानेका प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे वे अपने भरण-पोषणके लिए प्राप्त धन पैदा कर सकें, किसीने कहा, उन्हें धनकी सहायता मिलनी चाहिए, जिससे वे जल्दी विवाह कर सकें, इत्यादि-इत्यादि। परन्तु एक तरुण स्त्रीने कहा—"मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि हमारा विषय 'अपने युवकोंके लिए अमेरिका क्या करेगा' के बजाय वास्तवमें यों होना चाहिए—'हमारा तरुण समाज अमेरिकाके लिए और अपने लिए क्या करेगा?' अमेरिका पहले ही अपने तरुण समाजके लिए बहुत कुछ कर रहा है, इतना कुछ कर रहा है कि शायद संसारका दूसरा कोई भी राष्ट्र उतना नहीं कर रहा। क्या यह अमेरिकाके तरुणोंके लिए इस भावके विरुद्ध विद्रोह करने और इसके बजाय देनेकी रीतियां सोचनेका समय नहीं?" व्यक्तित्वोंके विकासके दृष्टिकोणसे, वह आलोचना नितान्त निर्दोष थी।

हीनताके भावके सम्बन्धमें इतना कहना पर्याप्त होगा कि अच्छा होता कि यह परिभाषा गढ़ी ही न जाती, क्योंकि तब जनताको डरानेके लिए गढ़े गये विचारोंमें एककी कमी होती। हीनताका भाव कोई ऐसा रोग नहीं, जो किसी व्यक्तिको रहस्यमयी रीतिसे आक्रान्त करके उसे निरुपाय कर देता हो। इसके विपरीत, जो व्यक्ति अपनी हीनताको स्वीकार करता है, और फिर इसे दूर करनेके लिए कुछ करता है, उसके लिए यह भाव सच्चे रूपसे उपयोगी हो सकता है, क्योंकि इससे वह श्रेष्ठ बननेका यत्न करता है।

किसी क्षेत्रमें श्रेष्ठता प्राप्त करनेका भाव कैसे काम करता है, उसका उदाहरण डुबकी लगाना सीखनेकी क्रियासे दिया जा सकता है। सीखनेवाला अपनेको सुन्दर रूपसे सन्तुलित करता है, आगेकी ओर झुकता है, और अन्तिम क्षणपर हिचकिचाकर डरसे पीछे हट जाता है। वह पुनः उद्योग करता है और फिर पीछे हट जाता है। अन्ततः, क्रोधसे भरा हुआ वह अतिसाहस करता है और भीषण धप शब्दके साथ पानीमें कूद पड़ता है। वह घबराया हुआ और चिढ़ा हुआ पानीके ऊपर आता है। दर्शकोंकी टिप्पणियां उसे और भी दुखी करने लगती हैं। यदि, इस समय, वह डरसे आगेके लिए उद्योग करना छोड़ देता है, तो उसे आयु-भरमें भी कभी डुबकी लगाना नहीं आता और उसका वह डर कभी दूर नहीं होता। परन्तु यदि वह हतोत्साह नहीं होता, और दुःखदायी तथा भद्दी डुबकियां लगाना जारी रखता है, तो अन्ततः उसे डुबकी मारनेमें कोई भी कष्ट नहीं होगा और डुबकी लगानेके बाद जब वह आयेगा, तो बड़ा प्रसन्न होगा। उसके मित्र उसकी प्रशंसा करेंगे, और उसे अपनेपर और अपनी परिस्थितिपर एक और विजय प्राप्त हो चुकी होगी।

डुबकी लगाना हो या जीवनका कोई दूसरा रूप हो, व्यक्तित्व और श्रेष्ठताके विकासमें यह आधारभूत मनोविज्ञान है। अपनेमें कार्यकारी दक्षताका विकास करनेके लिए, यह आवश्यक है कि व्यक्ति, इस अवस्थामें और उस अवस्थामें, पुनः-पुनः जीवनके प्रवाहमें डुबकी लगाये। जो व्यक्ति केवल वही काम करता है जिनका करना उसे भाता है, जो घबरा देनेवाली और दुःखद स्थितियोंसे बचता है, वह श्रेष्ठताके बजाय हीनताके स्वभावोंको ही बढ़ाता है।

यहां हमें मनुष्यकी मनोवैज्ञानिक और यान्त्रिक कल्पनाके बीचका अन्तर देख पड़ता है। एक ओर तो वे हैं, जो हीन हैं और या तो अपने दोषोंको स्वीकार करनेसे

इनकार करते हैं या विश्वास रखते हैं कि वे उनको दूर करनेके बारेमें कुछ नहीं कर सकते। ये लोग अपने उत्कर्षके लिए कोई यत्न नहीं करते, इसलिए वे बहुधा समूची सामाजिक व्यवस्थाका ही सुधार करना चाहते हैं। वे यह नहीं देख सकते कि जीवनकी चाहे कोई भी कल्पना क्यों न हो, जब तक वे अपनेको बदलते नहीं, तब तक वे उसमें कभी भी ठीक न बैठेंगे। इसके विपरीत, वे लोग हैं, जिनका विश्वास है कि वे अपने व्यक्तित्वको विकसित कर सकते और दक्षता एवं श्रेष्ठता प्राप्त कर सकते हैं। यही लोग हैं, जो गोलियां चलना और चीखना-चिल्लाना बन्द हो जानेके बाद, किसी प्रकारके समाजको, चाहे वह लोकतन्त्र हो और चाहे कम्यूनिज्म, संभालते हैं।

दुःखकी बात यह है कि वर्षोंसे हमारी सभ्यताने हमें यह विश्वास करनेसे नहीं रोका कि हम असहाय हैं, और इससे भी बुरी बात यह कि इसने हमें सार्वजनिक कामोंमें व्यक्तिगत उत्तरदायित्वसे बचनेके लिए उत्साहित किया है। व्यक्ति कहते हैं, "नगर और राज्य सामाजिक बुराइयोंकी चिन्ता करें।" या "सरकार सबको नौकरी और काम दे।"

लोगोंमें यह अन्धविश्वास फैल रहा है कि वोटोंसे सामाजिक निश्चिन्तता प्राप्त हो सकती है। नौकरियां अधिकार या सिद्धान्तसे नहीं हैं, वरन् कार्यकारी व्यक्तियोंने उन्हें उत्पन्न किया है। वे स्वतन्त्र वाणिज्य द्वारा कृत्रिम रूपसे नहीं बनायी जा सकतीं और न लेबर यूनियन ही उनकी गारण्टी कर सकते हैं। सिवाय विशेष अवस्थाओंके सरकार भी चिरकाल तक काम नहीं पैदा कर सकती। डिक्टेटरशिप या फैसिज्ममें प्रत्येक काम करनेवालेको काम दिया जा सकता है; परन्तु तब काम करनेवाले राज्यके गुलाम बन जाते हैं। उनके लिए यह अनिवार्य होता है कि जो काम उन्हें दिया जाय, साथ ही जितने घण्टे उनसे काम लिया जाय, जिन अवस्थाओंमें उन्हें रखा जाय, और जो वेतन दिया जाय, उसे वे स्वीकार करें।

स्वतन्त्र व्यक्तियोंके लोकतन्त्रमें, इस स्वतन्त्रतामें काम पैदा करनेका उत्तरदायित्व भी आ जाता है। प्रत्येक व्यक्तिके लिए इस क्रियामें सहायता देना आवश्यक है। जो राष्ट्र अपने नागरिकोंको उन असामियोंकी प्रतीक्षा करनेके लिए प्रोत्साहित करता है जिनपर उनका अधिकार है, वह अपनी जनताको असामी पाने या पाकर उसे संभाले रखनेमें दिनपर दिन अधिक अयोग्य पायेगा।

अपने ऊपर और अपनी परिस्थितिपर विजय पानेमें समर्थ व्यक्तिके रूपमें मनुष्यकी सच्ची कल्पना धर्ममें, मनोविज्ञानके आविष्कारोंमें, और परिकथामें अब तक बनी हुई है। लाखों और करोड़ों लोग रामायण पढ़ते हैं। क्यों? क्योंकि राम अपनी परिस्थितियोंके दास नहीं, स्वामी बनकर जिये थे। राज्यका छिन जाना, बनमें मारे-मारे फिरना, स्त्रीका अपहरण, लोक-निन्दा, कोई भी बात उन्हें कर्तव्यसे न डिगा सकी। वे जीवन-संग्राममें विजयी होकर निकले। उन्होंने बानरों जैसी असभ्य और शत्रु जातिको मित्र और सभ्य बनाकर उनकी सहायतासे रावणपर विजय पायी।

जितनी भी जल्दी हो सके, हमें यह अनुभव करना चाहिए कि जय और पराजयमें, सफलता और विफलतामें जो अन्तर है, वह तत्वतः तत्त्वज्ञानोंकी बात है। पराजयका तत्त्वज्ञान बड़ेसे बड़े सम्पन्न व्यक्तिके लिए भी विफलताको अवश्यम्भावी बना देता है; सफलताका तत्त्वज्ञान, अपनी शक्तियोंसे पूरा-पूरा काम लेनेका दृढ़ निश्चय करनेवाले कम योग्य और कम सम्पन्न मनुष्यमें भी आश्चर्यजनक काम कर दिखाता है।

एक खगोल-शास्त्रीने एक बार एक मित्रसे कहा, "खगोल-शास्त्रीकी दृष्टिमें, मनुष्य अनन्त ब्रह्माण्डमें एक बहुत ही छोटा-सा बिन्दु है।" इसपर उसके मित्रने कहा, "हां! फिर भी मनुष्य खगोल-शास्त्री है।" यह उत्तर एक महान् सत्यका निदर्शन करता है; व्यक्ति ही एक ऐसा आधार है, जिसपर कोई सामाजिक व्यवस्था आरामसे बनायी जा सकती है।

चीनका चलता-फिरता विश्वविद्यालय

श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा

चीन-जापान-युद्धने चीनियोंके लिए जैसी समस्यायें उत्पन्न कर दी हैं, उनमें शिक्षा-संस्थाओंकी व्यवस्था भी अत्यन्त कठिन हो गयी है। जापानी सैनिक चीनके अञ्चलोंपर आधिपत्य जमाते आगे बढ़ते चलते हैं और जहां कहीं भी वे जाते, वहांकी उन शिक्षा-संस्थाओंको विनष्ट करते जाते हैं, जो जापानियोंके सामने आत्म-समर्पण कर जापानी हितोंके अनुकूल शिक्षा देनेकी व्यवस्था नहीं करतीं। और ऐसी संस्थाओंकी संख्या कम नहीं होती, अतः चीनके उन समस्त अञ्चलोंकी व्यवस्था अत्यन्त कठिन हो चली है, जिनपर जापानियोंका अधिकार हो चला है। इन कठिनाइयोंमें अनेक चीनी संस्थायें एक जगह रहकर काम नहीं कर सकतीं और इसीलिए चेकिङ्गके राष्ट्रीय विश्वविद्यालयको आज जगह-जगह भटकना पड़ रहा है।

चीन-जापान-युद्धमें चीनने जिस नीतिका अवलम्बन किया है, उसका मुख्य आधार यही है कि चीनमें जापानके लड़नेके लिए इतना अधिक समय दे दिया जाय कि लड़ते-लड़ते उसकी शक्तियां क्षीण हो जायें। इसके अतिरिक्त चीन और कोई नीति अपना भी नहीं सकता था; क्योंकि सैनिक तैयारीमें चीन जापानकी तुलनामें इतना तुच्छ रहा है कि जापानने सदा ही उसे नगण्य समझा। और जापानियोंने इसके साथ ही जिस बातपर सबसे अधिक जोर दिया, वह यह है कि चीनका नैतिक साहस तोड़ दिया जाय, जिससे वर्तमान अधिकारियोंके प्रति चीनी जनताका विश्वास नष्ट हो जाय। किसी भी राष्ट्रकी राष्ट्रीय शक्तिको नष्ट करनेका इससे आसान तरीका शायद ही और कोई हो। इस कामके लिए ही जापानने चीनके कितने ही विद्यालयोंको जलाया,
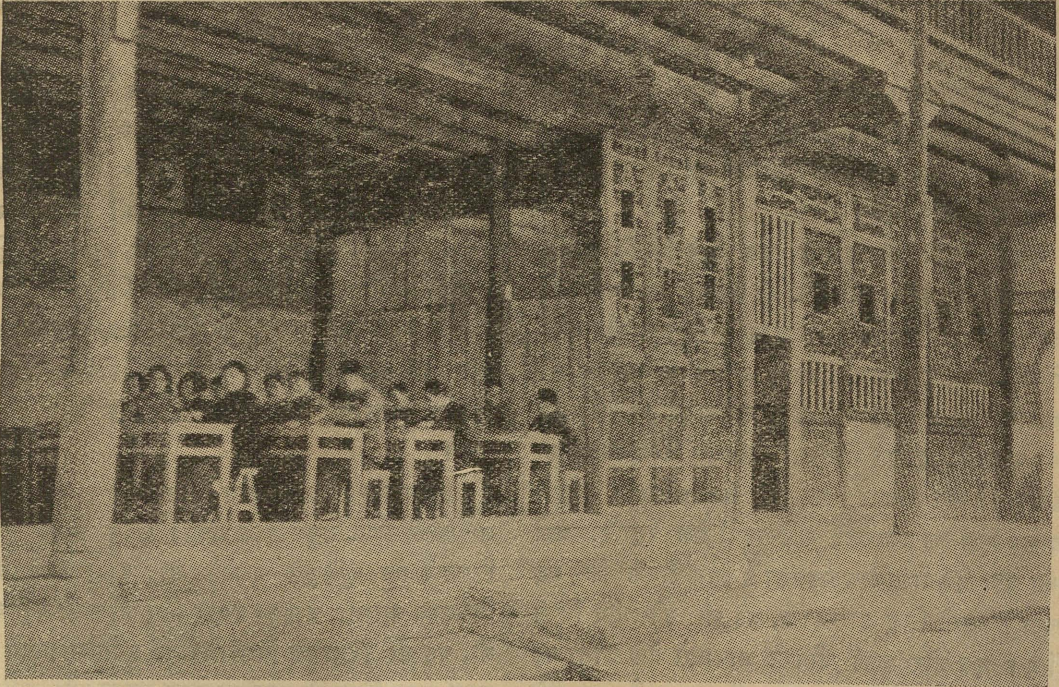
मन्दिरमें छात्र अध्ययन कर रहे हैं।
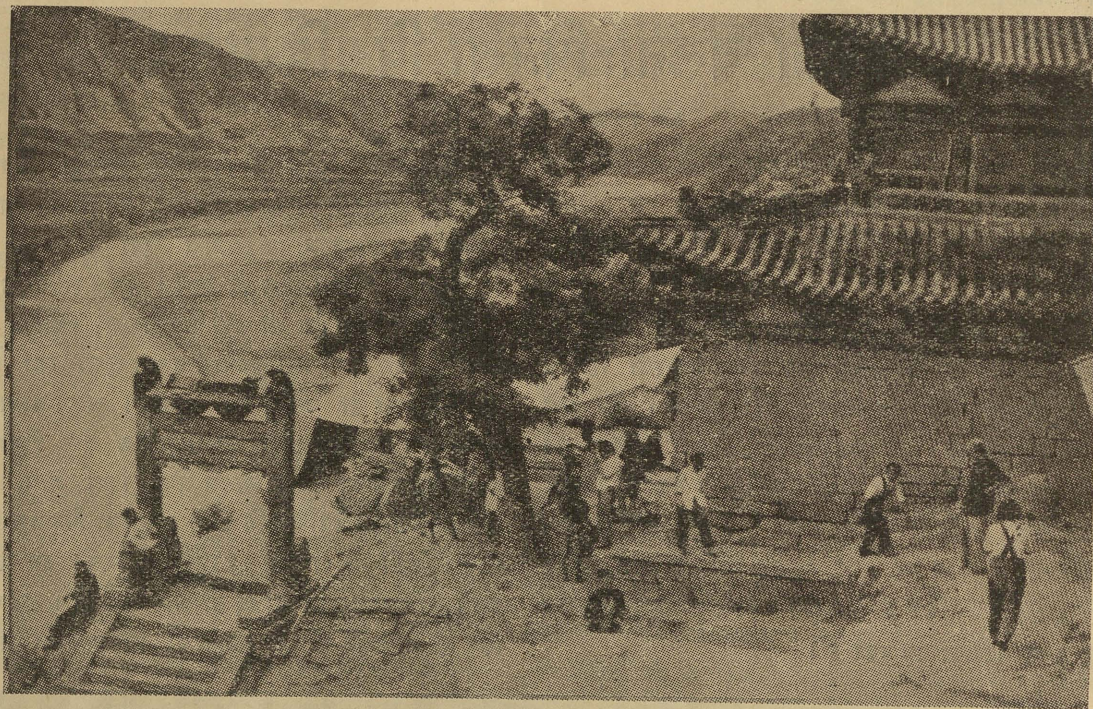
चलते-फिरते विश्वविद्यालयके छात्र देहातियोंके बीचमें ।

कितने ही महान् पुस्तकालयोंमें संगृहीत ज्ञान आज राखमें मिल चुके हैं और चीनके कितने ही पुराने समाचार-पत्र—जिनमें संसारका सबसे प्राचीन समाचार-पत्र भी सम्मिलित है—नष्ट किये जा चुके हैं ।

चेकिङ्ग विश्वविद्यालयके पास जब जापानियोंके आक्रमणका समाचार पहुंचा, तो शीघ्र ही समस्या उठ खड़ी हुई कि प्रायः छः सौ विद्यार्थियों, अध्यापकों तथा उनके परिवारोंको लेकर कैसे और कहां जाया जाय । चीनकी दूसरी संस्थाओंको भी इस प्रकारकी कैसी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, इसका भी पता चेकिङ्ग विश्वविद्यालयकी कठिनाइयोंसे लग जायगा । पर यह चलता-फिरता विश्वविद्यालय जहां इस प्रकारकी कठिनाइयां झेल रहा है, वहां इसका चीनपर क्या प्रभाव पड़ रहा है और चीनके लिए यह कितना उपयोगी सिद्ध हो रहा है, यह भी उपेक्षणीय विषय नहीं है । एक ओर जहां चीनको जापानसे पीछे जाना पड़ रहा है, वहां वह आगे भी बढ़ता नहीं जा रहा है, यह कैसे कहा जा सकता है ।

चेकिङ्गके विश्वविद्यालयको पहले चूकिङ्ग जाना पड़ा । विश्वविद्यालयके अधिकारी तब तक दूर नहीं जाना चाहते थे, जब तक कि परिस्थितियां उन्हें विवश न कर दें । इसलिए चूकिङ्गमें ही अधिकारियोंने विद्यार्थियोंको एकत्र कर काम शुरू कर दिया । चूकिङ्गपर जापानियोंके आक्रमण होने लगे थे और अत्यधिक वर्षा न होनेपर प्रतिदिन जापानी बम बरसानेकी कोशिश करते, इसलिए विद्यालय रेलवे-स्टेशन तथा एयरोड्रोमके बीचोबीच रखा गया, जिससे आवश्यकता पड़नेपर तत्काल रक्षात्मक उपायोंसे काम लिया जा सके ।

इस सम्बन्धमें उक्त विश्व-विद्यालयके एक अध्यापक फ्रैङ्क माइकेलने अपने अनुभवोंका अच्छा वर्णन किया है । उसने लिखा है कि चूकिङ्गसे चलनेके बाद हमने केण्टेहमें जाकर विद्यालय बसाना चाहा । हमारे लिए जो सबसे बड़ी कठिनाई थी, वह थी विज्ञानके विद्यार्थियोंकी प्रयोगशालाको लेकर । जगह-जगह विज्ञानके यन्त्रोंको लेकर जाना और प्रयोगशाला खोलकर पढ़ाईका प्रबन्ध करना आसान न था । और फिर

विद्यार्थियोंकी संख्या इतनी विशाल कि सर्वत्र सब तरहकी व्यवस्थायें करना कठिन हो जाता।

केण्टेमें हमने विद्यालय खोला, तो वहांके मन्दिरोंमें हमारी पढ़ाई शुरू हुई। मन्दिरका हाल बहुत बड़ा था और उसमें बेञ्चों और कुर्सियोंकी संख्या भी कम न थी, इसलिए विद्यार्थियोंको इससे बड़ी आसानी हुई। परन्तु जहां कहीं भी जाते, वहां खाने-पीनेकी व्यवस्था, प्रोफेसरोंके परिवारोंका प्रश्न तो रहता ही, पर इससे अधिक विकट समस्या यह बनी रहती कि जापानी न जाने कब फिर वहां हाजिर हो जायें। इसलिए स्थायी व्यवस्था कहीं भी करना असम्भव था और हम लोगोंकी कठिनाइयोंका अन्त ही न होने पाता।

और वास्तवमें हुआ भी ऐसा ही। अभी सितम्बरमें हम लोग चेकिङ्गसे चले थे। इस बीचमें चूकिङ्गमें हम लोगोंने डेरा डाला और अभी दिसम्बर ही लगा था कि केण्टेसे भी हम लोगोंको चलनेकी तैयारी कर देनी पड़ी और कियांगमें पहुंचते-पहुंचते हमें पता चला कि यह स्थान उतना सुरक्षित नहीं है, अतः हमें किसी और स्थानकी तलाशमें जाना चाहिए।

इसलिए अब हम लोग शांगती पहुंचे। शांगती हमारे लिए एक अच्छा स्थान साबित हुआ, जहां हम छः महीने रह सके। शांगती प्रकृतिकी गोदमें पलनेवाला एक विशाल गांव है, जो प्राचीन कालमें शिक्षा-केन्द्रके रूपमें ख्याति प्राप्त कर चुका है। हम लोगोंने वहां डेरा डाला, तो मकानोंकी कमी थी। अतः रहनेके लिए तो हम लोगोंने उनमें किसी प्रकार व्यवस्था कर ली, पर पढ़नेके लिए काफी जगहोंकी व्यवस्था होना असम्भव था। अतः गांवके बगीचोंमें ही हमारे छात्र पढ़ते। हमारे छात्रोंको इस प्रकार घूमते-फिरते रहनेसे लाभ भी खूब हुए। उन्हें जगह-जगह ग्रामीणोंमें घूमने और उनका अध्ययन करनेका अवसर मिला। देहातोंमें लोगोंको अपने स्वास्थ्यका ध्यान नहीं रहता, वे स्वास्थ्यके नियमोंकी भी जानकारी नहीं रखते, खेती घोर अवैज्ञानिक तरीकेसे होती और सिंचाई तथा निवास-स्थान-सम्बन्धी जानकारी भी उनकी प्रायः नहींके बराबर रही है। हमारे विद्यार्थियोंने देहातियोंको इन सारी बातोंके सम्बन्धमें बताना शुरू किया।
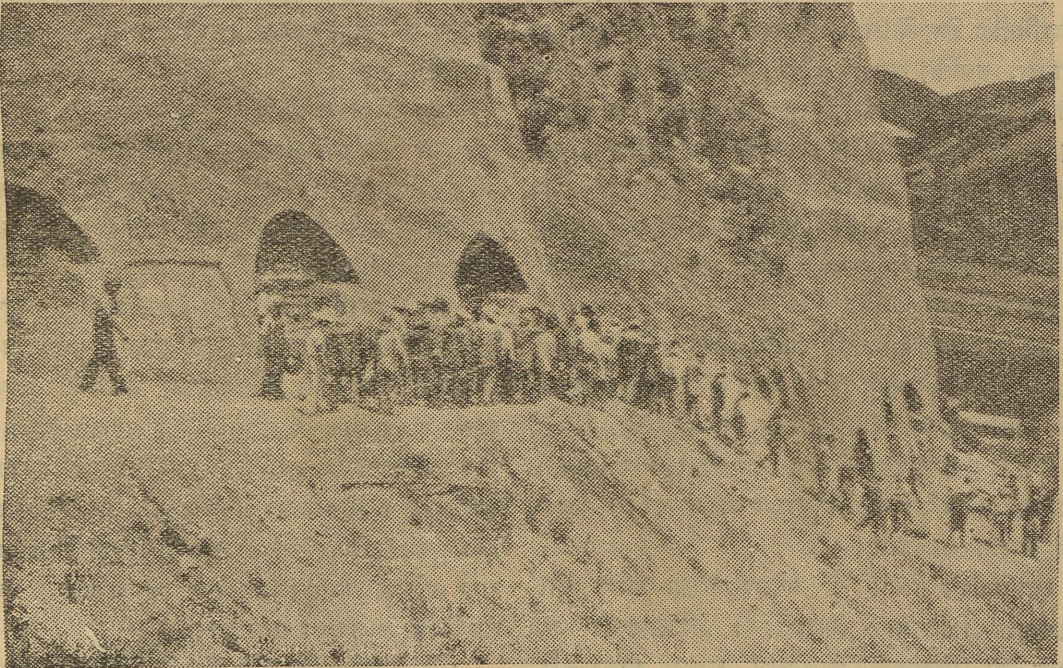
जापानी विध्वंस-लीलाके बाद चीनियोंने पहाड़ी कन्दराओंमें सैनिक-शिक्षाका प्रबन्ध कर रखा है।

छात्र जहां-जहां जाते, चीनियोंमें राजनीतिक प्रचार भी करते जाते हैं।

युद्धकी जैसी अनिश्चित अवस्था हो गयी है, उसमें विद्यार्थियोंके लिए शिक्षापर रुपये खर्च करना भी कठिन हो गया था, इसलिए सरकार द्वारा इस बातकी कोशिश की गयी कि विद्यार्थियोंको कर्ज दिया जाय, जिसकी शर्त रहे कि युद्ध समाप्त होनेके दो वर्षके भीतर वे उसे चुका दें। इस व्यवस्थाके सम्बन्धमें विद्यालयके अध्यक्षने यह सुझाव पेश किया कि कर्ज देनेकी अपेक्षा विद्यार्थियोंको कुछ काम दिये जायें, जिन्हें करके वे इतना उपार्जन कर लें कि उनकी पढ़ाईका खर्च निकल आये।

इस विद्यालयके शांगतीमें आनेके पहले यहां कोई स्कूल न था। विद्यालयने आते ही एक स्कूल खोल दिया। विद्यालयके छात्रोंने एक पत्र भी निकालना शुरू कर दिया, जिससे देहातियोंको युद्ध-सम्बन्धी खबरोंसे अवगत रखा जा सके। विद्यालयमें एक रेडियो लगनेके कारण सारे महत्त्वके समाचार मालूम हो जाते।

देहातियोंको इसकी भी अपेक्षा अधिक लाभ हुआ विद्यालयके चिकित्सा - विभागसे। विद्यालयका यह विभाग भी विद्यालयके साथ-साथ भ्रमण करता और देहातमें सर्वत्र गरीबोंकी दवादारूका प्रबन्ध करता चलता। उन्होंने देहातियोंको स्वास्थ्यके नियम बताने, स्वस्थ सन्तान उत्पन्न करने और सेवा-शुश्रूषा करनेकी विधि बतानी शुरू की।

यह तो हालत थी चेकिङ्ग यूनिवर्सिटीकी। इसके साथ ही दूसरे विद्यालयों तथा दूसरी चलती-फिरती संस्थाओंने भी इसी प्रकारके कार्य करने शुरू किये, जिनकी कठिनाइयोंके मुकाबिलेमें उनके द्वारा होनेवाले राष्ट्र-निर्माणके कार्योंका मूल्य कहीं अधिक है।

चीनके हजारों छात्रोंकी यह पलटन जहां भी पहुंचती है, देहातियोंमें जोश आ जाता है। जापानियों द्वारा चीनी सरकारके विरुद्ध जैसा विषैला प्रचार होता है, उसका पता चीनके बाहर भी दूसरे लोगोंको है। पर इन चलती-फिरती संस्थाओं द्वारा इस प्रचारका बड़ा ही सुन्दर खण्डन होता जा रहा है। चीनियोंको अपने देशकी वास्तविकताका पता इससे चलता और युद्धकी प्रगति, जापानी सैनिकवादके खतरे उन्हें मालूम हुए और इस विपत्ति कालमें उनमें पूर्ण सहयोगकी भावनाका उदय हुआ।

श्रीमती पर्ल बकने, जिनकी जानकारी चीनके सम्बन्धमें सबसे प्रामाणिक मानी जाती है, एक बार कहा था कि

चीनमें जापानका वर्तमान युद्ध एक आशीर्वादके रूपमें आया है। चीनमें आज जैसी एकताकी भावना देखी जाती है, वह पहले कभी नहीं दिखाई पड़ी थी। चेकिङ्का यह चलता-फिरता विश्वविद्यालय गांव-गांवमें आज नवजागृत चीनका सन्देश लेकर घूम रहा है। कितने ही लोगोंको आश्चर्य होता है कि आज जब चीन जीवन-मरणकी समस्यामें उलझा हुआ है, तब चीनमें स्कूल-कालेज क्यों चल रहे हैं और विद्यार्थियोंने युद्धमें अपना भाग क्यों नहीं लिया है। ऐसे लोगोंको जान लेना चाहिए कि चीनी छात्रोंने दूसरे किसी भी देशके छात्रोंसे बढ़कर देश-भक्ति दिखायी है। दूसरे देशके युवक जहां वेतनपर युद्ध क्षेत्रमें उतरते हैं, वहां ये छात्र अपने उपार्जनसे अपना भरण-पोषण करते हुए गांव-गांवमें चीनके पक्षमें प्रचार करते फिर रहे हैं। चीनमें जहां अखबार नहीं पहुंच पाते, जहां रेडियोकी खबरें नहीं सुनाई पड़ सकतीं, जहांकी जनताको आज भी इतनी राजनीतिक चेतना नहीं है कि वह स्वतः अपनी हानि उठाकर समाज एवं देशके कल्याणके लिए त्याग कर सके, ऐसे लोगोंमें ये छात्र जीवनका मन्त्र फूंक रहे हैं।

चेकिङ्ग विश्वविद्यालय अब भी चल रहा है और पता नहीं कि यह अन्तमें चलकर कहां विश्राम ग्रहण करेगा; पर जहां कहीं भी यह जाता है, ग्रामीणोंमें एक नया जीवन दिखाई पड़ता है। इस तरह इस प्रकारकी कठिनाइयोंको भी चीन अपने लाभके लिए उपयोग करनेमें नहीं चूक रहा है।

उपहार

बैरनेस इन्सवान आर्नवाल्डने मकानकी उस मञ्जिलमें प्रवेश किया, जिसपर कई-एक कुंवारे रहते थे। उसने अपने बैगसे कुञ्जी निकाली। उसने देखा, उसका प्रेमी ह्यूगो वाल्डर्व आज बहुत ही प्रसन्न दिखाई पड़ता था। कमरेकी खिड़की आधी खुली थी और उससे वह सामनेके झुरमुटोंकी ओर देख-देखकर सिसकारियां मारता।

"हलो, ह्यूगो, आज तो तुम बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हो। मुझसे भेंट होनेकी ऐसी प्रसन्नता है, ऐं?"

"क्यों न हो, आज सात दिनोंके बाद तुम मिल रही हो? और सुनो, एक अच्छी-सी खबर तुम्हें सुनाऊं!"

"अच्छी-सी खबर? बोलो, बोलो, मैं चञ्चल हो रही हूं।"

"अरे घबराती क्यों हो? हैट उतार लो, दस्ताने निकाल डालो, बैठो और सुनो।"

"तुम तो मेरी व्यग्रता बढ़ाते ही चल रहे हो! किसी सुन्दर तरुणीसे भेंट हुई है और तुम उससे विवाह करना चाहते हो?"

"अरे नहीं। मैंने तुमसे कहा नहीं था कि पीट्सबर्गमें मुझे बढ़िया-सी जगह मिल गयी है और—"

"और? और??"

"और सोचो तो जरा, बीस हजार शेयर जो मैंने १३२ मार्कमें खरीदे थे, उनका भाव तीन सप्ताहमें बढ़कर १७२ मार्क हो गया है। और ८००,००० मार्कमें मैंने सही बेच डाला है।"

"ओह! कितना आश्चर्यजनक है?"

"लेकिन मैं इस सुखका उपभोग अकेले ही नहीं करना चाहता अर्ना, मैंने तुम्हारे लिए एक अच्छा-सा उपहार खरीद लिया है। देखो, उधर मिठाइयोंके पास बक्समें रखा हुआ है।"

"कितने प्यारे हो तुम ह्यूगो। देखूं, कहां है वह उपहार?"

और बैरनेस वान आर्नवाल्डने उच्छ्वसित हृदयसे अपना कांपता हाथ बढ़ाकर सफेद कागजमें लिपटा हुआ एक पैकेट उठाया। खोलकर देखा, चमड़ेका छोटा-सा जड़ाऊ बक्स। उत्कण्ठा और भी बढ़ी। उसने कहा, "क्या है यह ह्यूगो?"

"खोलकर देखो न!" ह्यूगोने जवाब दिया।

बैरनेसने बक्स खोलकर देखा। देखा: मखमली गत्तेपर प्लेटिनमकी अंगूठी—जिसपर एक अत्यन्त सुन्दर एवं बहुमूल्य

मोती जड़ा हुआ था—चमक रही थी। वह चकित-सी होकर उसे मन्त्रमुग्ध-सी देखने लगी। उसने अंगूठी उठायी, उंगलीमें डाला, तनिक दूरसे उसे देखा और तब अकस्मात् दौड़कर अपने प्रेमीको बांहोंमें लिपट गयी।

"कितनी सुन्दर—सचमुच कितनी सुन्दर है!" वह कांपते स्वरमें बोल उठी, "तुम कितने प्यारे हो ह्यूगो। ऐसा सुन्दर उपहार! तुम देवता हो--देवता!"

"जड़ा हुआ मोती तुम्हें पसन्द है?"

"पसन्द है? इतना मूल्यवान मोती, मेरी उंगलीमें भी कभी आयेगा, इसका तो मैंने कभी स्वप्न भी नहीं देखा था ह्यूगो! आश्चर्यजनक! मैं तो भौचकी-सी हो रही हूं। मैं...मैं...।"

बैरनेस अकस्मात् चुप हो गयी। जैसे किसी भावने व्यग्र कर दिया हो।

"बात क्या है अर्नो?"

"मोती—अंगूठी सब बहुत मूल्यवान हैं ह्यूगो, लेकिन मैं इसे पहन भला कैसे सकती हूं। भला बताओ तो, आम तौरपर इस प्रकारके मोतीकी क्या कीमत आंकी जा सकती है?"

"कमसे कम ३०,००० मार्क!"

"मैं जानती थी। तो भला मैं अपने पतिको कैसे विश्वास दिला सकती हूं कि मैंने अपने पैसेसे इसे खरीदा है, जब कि वह सिर्फ ९०० मार्क प्रति मास मुझे जेब-खर्च देते हैं। मेरा तो हृदय टुकड़े-टुकड़े होता जा रहा है। मैं तुम्हें धन्यवाद देती हूं ह्यूगो, जो तुमने ऐसी कृपा की। पर उस खूसट बैरनके मारे, मेरा यह सुख-स्वप्न क्षण-भरमें ही छिन्न-भिन्न हो गया।"

"सचमुच, मुझे तो तुम्हारे उस मूर्खाधिराज पतिका ख्याल ही न रहा।"

"सोचो भी, आखिर मैं इसे पहन कैसे सकती हूं?"

ह्यूगो कुछ देर तक विचारोंमें डूबा-सा रहा। फिर बोला—

"सुनो, एक तरकीब है। मैं चलकर यह अंगूठी अपने उस जौहरी मित्रके पास रख देता हूं, जिससे मैंने इसे खरीदा है। मैं उसे सारी बातें चुपचाप समझा दूंगा। मैं उससे कह दूंगा: मेरे प्रिय मित्र, विर्जहीम, कृपया एक टिकटपर लिख लो 'स्वर्ण सुअवसर—जापानी मोती, ३०० मार्क।' इस मोतीको उस दिन विक्रयार्थ रखो, जिस दिन बैरनेस वान आर्नवाल्ड अपने पतिके साथ दूकानपर इसे खरीदने आवें। मेरी वह रमणी मित्र आयेगी और अपने पतिको ३०० मार्कमें मोती खरीदनेके लिए राजी कर लेगी। वही मोती, जो तुमने मुझे ३०,००० मार्कमें बेचा था।"

"अच्छी बात है।"

"क्यों, कैसी रही? कितना सीधा उपाय है। तुम अपने खूसट मूर्खाधिराजसे आज ही शामको कहना कि विर्जहीमकी दूकानपर तुमने एक ऐसा मोती देखा है, जिसे तत्काल खरीद लेनेमें चूकना नहीं चाहिए। मेरा ख्याल है कि कल तक वह मोती खरीद लेनेपर राजी हो जायेगा।"

"ठीक कह रहे हो तुम! और उपाय ही क्या है?"

तरुणी फिर अपने प्रेमीकी भुजाओंसे लिपट गयी। और झुरमुटसे पत्तोंका मर्मर स्वर हो उठा, मानो वे उनकी प्रेम-ज्वाला भड़का रहे हों। प्रसन्नतासे उनका चेहरा खिल उठा। बैरनेसने आनन्द-विभोर होकर रेडियो खोल दिया और धीमी-धीमी सङ्गीतकी ध्वनि फैलने लगी। और दोनों जैसे सङ्गीतके पङ्खोंपर उड़े जा रहे हों।

× × ×

बैरन रूडल्फ वान आर्नवाल्ड शीघ्र ही तैयार हो गये। ड्राइवरको जौहरीका पता देकर वह मोटरमें चल पड़े। पत्नी दूकानपर पहुंचते ही धड़ल्लेसे उतरी और उसकी आंखें अंगूठी खोजने लगीं। अंगूठीपर वही टिकट लगा हुआ था।

"यह—यह देखो अंगूठी रूडल्फ, यह जड़ा हुआ मोती देखो। जरा सोचो तो, जापानी अंगूठी और इसे वे ३०० मार्कमें ही बेच रहे हैं। क्या इसे वे मुफ्तमें ही नहीं लुटा रहे हैं?"

"मैं तो कह ही चुका हूं—खराब नहीं है।"

"भीतर चलें?"

दूकानदारने बैरनेसको पहचाना और कनखियोंसे ताकते हुए उसने जैसे कुछ मर्म-भरी बातें कीं। उसने डिब्बा निकालकर बैरनको अंगूठी दिखायी। उसने कहा—"ऐसे अवसर संयोगसे ही हाथमें आते हैं बैरन साहब, एक भद्र महिला जुएमें इतना पैसा हार गयीं कि उन्हें विवश

होकर यह अंगूठी बेचनी पड़ी। अगर इसमें तनिक-सा दोष न होता—लेकिन वह भी ऐसा कि सभी लोग जान भी नहीं सकते—तो इसका दाम दस गुना अधिक होता। फिर भी, ३०० मार्कमें तो यह बिलकुल मुफ्त-सी ही है। और अगर आपने खरीद नहीं लिया, तो शाम तक यह निश्चय ही निकल जायगी। ठीक ६ बजे एक देवीजी आनेवाली हैं।"

"लेकिन यह जड़ाव ? क्या यह प्लेटिनम है ?"

"अजी महाशय, ३०० मार्कमें आप असली प्लेटिनमकी उम्मेद कैसे करते हैं। लेकिन कितनी सच्ची नकल है ! देखिये भी।"

"जी, जी, देखता हूं। लेना तो मुझे है ही, लेकिन दाम, २५० मार्क। क्यों ? क्या राय है आपकी ?"

"ओह ! असम्भव ! ३०० मार्कमें भी यह मुफ्त-सी ही है महाशय।"

"सुनो, रूडल्फ, खरीद लो इसे, मुझे बहुत पसन्द है।"

"अच्छा तो ठीक है। बांध दो। यह है चेक।"

अंगूठी लेकर जब वे चले, तो रमणीने पतिकी बांहोंको पकड़कर कहा, "तुम जानते नहीं रूडल्फ, मुझे इससे कितनी खुशी हुई है !"

"आह ! इल्ला, तुम इस प्रकारकी मूर्खतापूर्ण चीजोंको खरीदनेके लिए हमेशा उकसा दिया करती हो, लेकिन कोई बात नहीं, अगर तुम्हें इससे सुख मिलता है, तो कोई हर्ज नहीं।"

"लाओ, मैं लेती चलूं।"

"नहीं, मैं ले चल रहा हूं। जब इसे खरीद ही लिया है, तो ठीकसे इसका उपयोग किया जाय। मैं नाम खोदने-वालेके घरपर जा रहा हूं। इसमें हम दोनोंके नाम और आजकी तारीख खुदी रहेगी। क्यों, पसन्द है न तुम्हें ?"

"क्यों नहीं ? हम दोनोंके नाम एक साथ ! सचमुच कितना सुन्दर होगा रूडी।"

"ठीक है, तुम घर जाओ, मुझे थोड़ा अभी और जरूरी काम है। मैं लगभग सात बजे लौटूंगा। तब तक—इतनी देर तक......।"

और सात बजे बैरन घर लौटे। दूसरे कमरेसे बैरनेसने उन्हें जोर-जोरसे चिल्लाकर गाते सुना। इस प्रकारकी असाधारण प्रसन्नता उसे पतिमें प्रायः कम दिखाई पड़ती थी, इसलिए उसे आश्चर्य हुआ। वह तत्काल उनके पास गयी।

"आज तो तुम बड़े प्रसन्न दिखाई पड़ रहे हो रूडल्फ, कारण क्या है ?"

बैरन आगे बढ़े, झपटकर पत्नीकी कमर पकड़कर उठाया और खुशीमें विह्वल हो उसे नचाने लगे। पत्नी चकित-सी हो गयी। उसने कहा, "लेकिन इसका मतलब ?"

"मतलब ? इसका मतलब ? मैंने अपने जीवनका आज सबसे बड़ा सौदा किया है अर्नो, क्या सोच रही हो ? नाम खोदनेवालेके घरपर एक जौहरी था। उसने मेरी अंगूठी देखते ही कहा—'यह तो बड़ी सुन्दर अंगूठी है हर वान बैरन।' मैंने स्वभावतः कहा, जी, बुरी नहीं है। मैं नहीं सोचता कि ३०० मार्कमें इससे अच्छी खरीदी जा सकती थी। इसके बाद जौहरी हंसने लगा। उसने कहा, क्या आप मजाक कर रहे हैं महाशय, मैं तो आपकी इस ३०० मार्ककी अंगूठीके लिए ५००० मार्क तक दे सकता था।"

उसने पतिकी बात सुनी, तो वह कांप उठी। उसकी नसोंका खून जैसे जमने लगा। उसने लड़खड़ाते हुए व्यग्र स्वरमें पूछा, "लेकिन तुमने अंगूठी बेच तो नहीं दी ?"

"क्यों नहीं ? तुम भी कैसी नादान बच्ची हो इल्ले, जब एक वज्रलण्ठ जौहरी मुझे जापानी मोती बताकर ३०० में ऐसी चीज बेच देता है और उसी मोतीके लिए दूसरा जौहरी ५००० मार्क देनेको तैयार है, तब क्यों नहीं बेच दूं ? पता नहीं, सही कौन है, मुझे तो सिर्फ इतनेसे मतलब कि मैंने ५००० मार्क अपनी जेबके हवाले किये। मैं अपने पास ४७०० मार्क रखकर तुम्हें ३०० मार्कका उपहार दे दूंगा। बस, तुम्हें और क्या चाहिए ? कहो, कैसा सौदा रहा ?*

———

* मारिस डीकोबराकी एक कहानी।
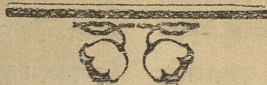
अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीके करिश्मे

श्री विश्वनाथ सेठी, एम० एस-सी०

अमेरिकामें पिछले कुछ ही वर्षोंमें विज्ञानने जैसी उन्नति की है, वह एकदम आश्चर्यजनक है; पर इससे भी अधिक आश्चर्यजनक यह है कि तरह-तरहके लोगोंने विज्ञानका कैसा उपयोग करना शुरू किया है। अमेरिकासे इधर चोरी, डकैती तथा भिन्न-भिन्न प्रकारके जैसे सनसनीखेज हथकण्डोंके समाचार आते रहे हैं, उनमें उठाईगीरों और बदमाशोंने विज्ञानकी जैसी सहायता ली है, उसे देखकर दांतों-तले अंगुली दबानी पड़ती है। हॉलीउडके अभिनेताओं-के अपहरणसे लेकर चार्ल्स लिण्डबर्गके लड़केके अपहरण तथा अनेक भीषण हत्याकाण्डोंमें अदालतोंमें जैसी-जैसी बातें सामने आयीं, वे अत्यन्त आश्चर्यजनक रही हैं। इन काण्डोंकी भीषणता देखकर न केवल आम जनता, बल्कि अमेरिकन पुलिसके लिए भी एक कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी कि इन खतरोंका सामना कैसे किया जाय।

अब उन्होंने भी विज्ञानकी शरण ली। एक ओर चोरों, उठाईगीरोंने विज्ञान द्वारा अशान्ति मचा रखी थी और दूसरी ओर उन्हें पकड़ने एवं सजा दिलानेमें भी सहायता विज्ञानसे ही मिली।

तो इस प्रकार अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीसे सहायता लेनेकी बात सोची गयी और वस्तुतः फोटोग्राफीने इस दिशामें बड़े अनोखे करिश्मे कर दिखाये। अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीके इन करिश्मोंकी सम्भावना पहलेसे ही सोची गयी थी, जब सबसे पहले अंगूठोंकी छापके चित्रों द्वारा अपराधियोंका पता लगानेमें सहायता मिली। अब फोटोग्राफीने आश्चर्यजनक उन्नति कर दिखायी है। अपराधोंको रोकनेके लिए अमेरिकाने जैसे बड़े-बड़े कानून इधर बनाये हैं, उनकी सफलता फोटोग्राफीकी सहायता बिना हो ही नहीं सकती थी।

अपराधोंकी खोजमें फोटोग्राफीकी सहायता शुरूसे ही ली जाती रही है, जब काफी दिनों तक केवल चेहरे तथा अंगूठे आदिके फोटोसे ही काम लिया जाता था। लेकिन अब यह प्रणाली इतनी विकसित हो गयी है कि घटनाओंके चित्र भी लिये जाते हैं और उन चित्रोंका अदालतमें इस प्रकार प्रदर्शन किया जाता है, मानो न्यायाधीशोंके सामने घटनास्थल ही सारी घटनाओं सहित उपस्थित हो जाता है। किसी मामलेमें जहां वकीलों द्वारा बहस-मुबाहसे होते हैं, वहां साथ-साथ घटनाओंके वास्तविक फोटो भी होते हैं, जिनसे सारी दृश्यावली आंखोंके सामने आ जाती है और घटनाओंकी वास्तविकता समझनेमें सहायता मिलती है। इसलिए कितनी ही प्रयोगशालायें बन गयी हैं, जिनमें ऐसे चित्रों द्वारा घटनाओंकी छानबीन करके प्रमाण एकत्र करनेकी कोशिश की जाती है। अदालतोंने इस नयी प्रणाली-को बड़ा कारगर पाया है।

अमेरिकाके खोज-विभागके दफ्तरमें ऐसी दर्जनों आलमारियां हैं, जिनमें तरह-तरहके व्यक्तियोंके लाखों फोटो सुरक्षित रखे गये हैं। पुलिसके ये बड़े मूल्यवान रेकर्ड हैं। इनसे न केवल अपराधियोंको सजा दिलानेमें सफलता मिलती है, बल्कि उनके कारण ऐसे लोगोंको भी शिनाख्त करनेमें सहायता मिलती है, जिनके फोटो पहलेसे नहीं रहते। इस सम्बन्धमें यह बड़ी मजेदार बात है कि पुलिसके पास तरह-तरहकी खोपड़ियों, दन्त-पंक्तियों और शरीरके दूसरे-दूसरे विभिन्न अङ्गोंके फोटो बहुत बड़ी संख्यामें रखे गये हैं। शरीरपर किस प्रकारकी चोट लगनेपर कैसे घाव होते हैं, हत्या करनेपर पिस्तौल, तमञ्चे, बन्दूक, बम, छुरी आदि विभिन्न हथियारोंसे कैसे-कैसे घाव होते हैं, और उनका हृदयकी गति-पर कैसा और किस प्रकार प्रभाव पड़ता है, इन सबके फोटो भी वहां सुरक्षित रखे गये हैं। जब कभी किसी मामलेमें सन्देह उत्पन्न होता है और उस व्यक्ति सम्बन्धी फोटो अप्राप्य होते हैं, तब उसे लगी हुई चोट तथा दूसरे चिह्नोंसे सुरक्षित फोटोग्राफोंसे तुलना करके घटनाको समझनेकी कोशिश की जाती है। आम तौरपर एक प्रकारका प्रहार होनेपर उसी प्रकारके चिह्न भी बनते हैं, इसलिए इससे घटनाओंके समझनेमें जो कुछ सन्देह रह जाते हैं, उनका भी निराकरण दूसरे प्रमाणोंकी सहायतासे हो जाता है।
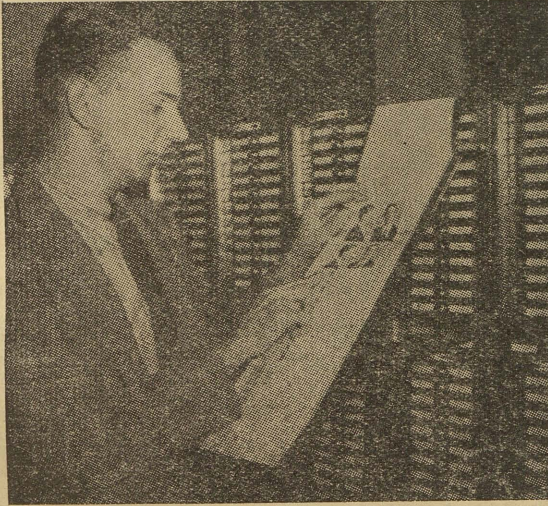
खोज-विभागका एक कर्मचारी चित्र मिला रहा है।

वहांके वैज्ञानिकोंने इस प्रणालीको इतना सफल पाया है कि इसे पूर्ण करनेके प्रयत्नमें वे लगे हुए हैं। न जाने कितने अपराधियोंके रङ्गीन और बोलते चित्र उन्होंने बनाये हैं और अब भी इस सम्बन्धमें नये-नये प्रयोग चल ही रहे हैं। खुफिया विभागवालोंको सिखाया जाता है कि विभिन्न फोटोका विश्लेषण करके उन्हें किस प्रकार तरह-तरहके मनुष्योंकी आकृतियों एवं अङ्ग-प्रत्यङ्गकी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए, जिससे उन्हें वास्तविक अपराधियोंको पहचानकर खोज निकालनेमें सफलता मिल सके। फेडरल ब्यूरो द्वारा पुलिसका जो खोज-विभाग है, उसकी ओरसे चलनेवाली नेशनल पुलिस एकाडेमीकी परीक्षामें पुलिसको इस विषयमें भी नियमानुकूल परीक्षा देनी पड़ती है। एकाडेमीने इसके लिए फोटोग्राफीके समस्त नवाविष्कृत यन्त्रोंसे युक्त एक स्टूडियो खोल रखा है, जिसमें ढेरके ढेर चित्र, बोलते चित्र, स्लाइड्स तथा दूसरी सारी सामग्रियां रखी गयी हैं।

शिनाख्तके लिए जिन दूसरी सामग्रियोंको पुलिसने एकत्र करना शुरू किया है, वे हैं तरह-तरहके कपड़ों, हीरे-जवाहरात तथा दूसरी घरेलू वस्तुओंके फोटो। इसमें दो लाभ हैं। खोज करनेमें इन चित्रोंसे बड़ी सहायता मिलती है, क्योंकि अपराधियोंको पकड़ने और उनकी स्वीकारोक्तियोंके बाद उनके बताये स्थानोंसे उक्त वस्तुओंको पहचानकर बरामद करनेका काम बड़ी कठिनाईका रहा है। चीजोंकी आकृति, रूप-रङ्ग, गुण आदिका ठीक-ठीक ज्ञान न होनेपर उनकी पहचान कठिन रही है, अतः ऐसी वस्तुओंकी फोटोग्राफीने यह कठिनाई हल कर दी। साथ ही इससे एक लाभ और भी हुआ है। ऐसी वस्तुओंका पता लगनेपर इनके वास्तविक मालिकके लिए भी बेईमानी करनेका मौका नहीं मिलता। जिन वस्तुओंके फोटो हैं, उन्हींको वे मांग सकते हैं। अन्यथा इस बातके भी खतरे कम नहीं हैं कि कोई बदमाश झूठमूठकी चोरी लिखाकर किसी शत्रुको हैरान करनेकी कोशिश करे। अमेरिकामें ऐसी ठगविद्या भी काफी प्रचलित हो गयी है। इसलिए यदि विज्ञान ऐसे लोगोंसे सच्चे लोगोंकी रक्षा न कर सका, तो उसकी उपयोगिता ही क्या? पुलिस बराबर इस बातपर जोर डालती रहती है कि बहुमूल्य वस्तुओंके फोटो लेकर उनपर उनके सम्बन्धमें दूसरी आवश्यक बातोंका विवरण भी अवश्य रख लिया जाय। अमेरिकाकी कितनी ही इन्स्योरेन्स कम्पनियां इस नियमका पालन करती हैं।

घटनास्थलपर होनेवाली घटनाओंके फोटोके विषयमें पहले लिख चुके हैं। हत्या, मारपीट, डकैती और मोटर आदिकी दुर्घटनाओंके चित्र साफ तौरपर बताते हैं कि घटनायें वास्तवमें कैसे और किस क्रमसे हुईं। अदालतमें खड़ा गवाह झूठ बोल सकता है, और अपराधी इस ख्यालसे निधड़क
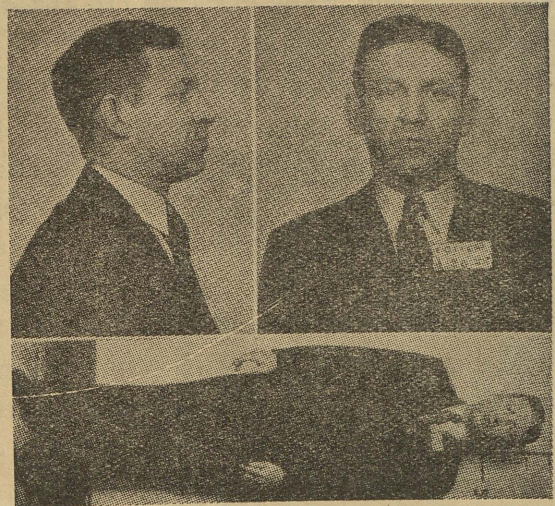
एक व्यक्तिके विभिन्न फोटो, इस प्रकार लिये जाते हैं।
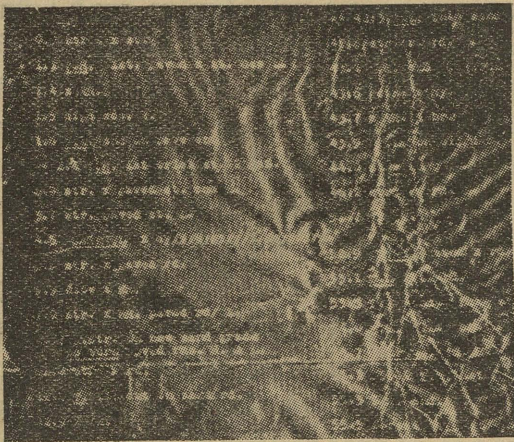
कार्बन पेपरकी लिखावट भी रोशनी विशेषमें स्पष्ट हो रही है।

झूठ बोल सकता है कि घटनास्थलपर देखनेवाला कोई भी न था; पर 'कैमरा झूठ नहीं बोलता' यह कहावत है और अमेरिकन अदालतोंमें यह कहावत कितनी ही बार चरितार्थ हो चुकी है।

अमेरिकाकी कई कम्पनियोंने ऐसे कैमरे निकाले हैं, जो स्वतः काम करते हैं। और कितने ही सार्वजनिक स्थानोंपर ऐसे कैमरे लगाये गये हैं, जिनसे अपने-आप फोटो उतरते चलते हैं। कितने ही बैङ्कों तथा दूसरे बड़े फर्मोंने भी ऐसे कैमरे लगा रखे हैं, जहां चोरी-डकैतीका खतरा रहता है। इन कैमरोंमें ऐसे कैमरे भी हैं, जो घनी अंधेरी रातमें भी फोटो खींच सकते हैं। इस प्रकारके फोटोको देखनेके लिए भी वैज्ञानिकोंने कई साधन ढूंढ़ निकाले हैं, जिनसे अस्पष्ट फोटो भी देखे जा सकते हैं। ऐसे अस्पष्ट फोटोपर इन्फ्रा-रेड-रोशनी डालते ही देखा जाता है कि धुंधली चीजें भी स्पष्ट हो जाती हैं।

पहले फोटोग्राफर कहा करते थे कि आपकी आंखें जो नहीं देख सकतीं, उनका फोटो आप नहीं खींच सकते। फेडरल ब्यूरोकी ओरसे अपराधोंकी खोजके लिए जो प्रयोगशाला है, उसमें होनेवाले सफल प्रयोगोंने इस कहावतको भी गलत साबित कर दिया है। हाथके लिखे हुए कागजात तथा जालसाजियोंके मामलोंमें भी देखा गया है कि अल्ट्रा-वायलेट रोशनीसे उनका फोटो लेनेपर हूबहू वास्तविक चीजका फोटो निकल आता है और किसी प्रकारकी जालसाजीके लिए मौका ही नहीं रह जाता। कार्बन पेपरपर भी पाये जानेवाले चिह्नों, लिखावट आदिके फोटो उतारनेकी क्रिया विकसित हो गयी है। कभी-कभी लिखावट इतनी घिस जाती है कि कुछ भी पढ़ना असम्भव होता है, पर इन्फ्रा-रेड-फोटोग्राफीसे वे घिसी चीजें भी उभर आती हैं।

यह सब तो उन वस्तुओंकी फोटोग्राफीके लिए हुआ, जो स्पष्ट दिखाई पड़ती हैं और जिनका सम्बन्ध घटित होनेवाली किसी घटनासे होता है। लेकिन ऐसी बातोंके लिए क्या किया जाय, जो स्पष्ट नहीं होतीं, अथवा जिन्हें हमारी आंखें देख नहीं पातीं। परन्तु कैमराने साबित किया है कि वह हमारी आंखोंसे तेज है, और वह भीतर बांधकर रखी हुई वस्तुओंका भी फोटो ले सकता है। मान लीजिये कि डाकघरमें कोई ऐसा पारसल आया, जिसके सम्बन्धमें अधिकारियोंको सन्देह हुआ। वे तुरन्त उसका एक्स-रे फोटो लेते हैं और भीतरकी सारी वस्तुओंके फोटो साफ बताते हैं कि पारसलके भीतर क्या है। मनुष्यको लगी हुई गोलियोंके भीतरी घावोंके भी फोटो हैं, जो इन सारी बातोंको स्पष्ट करते हैं।

फोटोग्राफीके इन साधनोंकी उपयोगिता रेडियोके विकासके कारण और भी बढ़ गयी है। अंगूठेके निशानके फोटो उसी प्रकार भेजे जाते हैं, जिस प्रकार मामूली फोटो भेजे जाते हैं। ये सभी फोटो रेडियोपर भेजे जाते हैं। रेडियो द्वारा जिस प्रकार फोटो भेजे जाते हैं, वह कला काफी विकसित हो गयी है। पुलिसके प्रधान कार्यालयमें जहां व्यक्तियोंकी शिनाख्तके लिए अंगूठेके निशान, फोटो आदि वस्तुय रखी गयी हैं, वहांसे उसके अधीनस्थ दूसरी सभी पुलिसकी शाखाओंसे रेडियोका सम्बन्ध है। अतः किसी भी अदालतमें मामला चलने और अपराधीके सम्बन्धमें सन्देह होनेपर फौरन् प्रधान कार्यालयसे ये सारी चीजें रेडियो द्वारा बड़ी आसानीके साथ भेजी जाने लगी हैं। इनके भेजनेकी प्रणाली वही है, जिसके सम्बन्धमें 'विश्वमित्र'में कई दफे लिखा जा चुका है। रेडियोसे छपनेवाले अखबारोंके सम्बन्धमें एक लेखमें बताया जा चुका है कि किस प्रकार यह कार्य सम्पादित होता है और रेडियोपर फोटो किस प्रकार निकलते हैं, यह भी लिखा जा चुका है। पुलिसने अपराधोंके दमनके लिए इन सब साधनोंका उपयोग किया है।

पुलिस-विभागने एक नये यन्त्र टेली टाइप-प्रिण्टरका भी उपयोग इस काममें करना शुरू किया है। इस विभाग द्वारा १२६००० मीलके अन्तर्गत रहनेवाले लगभग ३९,०००,००० व्यक्तियोंके जान-मालकी रक्षा करनेका प्रयत्न किया जाता है। न्यूयार्क, केलीफोर्निया आदि दर्जनों स्थानोंपर यह यन्त्र दिन-रात सावधानीके साथ काम करता रहता है। मान लीजिये, न्यूयार्कमें किसी चोरीका पता चला, तो तत्काल टेली टाइप प्रिण्टर दर्जनों स्थानोंपर खबर दे देगा कि चोरी किस प्रकार हुई। किसी भी दूसरे साधन द्वारा इतनी आसानीसे इतनी जल्दी समाचार नहीं पहुंचाये जा सकते थे।

मोटरोंमें लगे हुए कैमरे किस प्रकार दुर्घटनाओंके फोटो स्वतः लेते हैं, यह हम लिख चुके हैं। ये इतने शक्तिशाली होते हैं कि खूब तेज चालमें चलनेवाली गाड़ियोंकी गतिसे फोटो लेनेमें इन्हें तनिक भी बाधा नहीं पहुंचती। एक बात और है। जहांपर कैमरे लगे रहते हैं, वहीं एक ऐसा यन्त्र भी लगा रहता है, जो इस बातको रेकर्ड करता जाता है कि किस जगह कितनी तेजीसे गाड़ी चलती रही है। दुर्घटनायें जब होती हैं, तब इस बातका भी जानना आवश्यक हो जाता है कि उस समय गाड़ीकी चाल क्या थी और ड्राइवरकी जिम्मेदारी अपराधमें कितनी है। कभी-कभी ऐसा भी होता है, खासकर पुलिसकी अपराध रोकनेवाली गाड़ियोंमें, कि ड्राइवरको एक नन्हा-सा माइक्रोफोन भी पहने रहना पड़ता है। यह माइक्रोफोन प्रायः कोटके बड़े बटन-सा ही होता है और घटना-स्थलपर जैसे शब्द होते हैं, उन सभीका रेकर्ड इसके भीतर होता चलता है। ये सब ऐसे साधन हैं, जिनकी सहायतासे अपराधोंका पता लगानेमें बड़ी सहूलियत होती है।

इसलिए अमेरिकन अदालतोंमें ऐसे मामलोंकी अब कमी नहीं रहती, जिनमें कितने ही फोटो एक-एक करके पेश किये जाते हैं। सबसे पहले अपराधीके अंगूठेका चित्र आता, फिर घटना सम्बन्धी कई चित्र एक-एक करके आते हैं। ये वे मूक गवाहियां हैं, जो मानो चिल्ला-चिल्लाकर सारी कहानी बताती हैं। आदमी झूठ भी बोल सकता है, लेकिन कैमरा कैसे बोले? फोटोग्राफीके इन करिश्मोंने अमेरिकामें अपराधियोंके नाकमें दम कर रखा है।

गीत

फूल दो तुम फूल!

दूर कर दो चयन कर सब वेदनाके शूल!!

चतुर्दिक् नव स्वर्णिमा हो;
चिर-अमा मेरे गगनकी
मुग्ध शारद पूर्णिमा हो

विजन वन हो फुल्ल नन्दन;
और, धुंधली अश्रु-रेखा
हो मधुर-मृदु स्मित चिरन्तन!

क्लान्त जीवनकी उदासी
प्रिय, करो उन्मूल!
फूल दो तुम फूल!!

ढांक जीवन-ज्वालपर दो
स्नेह-सजल दुकूल!
फूल दो तुम फूल!!

दूर कर दो चयन कर सब वेदनाके शूल!

—जितेन्द्रकुमार।

जीवनका तर्क

श्री रमेशचन्द्र सिन्हा

उसे भेज आकर वह वापस आया, तो कोठरीका ताला खोला और कोटको कुर्सीपर डाल हफ्तोंके पड़े, मुड़े-सिकुड़े बिछौनेपर पड़ गया। अभी सिर्फ आठ बजे थे, और दसके पहले उसे ऐसा कोई काम न था, जिसमें दूसरे भी शामिल हों।

इन दो घण्टोंमें वह कोई काम करना भी नहीं चाहता था। उसका दिल भारी था। उस अंधेरी कोठरीमें भी वह अपने अन्दर एक गहरे अन्धकारका अनुभव करता। एक अस्पष्ट वेदनासे वह विचलित हो रहा था—मालूम होता कि यदि स्पञ्जकी तरह उसके दिलको कोई जोरसे दबा दे, तो उसके अन्दरका दर्द निकल जाये। वह कुछ हल्का हो, उसे कुछ शान्ति मिले।

उसके चले जानेपर वह एकदम अकेला रह गया था। काम—काम—काम! दिनभर दौड़ना, रातको बैठकर काम करना। कामके दौरानमें दिनमें एकाध बार कहीं-न-कहीं उसे देख पानेकी आशासे वह हवामें उड़ा करता। अक्सर कहीं-न-कहीं वह मिल ही जाती: उसके भाव जैसे टकरा जाते। कोई विशेष बात न होती, फिर भी सफलताका उल्लास उसे घेर लेता, उसका दिन सार्थक हो जाता। प्यास और बढ़ती, तीव्रसे तीव्रतर। और जिस दिन वह न दिखती, या कार्याधिक्यके कारण वह उसकी तरफ न जा पाता, एक जबर्दस्त आकर्षण उसे खींचता रहता। एक बार उसे देख लेनेके लिए वह बेकल रहता। और बिना सोचे-विचारे वह अपनी तीव्र इच्छाके साथ बह जाता; साइकिल उठाता, इस काम—उस कामके बहाने उसके कमरेकी तरफ चक्कर लगा आता। कहीं वह दिख जाये! सड़कपर या दरवाजेपर खड़ी या घूमती हो!

कभी-कभी वह दूर सड़कपर कहीं आड़में खड़ा होकर खिड़कीके जंगलोंमेंसे देखता, सफेद प्रकाशसे भरे अपने कमरेमें वह इधर-उधर आती-जाती अथवा मेजपर बैठी दिख जाती। पर सन्तोष न होता। इच्छा तो यह रहती कि वह भी देखे। कितनी बार नहीं उसने ऐसी ही किसी फुर्सतकी सन्ध्याको आकर साइकिलकी हवा निकाल दी थी, और सोचा था कि इसी बहाने उससे मिल आऊं। फिर भी दरवाजेसे आगे बढ़नेकी हिम्मत न हुई थी। और, तब वह मुंह लटकाये तारोंसे भरी रातमें, साइकिल हाथमें थामे मीलों चलकर घर लौट आया था। फिर उसकी निराशाको कामने समेटकर अपनेमें छिपा लिया था।

पर क्यों, क्या गलती उसकी थी? चारपाईपर करवटें बदलता वह सोचने लगा। चुननेका प्रश्न था!

पुराने सब दृश्य उसके सामने थे। अतीत कोई बहुत आकर्षक और रङ्गीन नहीं था; घटनाओं या विशेष परिस्थितियोंके नाम बहुत ही कम था—कोई ऐसा भी विशेष मौका नहीं था जिसमें शीलने कुछ कहा हो, उसके छरहरे मौन शरीरके अन्दर क्या चलता रहता है, उसे उसके सामने उड़ेलकर रखा हो। उसके हृदयका थाला कलीके नीचे फैला पड़ा था, किन्तु कलीने कभी अपनी पंखुड़ियां भी अधिक न खोली थीं कि वह उसके अन्दर कहने-सुनने लायक कुछ देख सकता...

...यद्यपि यह कहना भी मुश्किल है कि उसने कभी इसी रूपमें इस प्रश्नपर, सामनेसे, गौर किया हो कि वह खुले, उसके अन्तरतमको पढ़ा जाये। उसके नाम तो वह उससे डरता ही रहा था। किन्तु पिछले साल-डेढ़ सालकी यह रोज उसे एक नजर देख लेनेकी शृङ्खला तो थी ही—सार्थक और अतृप्त सन्ध्याओंकी लम्बी दुरङ्गी शृङ्खला!

बड़ी सीधी-सी कहानी थी, यदि उसे कहानी कहा भी जा सके।

(२)

तब उसने पढ़ना नहीं छोड़ा था। 'पेशेवर क्रान्तिकारी' तो था, क्योंकि खाली सन्ध्यायें ही नहीं, दिन-रात सारा समय उसका काम ही में जाता था; किन्तु यूनीवर्सिटीमें एम० ए० के आखिरी महीनोंमें उलझा हुआ था।

विद्यार्थी सङ्घकी तरफसे बड़ी मीटिङ्ग थी। कई वजहोंसे शहरमें सनसनी थी। दो हजारसे ऊपर विद्यार्थी अपनी संस्थाओंसे बाहर थे। बदले हुए जमानेका रुख न सम-

झनेकी वजहसे दकियानूसी मास्टरोंकी तानाशाहीसे समस्त विद्यार्थी-समाज विक्षुब्ध हो उठा था।

वह बोल रहा था। उस सनातनीके वातावरणमें काफी अर्से तक बोलने और कुछ लोगोंके अनुचित आक्षेपोंके उत्तर देनेमें वह उद्वेलित हो उठा था। इसलिए खतम करके जब वह बैठनेके लिए जल्दीमें मुड़ा, तो अचानक उसका पैर समीप ही बैठी उसके पैरपर पड़ गया। मुलायम पैरके स्पर्शसे उसने चौंककर नीचे देखा, तो सिकुड़ती हुई शीलकी दो आंखें ऊपर उठी मिलीं। सीधा उसका हाथ उसके पैरपर पहुंच गया—फिर क्षमा मांगता हुआ वह एक तरफको निकल गया।

शायद घटना बड़ी साधारण थी—किन्तु बादमें अक्सर उसे उसकी याद आती रही; क्योंकि उसकी भी तो याद आती ही थी, दो-एक बार पहले भी उसका ध्यान इस लड़कीकी तरफ गया था। पैर छूनेपर उसने क्या सोचा होगा! यह सोचकर वह परेशानीका अनुभव करने लगता, यह लड़की हर लड़की तो नहीं थी!

इसके थोड़े दिन बाद ही शर्माने उसका ट्यूशन तय कर दिया। ट्यूशनके बगैर उसका काम नहीं चल सकता था। घरवालोंकी सारी इच्छाओंके खिलाफ चलकर भी, वह उनसे सहायता नहीं ले सकता था। वे भी तो जानते ही थे कि एम० ए० के बाद ही यह सारा वक्त काममें लगाने लगेगा। दिन-ब-दिन वह उनसे दूर होता जा रहा था।

फिर भी एक लड़कीका—बी० ए० में पढ़ती लड़कीका ट्यूशन करनेमें वह झिझका। सोचा-विचारा। मित्रोंने भी कहा, तो उसने स्वीकार कर लिया।

पहले दिन जब उसने उसके कमरेमें प्रवेश किया और वह उठकर सामने खड़ी हो गयी, तब तो वह एकदम विवर्ण हो उठा। समझमें ही न आया कि क्या करे। वह कुछ बोला नहीं। सोच रहा था, वह भी तो पहचान गयी होगी···उस मीटिङ्गकी घटना उसके सामने घूम गयी।

फिर पढ़ाई होने लगी। राजनीति और अर्थशास्त्र—यही बी० ए० में उसके भी विषय रहे थे, और अर्थशास्त्रमें तो वह एम० ए० ही कर रहा था।

मार्क्सवादी अर्थशास्त्रका उसने बखूबी अध्ययन किया था। अक्सर पढ़ाते वक्त पूंजीवादी अर्थशास्त्रज्ञोंकी त्रुटियोंका विवेचन करते-करते वह जोशमें आ जाता, उसकी वाणी तीक्ष्ण और तेजमय हो उठती, और फिर आवेगमें तमाम सम्बन्धित दर्शन, प्राणिशास्त्र और राजनीतिके सिद्धान्त आ उपस्थित होते। पुस्तकका विषय वहीं रह जाता। वह सुनती रहती; कभी एकाध प्रश्न भी कर लेती।···इन्हें जब होश आता, तो फिर सामने रखी किताब और नोटबुकपर आ जाते।

क्लासके बाद कितनी ही बार उसने यह सोचनेकी चेष्टा की थी कि मेरे इस तरह इधर-उधर बहक जानेसे वह क्या सोचती होगी। कहीं मैं उसका समय तो नहीं बर्बाद करता, आवश्यकतासे अधिक तो नहीं दिलचस्पी लेता। पर इनका उत्तर उसे कहां मिलता!

धीरे-धीरे उनकी कशीदगीकी दीवाल कम हुई। वह काफी जहीन थी, पढ़ने-लिखनेमें उसे काफी रुचि थी, अपने कालेजके विषयोंके अलावा वह इधर-उधरकी बहुत-सी किताबें पढ़ने लगी। वह उसे किताबें ला-लाकर देता, और फिर उनपर बहस होती। उसे भी उसे पढ़ानेमें बहुत दिलचस्पी हो गयी थी; हमेशा नयी-नयी चीजें बतलाता। यदि कभी कोई अच्छी किताब आ जाती, तो उसके लिए वह खरीद लाता, चाहे फिर बादमें उसे अपने कई खर्चे कम करने पड़ते। गहरे अपनत्वसे भरे भी आम अ-वैयक्तिक जीवनमें यहां उसे अपने व्यक्तित्वकी एक छाया-सी नजर आती।

उन दोनोंके दैनिक जीवनमें वह घण्टा-डेढ़ घण्टा बड़े महत्त्वका हो गया—दोनों ही सारे दिन उसकी प्रतीक्षा किया करते थे। कभी-कभी मीटिङ्गों या किन्हीं अन्य कारणोंसे वह न आ पाता, तो घण्टों वह बंगलेके फाटकपर ही घूमती रह जाती। उस वक्त वह चाहे कहीं भी होता, उसकी भी तबियत न लगती।

पढ़ाते वक्त कभी-कभी उसके कमरेमें उसके उन रिश्तेदारकी लड़कियां, जिनके यहां एक कमरेमें वह रहती थी, आ जातीं—या उसकी क्लासकी या अन्य मित्र लड़कियां। वे उसे जानती थीं, प्रायः कोई बहस-तलब जिक्र छिड़ जाता, और तब तर्क-शर चलने लगते। वह बहुधा चुप ही रहती, सिवा कभी-कभी उसके पक्षमें एकाध अधूरे वाक्यके, जो उसके मुंहसे प्रायः अनायास निकल जाता। इस तरहकी बहसोंमें बहुधा देर हो जाती, और बादमें उसे पछताना

होता; किन्तु ऐसे अवसरोंपर शीलकी दिलचस्पीकी ज्योति उसे खींच ले जाती, समय और दिशाका ध्यान न रहता।

उसके सख्त जीवनमें रातका यह समय कोमल स्थल था। हृदयकी समस्त कोमल भावनायें उसीके चारों ओर केन्द्रित रहतीं, और दिन और रातमें बारम्बार उसका ध्यान उस घण्टेकी ओर खिंच जाता। ठीक समयपर और बिला नागा पहुंचनेके लिए वह उतावला रहता। कभी-कभी वह खुद चौंक पड़ता—इतना उद्वेग क्यों! तर्कोंसे उत्तर मिल जाता; किन्तु मन सन्तुष्ट न होता।

कहीं वह मोहमें तो नहीं बढ़ रहा है! और वह परेशान हो उठता! भयभीत-सा! सोचता, क्या मैं बहुत बहा जा रहा हूं...स्नेहकी तरफ इस अन्तकी कल्पनासे ही वह शङ्कित हो उठता...बन्द कर दूं? यहीं फिर दिमाग सामने आ जाता, सख्त, निर्मम; नहीं जी, वह तो मेरी स्टूडेण्ट है, उसने तो नहीं कभी किसी किस्मकी उत्सुकता जाहिर की। एक अप्रकट हल्की-सी निराशाकी छांह ही पड़ जाती। प्रतिक्रिया-स्वरूप उसका मन फिर सिर उठाता, क्या उसका रुख मेरी तरफ सीधे एक बाहरी ट्यूटरका-सा रहा है! उसकी इतनी निष्ठा, इतनी उत्कण्ठा, मेरे पढ़ानेमें इतनी रुचि, काममें बढ़ती हुई दिलचस्पी, क्या उन सबमें सामीप्यके रङ्गकी एक भी गुत्थी ऐसी नहीं...एक गांठ और पड़ जाती।

उसके बाद सालके आखिरकी तरफ वह घटना घटी।

किसान-सभाकी मीटिङ्गसे लौट रहा था, रास्तेमें जमीन्दारके गुर्गोंने घेरकर चार-छः डण्डे लगाये, पासमें जो कुछ था, कब्जेमें किया और उसे बेहोश छोड़कर चलते बने। उसके पैरमें बेतरह चोट आ गयी थी। ९-१० दिनके लिए उसे घरपर ही पड़ा रहना पड़ा।

और कामोंके अलावा पढ़ाने जाना भी स्थगित कर देना पड़ा। उसने एक साधारण पर्चा लिखकर आ सकनेकी अक्षमता प्रकट करते हुए भेजवा दिया।

दूसरे ही दिन शामको उसका तांगा आ पहुंचा। दो-एक किताबें और कापियां लेकर वह उसके कमरेमें आ पहुंची। वह अकेला एक आराम-कुर्सीपर पड़ा कुछ सोच रहा था। अभी-अभी लोग उसे छोड़कर गये थे, वर्ना दो-चार लोग उसे घेरे ही रहते थे। अचानक उसे देखकर चौंक पड़ा—

"ओह, आप कहां? मकान कैसे मिल गया? साइकिल-पर आयी हैं?"

चारपाईपर एक किनारे धीरेसे बैठती हुई वह बोली—

"अब आपका पैर कैसा है?"

"अच्छा है, लेकिन चार-छः दिन चल-फिर नहीं सकूंगा।"

"मैंने सोचा था, आपको बहुत चोट आ गयी होगी, इसीलिए चली आयी। तांगेवाला आपके पतेसे ले आया।"

फिर वह चुप हो रहा। समझमें नहीं आ रहा था, अब क्या बात करे। वह भी चुप थी। इसीने खामोशीको तोड़ते हुए कहा—

"क्या किताबें लायी हैं—क्या पढ़ रही हैं?"

"कुछ नहीं, यह तो जीड है। क्या आप दिनभर अकेले ही पड़े रहते हैं?"

"नहीं, यहां तो जान छुड़ाना दुश्वार हो जाता है, दिन-भर कोई-न-कोई बैठा ही रहता है, लोग समझते हैं, आजकल मुझे कोई काम करनेकी जरूरत नहीं।"

उसके बाद भी इधर-उधरकी ही बातें होती रहीं। थोड़ी देर बाद उसने इजाजत लेकर किताबोंकी आल्मारी देखनी शुरू कर दी, देखभालकर दो-चार किताबें निकाल लायी और फिर उन्हींके बारेमें बातें होने लगीं।

लगभग डेढ़-पौने दो घण्टे बाद उसने अपनी कापी-किताबें उठायीं, और चली गयी।

दूसरे दिन उसी वक्त फिर वह मौजूद थी। वही किताबें और कापियां, किन्तु पढ़ने-लिखनेका नाम नहीं। वह जब पढ़ने-लिखनेकी बात कहता, तो वह कह देती, "वह तो मैं खतम कर चुकी हूं—कोर्स तो सब कभीका पूरा हो गया...", "पढ़ तो इतना लिया है कि अगले वर्ष तक जरूरत नहीं पड़ेगी।" आदि।

पर उसका आना जारी रहा। रोज वह शामको पूरी विद्यार्थिनी बनी आ पहुंचती।

खाली दिमाग नरेनको सोचनेका बहुत मौका मिलता। अप्रकट रूपसे उसके आनेकी राह देखता हुआ भी वह इन सब बातोंपर सोचता। निश्चय ही वह पढ़नेके लिए तो नहीं आती थी! ...और तब वह सावधान हो उठता,कहीं गलत आकांक्षायें न वह पालने लगे! स्नेह! जीवनमैत्री! ...असम्भव।

इसे आगे नहीं बढ़ना चाहिए...और तब वह निश्चय करता कि किसी तरह यह उसे बतला दे। वह खूब अच्छी तरह समझ ले कि इससे आगे कुछ नहीं हो सकता —कतई नामुमकिन है।

वह इन्हीं विचारोंके बोझसे दबा रहता—किन्तु समझमें न आता था कि किस तरह वह उन्हें उसपर प्रकट करे—कि अनायास उसे अपने भावोंको उसके सामने जाहिर करनेका मौका मिल गया।

एक दिन वे दोनों बैठे ही थे कि शर्मा भी आ पहुंचा। वह आज जैसे फुर्सतमें था—सिनेमा और टैनिससे छुट्टीपर। आते ही उसने अपना कोट उतारकर टांग दिया, और जमकर एक कुर्सीपर बैठ गया। मालूम होता, वह आज बहस करनेपर तुला हुआ था। छूटते ही उसने कहा—

"कहो जी, क्या हाल है! भुगत रहे हो न अपनी जिदका फल। कितनी बार कहा कि जरा सावधानीसे चला करो। दिनभर इधरसे उधर मुंह उठाये दौड़ते हो।"

"आज तुम छुट्टीपर मालूम होते हो, क्या कोई अच्छी तसवीर नहीं आयी है।" हंसते हुए उसने जवाब दिया। बहस मोल लेनेकी इस वक्त उसकी तबियत नहीं थी।

"हां, तुम्हें देखने आनेके लिए सब मुल्तवी करना पड़ा। दो दिनोंसे नहीं आ सका था। न तुम यह तोता पालते और न मुझे यह सब दिक्कत उठानी पड़ती। तुम्हारी तरह पागल तो हूं नहीं कि न खेल, न कूद, न सिनेमा—स्पीचें झाड़ते फिरते हो।"

"तुम बेवकूफ हो, क्या मुझे साधू-वैरागी समझ रखा है? लेकिन तुम्हारी तरह फालतू वक्त कहांसे पाऊं, तुम्हें तो दिन-रात घूमना ही है।"

"हां, हां, जीवनका उद्देश्य यह नहीं है कि दिन-रात लिखने-पढ़नेमें, लेक्चरबाजीमें लगा रहे। उसमें खेल-कूदका भी स्थान है, हमारी उम्रका भी तकाजा है, सिनेमा और टैनिसकी भी आवश्यकता है।" वह जबर्दस्ती बहस बढ़ाता जा रहा था, "तुम्हारा जीवन अप्राकृतिक है—खेलें-कूदेंगे नहीं, दिल-बहलावकी चीजोंसे दूर भागेंगे, घरसे नाता नहीं रखेंगे, शादी नहीं करेंगे, लड़की खा लेगी इन्हें! अप्राकृतिक है, सामाजिक नियमोंके बिलकुल खिलाफ है तुम्हारा जीवन! ईश्वर-खुदा और धर्म या किस्मत नहीं मानते, सामाजिक आवश्यकता तो मानते हो?"

शील उसकी तरफ देख रही थी। क्या उत्तर देता है वह।

वह भी बिलकुल निर्लिप्त भावसे सुन रहा था। धीरेसे उसने उत्तर दिया; वह खुलनेके लिए मजबूर हो रहा था—

"अप्राकृतिक, असामाजिक जीवन! लेकिन कितनी चीजें नहीं हमारे सामाजिक जीवनमें ही अप्राकृतिक हैं! करोड़ों भुक्खड़ोंकी मौजूदगीमें लाखों मन गल्लेका जलाया या बर्बाद किया जाना अप्राकृतिक नहीं? सदियोंके परिश्रम और वैज्ञानिक अनुसन्धानोंका उपयोग विषैली गैसें और बम बनाकर मानवताकी समस्त संस्कृति, सभ्यता और नस्लको जङ्गी लूटमारकी लड़ाइयोंमें खत्म किया जाना अतार्किक नहीं? बेकार युवकोंका मजबूर होकर आत्म-हत्या करना अप्राकृतिक नहीं? जघन्य! ... ... सभी कुछ तो अप्राकृतिक है हमारे जीवनमें, इस जीवन-व्यवस्थामें; यदि अप्राकृतिकके माने यह हैं कि वह न्याय-सङ्गत नहीं, अन्यायपूर्ण है, अकारण है, प्राप्त ज्ञानके विपरीत है!

"इस सारी अप्राकृतिक सामाजिक व्यवस्थाको बदलनेके लिए ही यदि हम अपनी उम्रके कुछ तकाजोंकी उपेक्षा कर लें, तो उसमें क्या अप्राकृतिक बात है! वास्तवमें तो वही प्राकृतिक है, क्योंकि उसकी बुनियाद कारणपर है। कारण और सामाजिक ज्ञानकी रोशनीमें समाजकी त्रुटियों और असङ्गतियोंको मिटाकर एक साफ-सुथरी व्यवस्था कायम करनेके लिए, जिसमें मनुष्यकी जगह चीजोंपर, प्रकृतिपर, हुकूमत की जाये, लगना, उसमें योग देना ही प्राकृतिक और स्वाभाविक है। युग-धर्मकी—यदि धर्मका नाम देना ही चाहो—आवश्यकता है।"

"अच्छा, अच्छा, बन्द कीजिये अपने इस व्याख्यानको। लेकिन यह तो बतलाइये कि शादी क्यों नहीं करेंगे जनाब। क्या यही तुम्हारा भौतिकवादी फिलसफा कहता है—वह मनुष्यकी प्राणिशास्त्रके अनुसार शारीरिक आवश्यकता नहीं? शायद इसलिए", कहकहा लगाते हुए उसने जोड़ा, "कि कहीं गल्तीसे दो-एक गुलाम और न पैदा हो जायें! है न?" वह कहता जा रहा था।

हंसते-हंसते अचानक उसे खयाल आया कि शील भी वहीं बैठी है, तो वह किञ्चित् अप्रतिभ हो गया।

"फिर वही बात! तुम यह क्यों समझते हो कि मनुष्यता हमसे दूर हो गयी है; हम दानव या काठकी मशीन हो गये हैं! न हम इन्सानसे ऊपर उठकर तुम्हारे देवताओंकी तरह निस्पृह, वृत्ति-विहीन, इच्छा-विहीन हो गये हैं! हम तो बिलकुल साधारण, आम लोगों ही की तरह हाड़-मांसके पुतले हैं, जिनपर प्राकृतिक प्रवृत्तियों और वस्तुओंकी वही प्रतिक्रिया होती है, जो एक किसी भी मामूली स्वस्थ स्त्री या पुरुषपर। न हम खेल-कूद ना-पसन्द करते हैं, न सिनेमा से हमें नफरत है—मौका लगनेपर देखता भी हूं; और, न हम किसी उसूलसे शादीके खिलाफ हैं! मार्क्स और लेनिन दोनोंके बीबियां थीं—लन्दनमें कम्यूनिस्ट पार्टीका नाच-घर है! हम जीवनसे, जीवनोल्लाससे नहीं भागते, उसका पूरा आनन्द लेनेके लिए ही उसे स्वस्थ, खूबसूरत और पूर्ण बनाना चाहते हैं।

"बात तो सारी परिस्थितिकी है—वैयक्तिक और सामाजिक परिस्थितियां ही व्यक्ति-विशेषका जीवन-क्रम निर्धारित करती हैं।

"लेकिन तुम्हें तो समाजके सार्वजनिक जीवन और उत्पादनसे अलग पड़ी समाजकी जोकों द्वारा यह सिखलाया ही गया है, कि मनुष्य रोटी और औरतसे ऊपर उठा, आम लीकके जीवनसे इधर-उधर हुआ, कि फिर वह मनुष्योंमेंसे एक नहीं रह सकता, या तो वह देवताकी श्रेणीमें उठ जायेगा या गिरेगा दानवकी श्रेणीमें! तुम तो जीवनको इन्हीं श्रेणियोंके दृष्टिकोणसे देखनेके आदी हो, और न हो, तो बड़े मेलोंका आगके ऊपर उल्टा टंगा, या एक पैरपर हफ्तों खड़ा या जमीनके अन्दर बन्द साधू-नुमा नट तो कमसे कम होना ही चाहिए। है न? नहीं तो फर्क कैसा?

"इसलिए या तो तुम हमें पतित, भावना-विहीन मनुष्य बनाओगे या महामना, महात्मा, तपस्वी...है न?

"सीधी बात क्यों नहीं देखते कि यदि मैं तुम्हारा-सा दैनिक जीवन बिताने लगूं, तो मैंने जो काम पसन्द किया है, उसे कौन देखे। कारण, तर्क, न्यायकी बात करते हो, क्या हक है आपको कि चीजोंको समझते हुए भी, अपने चारों ओर लोगोंको अप्राकृतिक जीवन बिताते देखकर भी, समाजके अधिकांशको अस्वाभाविक जीवनके गर्तमें सङ्घर्ष करते देखते हुए भी, अपने अकेले जीवनको—महज इसलिए कि आपके पास कुछ अधिक साधन हो सकते हैं—समाजसे अलग, कहीं प्राकृतिक और पूर्ण बनानेकी चेष्टा करें, समाजकी तरफसे आंखें मोड़कर घोंघेकी तरह अपनी ठठरीमें घुस जायें?

"खुदाके वास्ते तर्क और न्यायका प्रश्न न उठाओ।

"सामाजिक जीवन बिताना, समाजके दुःख-दर्दमें शामिल होना ही मनुष्यका सर्व-स्वाभाविक जीवन है। यह तो हमारी शिक्षाका, सामाजिक सङ्गठनका कसूर है, जो हम ऐसे निकम्मे हो गये हैं।"

"अच्छा छोड़ो इस सब बहसको, मैं तो पूछ रहा हूं, आप शादी करेंगे? मैं करने जा रहा हूं; कहो तो तुम्हारी भी तय कर दूं। तुम्हारी बात पूछ रहा हूं। सीधा जवाब दो।" शर्मा बहसकी दुनियासे नीचे उतरते हुए बोला।

"सीधे हां-नहींके जवाबसे कोई फायदा नहीं। मेरी परिस्थिति देखो: जब सालभर बाद, सालभर क्यों, कुछ ही महीनों बाद, मैं यूनीवर्सिटी छोड़कर पूरा समय पार्टीके काममें लगाने लगूंगा, तो मुझे घरसे भी किसी कदर अलग हो जाना पड़ेगा। मेरे खुद खानेका ठिकाना नहीं रहेगा, बीबीको खिला-पिला सकनेका सवाल तो अलग रहा, एक खाना-बदोशकी-सी जिन्दगी हो जायेगी। फिर बोलो, ऐसी जिन्दगीसे मैं किसी औरके जीवनको कैसे बांध दूं? अपने कारण एक और प्राणीको तकलीफ देनेका खयाल अच्छा नहीं लगता।

"वैसे, उचित साधन हों, समझदार मानसिक और बौद्धिक साथी मिले, तो कौन है जो उसके लिए हाथ नहीं बढ़ायेगा? जीवन-सङ्घर्षमें कौन मानव ऐसा नहीं है, जो सबके साथ चलकर भी, एक हाथकी, जिसे वह नितान्त अपना कह सके, जिसपर वह सब कुछ उत्सर्ग कर सके, अपेक्षा नहीं करता?

"किन्तु आवश्यकताओंकी बात जाने दो...मेहरबानी करके; भूख-प्यास, स्नेह...और भी तो कितनी ही शारीरिक और मानसिक आवश्यकतायें हैं! और कितनोंकी यह इच्छा पूरी हो सकती है, शादीकी, आज दिन? ...गोर्कीकी वह कहानी याद है, जिसमें एक अभागी औरत, कर्मठ और नीली रगोंसे तने बदनकी वह औरत, किसी वास्तविक प्रेमीके अभावमें अपने एक पढ़े-लिखे दोस्तके यहां आकर कभी अपनी

तरफसे और कभी अपने एक कल्पनात्मक प्रेमीकी तरफसे अपनेको, पत्र लिखवाकर उन्हें पढ़वाती और साथ-साथ लिये घूमा करती थी ? मनुष्यताकी मुर्दा रूहकी भांति वे तस्वीरें मेरे चारों ओर घूमती हैं···।"

कहते-कहते वह गम्भीर हो उठा, तो बात टालते हुए उसने शीलकी विद्यार्थी-सङ्घकी ओरसे लड़कियोंमें काम करने-वाली कमेटीकी बात छेड़ दी।

और वह बात समाप्त हो गयी। किन्तु अन्तमें वह खुश था कि उसके आन्तरिक भाव शीलपर भी प्रकट हो गये; अब उनमें, आपसमें, किसी भ्रमकी गुञ्जाइश न रह जायेगी।······यह ढालू पहाड़ीपरसे तेजीके साथ गिरते विद्रोही मनके खिलाफ उसकी कारण और तर्ककी टेक थी।

उसके बाद वह अच्छा हो गया, और फिर उनकी पढ़ाई शुरू हो गयी। किन्तु घनिष्टता और आकर्षण कम होनेकी जगह बढ़ते ही जा रहे थे—रातके लिए उसकी बे-सब्री बढ़ती ही जाती। सारे दिन जैसे वह एक लम्बी सांसमें काम करता रहता, ताकि रात जल्दी आये, और तब वह उसके सामीप्यमें कुछ समय बिता सके—सांस ले सके। समय भी उसका अधिक लगने लगा, घण्टेकी जगह दो-दो घण्टे लग जाते, इधर-उधरकी बातें होती रहतीं। दो-एक बार उसके इच्छा जाहिर करनेपर वह उसके साथ सिनेमा भी चला गया था।

सालका अन्त हो रहा था; थोड़े दिन बाद गर्मियोंकी छुट्टियां शुरू होंगी, और वह अपने घर चली जायेगी। किन्तु दिन-ब-दिन उसकी चिन्ता बढ़ती जाती। वह अपनेको अपनी तरफसे तो नियन्त्रित रख सकता था; किन्तु उसके अस्पष्ट, अप्रत्यक्ष प्रवेशको—वह महसूस करता—रोकनेमें वह दिन-ब-दिन, अधिकाधिक असमर्थ होता जा रहा था; वह जैसे बगैर कुछ कहे-सुने उसके जीवनमें सेंध लगाती चली आ रही थी। कमसे कम वह ऐसा ही अनुभव करता, और अपनी लाचारी और कमजोरीपर वह खीज-खीज उठता।

(३)

छुट्टियोंके बाद जब वह सेकेण्ड इयरमें आयी, तो वह भी एम० ए० हो चुका था, और यूनीवर्सिटी छोड़ दी थी।

शुरू ही में एक दिन वह उसके घर आ पहुंची—सुबह ही—यूनीवर्सिटीके रास्तेमें। कई दिनके लिए वह बाहर चला गया था—इसलिए मुलाकात नहीं हो सकी थी। इधर-उधरकी बात होती रही। फिर चलते वक्त उसने पूछा—"तो अब शामको आप आयेंगे न ?"

वह फौरन् मतलब समझ गया। उसने इस वर्ष इसका खयाल भी नहीं किया था। पिछले वर्ष तो उसने साइन्समें इण्टर करके एकदम अर्थशास्त्र और राजनीति ले ही थी, इससे ट्यूटरकी आवश्यकता भी हो सकती थी; किन्तु इस वर्ष तो निश्चय ही उसे किसीकी सहायताकी दरकार नहीं थी। इसलिए उसने इसपर सोचा भी नहीं था। किन्तु प्रश्नके इस तरह सामने खड़े होते ही वह किसी आशङ्कासे भर उठा—वह झूठ-मूठ किसीके जीवन और स्नेहके साथ खिल-वाड़ नहीं करना चाहता था; अपनी परिस्थितिसे वह पूर्णतया परिचित था, और अपने ऊपर उसे सम्पूर्ण भरोसा नहीं था।

फिर भी वह जल्दीमें कुछ तय न कर सका, तो उसने यही कहा—"हां, कोशिश करूंगा।"

और फिर सारे दिनके सोच-विचारके बाद शामको वह गया, और उससे कह आया कि कितने ही कामोंकी वजहसे वह उसे अब नियमित रूपसे न पढ़ा सकेगा। हां, कभी कोई जरूरत पड़नेपर तो वह है ही।···बादमें उसने एक दूसरे ट्यूटरका भी जिक्र किया। शीलने पितासे लिखकर पूछ लेनेके बाद उत्तर देनेको कहा।

किन्तु वह भी समझ गयी। और दूसरे ट्यूटरके बारेमें और फिर कभी पूछने और उत्तर देनेकी तो कोई जरूरत ही नहीं थी। इसे नरेनने भी समझा। वह तो उसके प्रश्नका आवश्यक उत्तर था।

उसके बाद वह श्रृङ्खला टूट गयी। उससे बचनेके लिए; कहीं शील भी न उससे स्नेह करने लगे, इसलिए उसे अलग रखनेके लिए; उसने पढ़ाने जाना—ट्यूशनके रुपयेकी अनुपस्थितिकी बहुतेरी तकलीफोंके बावजूद भी, बन्द कर दिया। किन्तु आकर्षण कम न हुआ। दिनमें एकाध बार देखे बगैर उसे चैन न पड़ता। हमेशा उसकी दबी इच्छायें, उससे मिलनेके रास्ते निकाला करतीं। कभी-कभी वह छुट्टी वगैरहके दिन उसके घर पहुंच जाता, और दो-एक घण्टे बातें कर आता। अक्सर यूनीवर्सिटीके लड़कोंसे कामके सिल-सिलेमें या उसके मकानकी तरफके किसी कामके सम्बन्धमें, उधर जाते वक्त वह उसे देख आता; किन्तु अब ये मिलन बहुत छोटे होते। कोई बात होनेका अवसर ही न आता।

और इधर-उधरकी छोटी-मोटी बातोंके अलावा होता ही क्या ?... किसीको एक-दूसरेके जीवनके ऊपरी भारी लबादेको उठाकर अन्दर देखनेकी शक्ति नहीं थी। किसी विषयका विश्लेषण या प्रतिपादन करनेके लिए तो एक तीसरे व्यक्तिकी आड़की आवश्यकता होती थी।

शीलको उसे समझनेमें देर न लगी। वह समझ गयी कि इन बन्धनोंको ढीला करनेके लिए ही वह उससे बचता है; किन्तु उसका वह बचना ही उसके जबर्दस्त खिंचावका प्रमाण था—वह बन्धन नहीं ढीले कर पा रहा था। और उसका खुदका तो जीवन ही नीरस बन गया : चौबीस घण्टेके लम्बे दिनमें उन घण्टे-डेढ़ घण्टोंके अलावा और था ही क्या—उस रेगिस्तानमें उस छोटे-से नखलिस्तानके अलावा ? और फिर जब वह भी उसने ठेलकर अलग कर दिया, तो फिर रह ही क्या गया ?

लेकिन उसने भी उसके यहां आना-जाना बन्द कर दिया। यह उचित नहीं था कि वह उससे बचता फिरे और वह उसपर भार बनती चले। इसकी भी तो प्रतिक्रिया हो सकती थी। नरेनकी असली इच्छायें भी इस परिवर्तनको समझनेमें पीछे न रहीं।

गिरहसे बचनेके लिए भागता हुआ वह डोरोंमें और भी उलझता जाता था; पर अब तो यह भी सम्भव नहीं था कि वह फिर उसे पढ़ाने लगे। वह अपने मनको समझ न पाता, और सुलझाकर सोचनेका उसका साहस न होता। अतार्किक सामाजिक सङ्गठनकी अनावश्यक असङ्गतियोंमें उलझा हुआ उसका जीवन मानसिक और बौद्धिक द्वन्द्वोंका रणक्षेत्र बन गया था।

पर उनका मिलना जारी रहा। मौका निकालकर वह उसे देख आता। कई बार खुद ही कहकर उसे सिनेमा भी ले गया था। सार्वजनिक सभाओंमें भी अक्सर वह उसे खींच ले जाता; किन्तु शीलकी उदासीका आवरण न उतरता।

ऐसे ही जीवन चलता रहा।

अपने बी० ए० के इम्तहानके बाद, घरको रवाना होनेके पहले, शीलने एक दिन अन्य बातोंके साथ उससे कहा कि अब वह वहां लौटकर न आयेगी। पढ़ाई तो पञ्जाबमें भी होती ही है, घरके भी नजदीक रहेगी; वहीं पढ़ेगी—शायद अर्थशास्त्रमें ही एम० ए० ले।

नरेन चुप रहा। यह बात तो थी नहीं कि वे एक-दूसरेको समझते नहीं थे। किन्तु उतने चुनकर शब्दोंमें किसीने कुछ नहीं कहा। कहनेके लिए कोई बात नहीं कही गयी; ऐसी कोई बात नहीं कही गयी, जिससे चिपटकर शील या नरेन कोई सम्पूर्ण विश्वासके साथ यह कह सकता कि दूसरा उसे प्यार करता है। खामोशीसे दफना देनेकी इच्छा जो थी !

उसके बाद शीलने अपना सामान वगैरह बांधा, सार्टीफिकेट वगैरह इकट्ठे किये, और चल दी। नरेन उसे स्टेशनपर छोड़ आया। विदा होनेके पहले, प्लेटफार्मपर चुपचाप वे एक-दूसरेके सामने खड़े रहे; दोनोंकी तबियत भारी थी। नरेनने कई बार कोशिश की कि अपना पता लिखकर दे दे—उसे मालूम नहीं था कि उसके पास उसका पता अब भी है या नहीं; किन्तु उसके हाथ-मुंह नहीं खुले। फिर गाड़ी चल दी। एक बार नरेनने शीलकी आंखोंमें आंख डालकर पढ़नेकी कोशिश की, उसकी आंख वहां न ठहरी। वह आंखें अलग किये खड़ा रहा—गाड़ी खिसक गयी। तब उसने जो आंखें मिलानेकी कोशिश की, तो दूरसे शीलका पत्थरकी तरह जड़वत् खिड़कीके बाहर, दूर देखता हुआ चेहरा दिखा।

× × ×

यही तो था जो कुछ था, चाहे कहानी कहिये, चाहे हमारे मौजूदा जीवनका तर्क !

× × ×

नरेन अपने धकधकाते हृदयको अपनी कोठरीके अन्धकारमें जोरसे दाबे पड़ा था। उसकी आंखोंमें आंसू आकर गालोंपरसे अविरल बह रहे थे। उसी समय कहार आ गया, उसने पूछा—"बाबूजी, रोटी खाय चुके ?"

उसने उठकर देखा, तो दस बजनेमें दस-पन्द्रह मिनट बाकी थे। उसने कन्धेपर कोट डाला, और कहारको चाभी देते हुए कहा—"नहीं, मैं नहीं खाऊंगा; स्टेशन गया था, वहीं कुछ खा लिया था। अब मैं कामसे जाऊंगा। खाना-वाना उठाकर चाभी खिड़कीपर रख देना।"

बाहर उदास चांदनीमें पेड़ोंकी लम्बी-लम्बी छांह फैल रही थी। बागके फूल सफेद चादर ओढ़े सो रहे थे। उसने साइकिल उठायी और दसकी मीटिङ्गके लिए चलने लगा।

———

विवाह और सन्तानोत्पत्तिका अधिकार किन्हें ?

श्री गणेशदत्त "इन्द्र"

"मातृदेवोभव, पितृदेवोभव" वाक्यों द्वारा श्रुतिने माता-पिताके जिस उच्चपदकी ओर सङ्केत किया है—वह पद आज अज्ञ माता-पिता द्वारा कितना अपमानित हो रहा है, यह देखकर प्रत्येक समझदार व्यक्तिके हृदयमें एक गहरी ठेस लगती है। आज ठीक इसके विपरीत युग है। माता-पिता अपने कर्तव्यसे इतने च्युत हो गये हैं कि उन्हें माता-पिता जैसे गौरवान्वित शब्दोंसे सम्बोधन करनेमें लज्जा आती है। आजके कितने ही माता-पिता—मुझे क्षमा करें, मैं स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि—देव नहीं, दानव हैं; मानव नहीं, पशु हैं। वास्तवमें देखा जावे, तो इन्हें सन्तानोत्पत्तिका कोई अधिकार नहीं। मैं फिर दावेके साथ कहता हूं कि पशु-पक्षियोंको अपत्योत्पादनका अधिकार है; किन्तु इस बुद्धिमान कहलानेवाले—किन्तु पशुसे गये-बीते मानवप्राणीको बच्चे पैदा करनेका बिलकुल अधिकार नहीं है। पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गादि अपने नैसर्गिक नियमोंका पालन तो करते हैं; किन्तु यह मनुष्य-शरीरधारी प्राणी इतना स्वतन्त्र और इतना उद्दण्ड हो गया है कि प्राकृतिक नियमोंका पालन करना वह अपनी परतन्त्रता समझ बैठा है!

आप रात-दिन देखते होंगे—यदि आपने ध्यान न दिया हो तो कृपया अब अपने मस्तिष्कको थोड़ा कष्ट दीजिये कि—वे पशु-पक्षी, कीट-पतङ्गादि, जिन्हें आप अज्ञानी मानते हैं, अपनी वंशवृद्धिमें कितने नियन्त्रित हैं। वे कितने इन्द्रिय-संयमी हैं! ब्रह्मचर्य-पालन किस प्रकार करते हैं! वे ऋतुकालाभिगामी हैं। नर-जाति नारीके प्रति कोई अत्याचार नहीं करती। और न नारी ही नर-जातिको प्राकृतिक नियमोंके तोड़नेको विवश करती है। आप उन्हें चाहे जब मैथुन-प्रवृत्त नहीं देखेंगे। नारी-जाति जब ऋतुमती हो, गर्भाधानके योग्य होती है, तभी नर-जातिका पशु-पक्षी आदि उसके साथ मैथुनासक्त हो अपनी जाति-वृद्धि करता है। नर-जाति कामातुर हो नारीके साथ बलात्कार नहीं करती, और यदि नर-जाति बलात्कारके लिए प्रवृत्त भी हो, तो मादा उसकी वह इच्छा कदापि पूर्ण नहीं होने देती। इस प्रकार पशु-पक्षियों तकमें नर-मादाको नैसर्गिक नियमोंका पालन करते देखा जाता है। परन्तु मानव कहलानेवाले—संसारमें सर्वश्रेष्ठ प्राणी बननेका दम भरनेवाले—इस बुद्धिमान पुतलेको देखिये!! कोई नियम नहीं, कोई नियन्त्रण नहीं, कोई भय नहीं!!!

इस मनुष्य नामक प्राणीने बालकी खाल निकालनेमें कोई कसर नहीं रखी। आकाश और जमीन तकका माप कर डाला, इतना ही नहीं—अदृश्य वस्तुओंकी कल्पना करके उन्हें सत्यका जामा पहनानेमें जमीन-आसमानके कुलावे भी मिला डाले। ईश्वरका भय इसके सामने रात-दिन रहता है। धर्म नामकी वस्तु रात-दिन गर्दन पकड़े खोपड़ीपर सवार है। स्वर्ग-बहिश्तका नाम सुनते ही बाछें खिल जाती हैं। नरक-दोजखका नाम सुनते ही रोंगटे खड़े हो जाते हैं, शरीर कांप उठता है, तोबातिल्ला मच जाती है, मानो यमदूत इन्हें पकड़कर घसीट ही रहे हों! किताबोंमें धर्मका, मजहबका सुनहला पालिश करके स्वर्ग और नरकका वर्णन अद्भुत शब्दोंमें किया है। सारांश यह कि ईश्वर, धर्म, स्वर्ग और नरकका भय दिखाकर भी इस मानव-प्राणीको उतना भी नियन्त्रित नहीं किया जा सका, जितना कि पशु-पक्षी, कीट-कृमि आदि इन भयोंके अभावमें हैं। उक्त भयोत्पादक कल्पनायें ही डङ्केकी चोट यह सिद्ध कर रही हैं कि मनुष्य प्राणी निपट स्वच्छन्द, अविचारी, उच्छृङ्खल, उद्दण्ड और इतना अज्ञानी है कि उसके लिए न जाने क्या-क्या नियम बनाने पड़े और किन-किन अदृश्य वस्तुओंकी भयोत्पादनहेतु कल्पना करनी पड़ी। फिर भी यह तो उतना ही आज़ाद है, जितना कि नियमोंकी रचनाके पूर्व था। बात-बातमें ईश्वरका नाम और धर्मकी दोहाई सुन लीजिये और कर्म देखिये, कितने गन्दे हैं। बल्कि यह कह दूं तो अत्युक्ति न होगी कि धर्म-ईश्वर और स्वर्ग-नरकादिकी कल्पनाने इन्हें अधिक अविचारी और उच्छृङ्खल बना दिया। इनकी ओटमें न जाने क्या हो रहा है!

विवाहको लीजिये, इसे धर्म मान लिया है। धर्मके असली अर्थमें तो 'विवाह' आ जाता है; किन्तु आज जिसे

लोगोंने धर्म बना रखा है—उससे और विवाहसे कोई सम्बन्ध नहीं मालूम होता। तरुण स्त्री-पुरुष अपनी वंशवृद्धिके लिए आपसमें प्रेम-स्थापन कर और यौन-सम्बन्ध हो, इसमें धर्मकी जरूरत ही क्या है? पशुओंको देखिये—जङ्गली पशुओंको देखिये, न तो उनकी जन्मपत्री मिलायी जाती है, न ब्राह्मण महाराज गणेश, नवग्रह, षोडशमात्रिका आदिकी पूजा कराते हैं, न बात-बातमें मुहूर्त्त ही देखा जाता है, न शुभ और लाभके चौघड़ियेके चक्करमें पड़ते हैं, न बारात आती-जाती है, न ब्राह्मण देवता होम कराते हैं। उनके द्वारा सन्तानें उत्पन्न होती हैं और इतनी अच्छी हृष्ट-पुष्ट, बलिष्ठ और दीर्घजीवा होती हैं, जितनी इन बेचारे बात-बातमें धर्मका कचूमर निकालनेवालों और फूंक-फूंककर कदम रखनेवालों द्वारा नहीं होतीं। मेरे लिखनेका कोई यह अर्थ नहीं निकाले कि मैं धर्मका मखौल उड़ा रहा हूं। नहीं, मैं तो धर्मके इस आडम्बरका दिखाना चाहता हूं, जिसकी ओटमें संसारका और विशेषतः भारतवर्षका अमङ्गल हो रहा है।

यह प्रकृतिका एक अटल नियम है कि स्वस्थ, नीरोग नर-नारीके मेलसे सन्तान अवश्य उत्पन्न होगी। मैं आपसे ही पूछता हूं कि आपके मजहबोंसे—धर्मोंसे इसका क्या सम्बन्ध है? आप व्यर्थ ही धर्मका आडम्बर बनाकर इसकी ओटमें मानव-जातिका संहार करनेका समर्थन क्यों करते हैं? आपने कभी ध्यानसे नहीं विचार किया होगा कि विवाहको धर्मके साथ जोड़ देनेसे हमारे समाजको क्या हानि पहुंच रही है? मैं आपको बताना चाहता हूं कि धर्मकी दुमके साथ विवाहको बांध देनेसे भारतवर्षमें अयोग्य माता-पिताओंका दल तैयार हो गया है। आप भी ऐसे दलके सदस्य हों तो मुझे क्षमा करें, नाराज न हों, बल्कि ध्यानपूर्वक ठण्डे दिलसे जरा एकान्तमें सोचिये कि यदि आप धर्मके इस शिकञ्जेमें न कसे होते, तो आप सुखी रहते, या अब सुखी हैं? इस धर्मके कारण हमारे वैवाहिक सम्बन्धमें अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं, जिनके कारण हमारा समाज और राष्ट्र कमर टूटे प्राणीकी भांति निकम्मा होकर पड़ा है। सर्वप्रथम दोष यह है कि धर्मके नामपर यौवनके आगमनके पूर्व ही छोटे-छोटे अबोध बच्चे विवाह-रूपी कसाईके खूंटेसे बांध दिये जाते हैं (२) बच्चे-बच्चियोंके साथ दूसरा अन्याय यह है कि उनके प्रत्यक्ष गुण-दोषोंको न देखकर धर्माचार्य कहलाने-वाले ब्राह्मण उनके ग्रह और गण मिलाते हैं (३) तीसरे जाति-बन्धन उन्हें खाये जाता है। लड़की-लड़का चूंकि अपनी ही जातिमें दिया जा सकता है, इसलिए अपनी जातिके छोटे-से दायरेमें और उसमें भी प्रान्तीयताके अति संकुचित क्षेत्रमें उनका सम्बन्ध करना पड़ता है (४) माता-पिताका धर्म है कि अपने बाल-बच्चोंका विवाह कर दें, विशेषतः कन्या तो १२।१३ वर्षके बाद क्वांरी रखें ही नहीं। इसलिए माता-पिता अपने बच्चे-बच्चीका जो मिल जाय, उसीके साथ विवाह कर देते हैं। और विवाहके बाद इतने सुखी हो जाते हैं, मानो बड़ा भारी हजारों मनका बोझ उनके सिरसे उतर गया हो! यह क्यों? केवल धर्मके भयसे। अजी! अगर लड़की कहीं १४-१५ वर्षकी या इससे अधिक हो गयी, तो उसके पालकोंकी दशा देखिये—बेचारे धर्मलोपके भयसे खाना-पीना भूल जाते हैं, जैसे बने तैसे किसी भी अयोग्य, मूर्ख, कुरूप, रोगी पुरुषके पल्ले बांधकर बेचारे धर्मरक्षा करते हैं। इसी प्रकार अनेक अकर्म, धर्मके नामपर हो रहे हैं। कहिये, ऐसी दशामें, धर्मकी इस खींचातानीमें राष्ट्रका कल्याण कैसे हो सकता है? योग्य माता-पिता, जो अपनी सन्तानोंके प्रति अपना कर्त्तव्य समझते हों, कहांसे उत्पन्न हो सकते हैं? राष्ट्र-हितके लिए, समाज-कल्याणके लिए, मानव-जातिकी रक्षाके लिए हमें योग्य माता-पिताओंकी सबसे पहले आवश्यकता है।

भारतके अतीतकालीन माता-पिताओंके नामों और चरित्रोंका उल्लेख करनेका यह स्थान नहीं है। भारतवासी अपने सुवर्ण युगके निर्माता माता-पिताओंके नाम जानते होंगे। इतिहास-पुराण उनके नाम हमें बता रहे हैं। तत्कालीन माता-पिता वास्तवमें कर्त्तव्यपरायण होते थे। इसी कारण उस युगमें "मातृदेवोभव" और "पितृदेवोभव" जैसे सम्मान-वर्द्धक वाक्योंकी रचना हुई थी। और आज? आज कितने बच्चे अपने माता-पिताका देववत् आदर करते हैं? सन्तानें माता-पिताका आदर नहीं करतीं, इसमें उनका दोष नहीं। आदर-योग्य व्यक्तिका तो शत्रु भी आदर करता है, फिर भला अपने माता-पिताका बालक आदर न करें, यह तो विचित्र ही बात है। मैं तो यही सिद्ध करना चाहता हूं कि माता-पिता योग्यता प्राप्त किये बिना ही मा-बाप बन जाते हैं। बेचारोंको इतनी भी तमीज नहीं होती कि बालक कैसे

पाला-पोसा जाता है और हमारा उसके प्रति क्या कर्तव्य है—और बच्चे पैदा करने लगते हैं।

छोटी-छोटी उम्रके दम्पति, जो अभी स्वयं बच्चे हैं, वासनाकी भयङ्कर चपेटोंमें आकर, अनभिज्ञताके कारण मूर्खताके प्रभावसे यौन-सम्बन्ध करने लगते हैं, और परिणाममें, अपनी बेवकूफ का—अपनी भूलका फल समाज और राष्ट्रके माथे, एक दुर्बल, हीन, क्षीणकाय, रोगी, अल्पायु बालकके रूपमें थोप देते हैं। वे बेचारे माता-पिता बननेका इच्छासे मैथुनासक्त नहीं हुए थे, बल्कि अपनी वासनाकी एक हल्की-सी शान्तिके लिए। परिणाममें बालक उत्पन्न हो गया। बेचारे स्वयं बालक हैं और उनके भी बालक हो गया। प्रकृतिके साथ जबर्दस्ती की गयी। असमयमें ही मूर्खता की और प्रकृतिने दण्ड-स्वरूप एक सन्तान दे दी, जिसे या तो वे गड्ढेमें रख दें अथवा जब तक वह जीवित रहे, उसकी दवा-दारू करते रहें और अपने भाग्यको रोते रहें। सैकड़ों ऐसे बच्चे देखनेमें आते हैं, जो अभी कोरे अबोध हैं, बिलकुल अज्ञान हैं और वे माता-पिता बन बैठे हैं। स्वयं मूर्ख, बेकार, रोगी, निर्बल, नपुंसक, दुराचारी, व्यसनी हैं और बच्चे पैदा करके भारतको निर्बल बना रहे हैं। इस प्रकारकी भूलोंसे देशकी जो बर्बादी हो रही है, वह किसी भी समझदार व्यक्तिसे छिपी नहीं है। आप आश्चर्य करेंगे, कल तक जो नपुंसक थे और जिनकी गणना सभ्य शब्दों द्वारा "कुम्भिक नपुंसकों" में की जाती थी, एक हृष्ट-पुष्ट स्त्रीके साथ विवाह हो जानेके कारण बच्चोंके पिता कहलाने लगे। आप ही कहिये, ऐसे माता-पिता और उनके द्वारा उत्पन्न सन्तानसे देशका हित क्या हो सकता है। ऐसे स्त्री-पुरुषोंके द्वारा बच्चोंकी उत्पत्तिका तांता बंधा हुआ है, वे अपना, खुदका पेट नहीं भर सकते। इस बेकारीके जमानेमें तो पूछिये ही नहीं। बच्चे पैदा होते जाते हैं, और उनके पालन-पोषणका कोई उपाय नहीं। परिणाम यह हो रहा है कि पौष्टिक खाद्यके अभावमें माता-पिता और बच्चे अकाल मौत पाते हैं, और यदि जीवित भी रहे, तो मर जानेसे भी बुरी दशामें। माता-पिता अपनी इन्द्रियोंके गुलाम होकर अपनी हरकतोंसे बाज नहीं आते और देशमें निर्बल, असहाय, रोगी, मूर्ख और अल्पायु प्रजाकी सृष्टि करते रहते हैं।

प्रत्येक राष्ट्र उत्तम सन्तान चाहता है। राष्ट्रकी उन्नति और अवनति उसकी सन्तानोंपर निर्भर है। आज वे ही राष्ट्र सुखी, आनन्दित, स्वतन्त्र, बुद्धिमान, बलवान, स्वस्थ और दीर्घायु हैं, जिनमें उत्तम सन्तानें उत्पन्न हो रही हैं। इसके विपरीत जहांकी भावी पीढ़ियां निर्बल और रोगिणी हों, वह राष्ट्र कैसे उन्नतावस्थाको ओर बढ़ सकता है? देश-सेवकोंका, देशके शुभचिन्तकोंका यह प्रथम कर्तव्य है कि वे अपने सुख-वैभव और स्वाधीनताको चिरस्थायी बनानेके लिए बच्चोंकी दशापर विशेष ध्यान दें। अभाग्यसे यह बात अभी हमारे भारतवर्षमें नहीं है। कुछ देश-शुभचिन्तक यदि इस दिशामें कुछ करने जाते भी हैं, तो एक बहुसंख्यक दल उनका विरोध करनेके लिए भी पहलेसे तैयार रहता है। यह विरोध धर्मके नामपर, धर्मकी दोहाइयां दे-देकर, धर्मकी रक्षाका आडम्बर रचकर किया जाता है। उदाहरणके लिए वे अनेक समाज-सुधार-सम्बन्धी बिल हैं, जो कानून बननेके लिए एसेम्बलीके अधिवेशनोंमें उपस्थित किये गये और पास न हो सके। 'शारदा बिल' को ही लीजिये न? बालविवाह रोकना था, इसमें समाजका हित था; परन्तु लाखों व्यक्ति इस देशमें ऐसे भी निकले, जिन्होंने "धर्मनाश, धर्मनाश" का तुमुल कोलाहल मचाकर उसका भरपेट विरोध किया। बड़े-बड़े विद्वान् कहलानेवालों, समझदारोंकी सूचीमें अपना नाम लिखानेवालोंने इस बालविवाह-निषेधक बिलकी, सारी शक्ति लगाकर मुखालिफत की। जिस देशमें इतने ज्ञानी, इतने समझदार और इतने बुद्धिमानोंकी पलटन रहती हो, भला उस देशमें क्या सुधार किया जा सकता है? इस ४० करोड़ मनुष्योंसे समाकुल देशमें किसी भी भले-बुरे कार्यके समर्थन और विरोधमें लाखों-करोड़ों व्यक्ति मिल सकते हैं। इसीका तो यह परिणाम है कि आज हम लोग सतत उद्योग और कष्ट सहन करके भी अपने ध्येयको प्राप्त नहीं कर सकते। अपने भले-बुरेको और अपने कर्तव्योंको न समझनेवालोंकी भीड़ने ही तो इस देशकी मिट्टी पलीद कर रखी है।

इधर हमारे देशकी यह दशा है, तो उधर स्वतन्त्र राष्ट्रोंपर नजर डालिये—वे एक-दूसरेसे आगे बढ़नेकी होड़में सब कुछ कर डालनेको तैयार हैं। समस्त भूमण्डलपर एकछत्र, चक्रवर्ती राज्य स्थापित करनेकी महत्त्वाकांक्षावाले जर्मनीको देखिये, वह अपने राष्ट्रमें एक भी निकम्मे आदमीकी उत्पत्ति अब देखना नहीं चाहता। वह राष्ट्रकी सुदृढ़ नींव बनानेके

लिए देशकी भावी आशाओंको परिपुष्ट, तेजस्वी एवं शूरवीर बनाना चाहता है। इसके लिए वह योग्य माता-पिताओं द्वारा इच्छित सन्तानोत्पत्ति चाहता है। रोगी, निर्बल, पागल, नशेबाज माता-पिता द्वारा उत्पन्न बच्चोंको वह राष्ट्रपर भार समझता है—देशपर अभिशाप मानता है। इसलिए उसने १ जनवरी १९३४ ई० से जर्मनीमें एक नया कानून बना दिया, जिसके द्वारा ३०।४० लाख जर्मन खस्सी (नपुंसक) बना दिये जावेंगे। अभी प्रारम्भमें चार लाख व्यक्ति ही नपुंसक बनाये जावेंगे। जिनमें दो लाख मनुष्य ऐसे होंगे, जो जन्मतः पागल हों, ६० हजार मिर्गी रोगग्रस्त, १६ हजार जन्मसे बहरे, २० हजार अङ्ग-भङ्ग, १० हजार शराबी, ४ हजार जन्मान्ध। खस्सी बनानेकी आज्ञा देनेवाले ८४ युजनिक कोर्ट (Eugenic Courts) और १३ अपील कोर्ट्स नियुक्त कर दिये हैं। प्रत्येक पुरुषको खस्सी बनानेमें १९) रु० और स्त्रीके लिए ३७) रु० के लगभग खर्च होंगे। कार्य शुरू हो गया है। यह कानून सन्तान-सुधारके निमित्त उत्तम मां-बाप प्राप्त करनेकी सदिच्छासे बना है। उनका खयाल है कि अधिकसे अधिक तीन पीढ़ियोंमें, अर्थात् लगभग ७०।७५ वर्षोंमें जर्मनी अपनी इच्छानुसार मनुष्योंको प्राप्त कर सकेगा। लेकिन भारतमें तो बाल-विवाह तक रोकनेवाले पापी, अधर्मी और पतित समझे जाते हैं! बाल-विवाह रोकना धर्मके विरुद्ध कार्य समझा जाता है!! सैकड़ों छुतहे रोगोंसे ग्रस्त, सैकड़ों वंशक्रमागत बीमारियोंके शिकार, जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, अन्धे, लंगड़े, काने, खोड़े, नशेबाज, दीन, हीन, जनाने, हिजड़े, चाकलेट और चिरचे व्यक्ति धड़ाधड़ बालक पैदा कर रहे हैं। क्या ऐसे माता-पिताओंकी औलादोंके भरोसे ही देशको उन्नत देखनेकी इच्छा है? देशमें निकम्मी प्रजा उत्पन्न हो जानेसे उन्नति तो दूरकी बात है, साधारण दशामें स्थित रहना तक असम्भव है।

योग्य माता-पिताओंके अभावमें देश जिस अधोगतिको पहुंच चुका है, वह आज हमारी आंखोंके सामने है। जिन्हें सामाजिक गतिविधिका ज्ञान नहीं, जिन्हें राष्ट्र और राष्ट्रीयताका अभिमान नहीं—जो यह नहीं समझते कि राष्ट्रीयता किस परिन्दका नाम है! जिनके दिमागोंमें मकड़ीके जाले भरे हुए हैं, ऐसे लोग देशकी दशाको अपनी आंखोंसे देखते हुए भी बेचारे समझ नहीं सकते। आंखोंके रहते भी जो अन्धे हैं, वे लोग सम्भवतः इस कथनकी ओर दुर्लक्ष्य करेंगे। ऐसे भोंड़े और कूढ़ दिमाग मनुष्योंके लिए हम एक मोटीसे मोटी बात समझा देना चाहते हैं। योग्य माता-पिता द्वारा उत्पन्न बच्चे कभी नहीं मरते। आप कहें कि "परमात्माके हाथमें जिलाना और मारना है, हम क्या कर सकते हैं? जो जितनी उम्र लेकर आता है, वह उतनी ही भोगता है, एक सांस भी घटायी अथवा बढ़ायी नहीं जा सकती।" इत्यादि। इसके सम्बन्धमें आपसे प्रश्न करता हूं कि राम-राज्यमें एक भी बालक नहीं मरता था। महर्षि बाल्मीकिजीने लिखा है—"न चल्मवृद्धाबालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते।" अर्थात् कोई भी वृद्ध पुरुष अपने जीवित किसी छोटेकी मौत नहीं देखता था। महाभारतमें भी लिखा है—

"न बाल एव म्रियते वदा कश्चिज्जनाधिप।"

अर्थात्—बालकोंकी मृत्यु नहीं होती। आप कह उठेंगे कि यह तो त्रेता और द्वापर युगकी बात है, अब तो कलियुग है। धर्म उन दिनों अपने पूर्ण चरणोंपर स्थित था, आज तो धर्म अपने एक चरणपर अवलम्बित है। ऐसी कायरतापूर्ण बातें कहनेवालोंसे क्या मैं एक बात पूछ सकता हूं कि "क्या कलियुग तुम्हारे ही पल्ले बंध गया है?—अन्य देश, जो आपकी दृष्टिमें विधर्मी हैं, पापी हैं, हिंसक हैं, क्या वहां कलियुग नहीं पहुंचा? दूसरे देशोंमें बाल-मृत्युकी संख्या बहुत ही कम है। जो कुछ भी है, उसे भी हटाने या कम करनेकी ओर सतत लक्ष्य है। यह धर्म-अधर्म और सतयुग-कलियुगका हौआ तुम्हें ही खा जायगा। मोटी-मोटी बातें अपना उल्लू सीधा करनेके लिए तुम्हारे स्वार्थी धर्माचार्योंने तुम्हें बता दी हैं। उन्होंने तुम्हें सतयुग-कलियुगका रहस्य नहीं समझाया। शास्त्रोंमें ही यह लिखा है कि—

"कलिः शयानोभवति—
संजिहानस्तु द्वापरः
उत्तिष्ठन्त्रेता भवति
कृतंसंपद्यतेचरन्। चरैवेति चरैवेति।"
(ऐतरेय ब्रा० ७।१९)

अर्थात्—आलस्य ही कलियुग है और उद्योगशीलता ही सतयुग है। किसी भी समय किसी भी दशामें जब आलस्य न करके हम उद्योगमें प्रवृत्ति हों, वही कृतयुग है। युगोंका निर्माण हमारे हाथमें है—हमीं युग-निर्माता हैं। सतयुग भी

हमने ही बनाया था और कलि भी हमने ही। जो देश जागरित हैं—उद्योगी हैं, वहां सतयुग है। जहांके निवासी आलसी हैं, अज्ञान-निशामें सो रहे हैं, वहीं कलियुग है।

दूसरे देशोंमें बालमृत्यु बहुत ही कम है। हम एक कोष्ठक दे रहे हैं, जिससे आपको समझनेमें विशेष श्रम नहीं होगा। अयोग्य माता-पिताओंके कारण भारतमें बालकोंकी मृत्यु-संख्याके भयङ्कर आंकड़े देखिये :—

मद्रास	१९९	प्रति	सहस्र
बङ्गाल	२७०	,,	,,
बिहार-उड़ीसा	३०४	,,	,,
पञ्जाब	३०६	,,	,,
बम्बई	३२०	,,	,,
ब्रह्मा	३३२	,,	,,
युक्तप्रदेश	३९२	,,	,,

कैसा भयङ्कर बाल-संहार है। भारतमें चार बालकोंमेंसे एक अपने जीवनके प्रथम वर्षमें ही समाप्त हो जाता है। फी सैकड़ा २० बालक तो १२ महीनेके अन्दर ही अन्दर कालके भोजन बन जाते हैं। हिसाब लगाकर देखिये, भारतमें २० लाख बच्चे बेमौत प्रतिवर्ष हमारी भूलसे मरते हैं; क्योंकि प्रतिवर्ष अनुमानतः एक करोड़ बालक यहां उत्पन्न होते हैं। शेष अस्सी लाख यद्यपि मरते नहीं, तथापि जिन्दगी-भर मृत्यु-का अनुभव तो करते ही रहते हैं। अब जरा विदेशोंमें होने-वाली बालमृत्युकी निम्न तालिकापर नजर कीजिये :—

न्यूजीलैण्ड	५१	प्रति	सहस्र
नारवे	६८	,,	,,
स्वीडन	७२	,,	,,
आस्ट्रेलिया	७२	,,	,,
फ्रान्स	७८	,,	,,
नीदरलैण्ड्स	९१	,,	,,
स्विजरलैण्ड	९४	,,	,,
डेन्मार्क	९४	,,	,,
आयर्लैण्ड	९७	,,	,,
इंगलैण्ड और वेल्स	९८	,,	,,
स्काटलैण्ड	१०९	,,	,,

भारतसे अधिक बच्चे इस पृथ्वीपर किसी भी देशमें नहीं मरते। हमारे घरोंमें बालक क्या पैदा होते हैं, एक घबराहट, चिन्ता और सिर-दर्द पैदा हो जाता है। उसकी उत्पत्तिके साथ ही रोग भी पैदा होते हैं। बचा कुछ दिन भी सुखसे व्यतीत नहीं करने पाता कि दवा-दारू आरम्भ हो जाती है। बेचारा अपने जीवनकी घड़ियां कष्टसे व्यतीत करता है। लोग कहते हैं कि पूर्व-सञ्चित कर्मोंका फल भोगना पड़ता है, इसमें किसका बश है ? परन्तु मेरे विचारसे बच्चेके माता-पिताकी भूलोंका और उनकी मूर्खताका यह दुःख उस अबोध बालकको भोगना पड़ता है। क्या दुःख भोगनेके लिए सभी बच्चे भारत ही में पैदा होते हैं ? यह नरक तो नहीं है न ? आपके ही शब्दोंमें यह स्वर्गोपम भारत देश है। जैसे माता-पिता होंगे, वैसे ही उनकी सन्तान होनी चाहिए—यह एक अटल नियम है। इसमें भाग्य, कर्म, प्रारब्ध, तकदीर वगैरहका बहाना ढूंढ़नेकी जरूरत ही क्या है। एक सीधी-सी बातको अपनी मूर्खता, अपनी अयोग्यता छिपानेके लिए ऐसी कल्पित बातोंका जामा पहनाना भी तो अयोग्यता ही सिद्ध करता है।

माता-पिताकी भूलका दण्ड बालकको ही सहना पड़ता हो, सो नहीं। इन भूलोंका परिणाम बचपन तक ही नहीं रहता, बल्कि आमरण भुगतना पड़ता है। जिसका आरम्भ ही दुःख-पूर्ण हो, उसका अन्त सुखमय कैसे हो सकता है ? भारतीय प्रजा अपने उत्पादकोंकी भूलोंका, उनकी अयोग्यताका फल अच्छी तरह भोग रही है। आज भूतलपर एक-मात्र भारत ही ऐसा है, जिसकी सन्तान अत्यन्त अल्पायु है। जो नित्य ही 'पश्येम शरदः शतम्', 'प्रब्रवाम शरदः शतम्', 'शृणुयाम शरदः शतम्', 'जीवेम शरदः शतम्', 'अदीना स्याम शरदः शतम्' और 'शतंभूयश्च शरदः शतात्'की रटन लगाते हैं, इनकी उम्र आज औसतन् २२॥ वर्ष रह गयी है। जिस देशकी आयुका औसत कभी १०० वर्ष था, आज उसका चतुर्थांश भी नहीं रहा ! कैसा भीषण ह्रास है ? क्या कभी इसके कारणपर भी दृष्टि डाली है ? भाग्य, प्रारब्ध, भगवान और समयके सिर दोष मढ़नेके अतिरिक्त कुछ और भी सीखा है ? ये भाग्य और ईश्वरके भरोसे रह-कर काम करनेवाले क्या कभी आगे भी बढ़ेंगे। कथा-पुराणोंने हम भारतवासियोंको और भी आलसी तथा निकम्मा बना दिया। वे लाल बुझक्कड़ कथा-पुराणोंमें भविष्य लिखकर हमारे समाजमें जहर छोड़ गये। वे मर गये और

साथ ही भारतको भी मार गये ! आज हम उन्हींके नामपर रोते हैं। वे कह गये हैं कि सतयुगमें लाखों वर्षकी आयु होती थी, त्रेतामें हजारों वर्ष लोग जिये, द्वापरमें वह सैकड़ोंपर आ पहुंची और इस कलियुगमें तो लोग बहुत ही कम जियेंगे। बस, आज जिस किसीसे पूछिये, वह कह देगा, कलियुग है। अभी तो इससे भी कम उम्र होगी और बहुत छोटे-छोटे आदमी पैदा होंगे ! यह अन्धविश्वास हमारी उन्नतिमें एक घुनकी तरह लगा हुआ है। दूसरे देशोंपर नजर डालिये, वहांकी आयुका औसत क्या है:—

देश	पुरुष	स्त्री
आस्ट्रेलिया	५६.२०	५८.८४
अमेरिका	४९.३२	५२.५४
इंगलैण्ड	४८.५३	५२.३८
हालैण्ड	५१.०	५३.४
जापान	४३.७९	४४.८५
भारत	२२.५९	२३.३१

यहां एक बात और भी ध्यानमें रखनेकी है कि भारतकी आयु दिन-प्रतिदिन कम हो रही है, तथा दूसरे देशोंकी दिनोंदिन बढ़ रही है। क्या कलियुग भारतके सिर-पर ही बैठ गया ? अपनी भूलोंका, अपनी अज्ञानताको किस्मत, खुदा और कलियुगके सिरपर पटकना भी भूल और अज्ञान ही है।

मैं आपसे पूछता हूं—आप बुद्धिपूर्वक इसका उत्तर दें कि बालविवाह, वृद्धविवाह, अनमेल-विवाह, व्यभिचार, ब्रह्मचर्य-नाश प्रभृति अप्राकृतिक कार्य तो आप करें और दोष लगावें दूसरोंको, यह कहांका न्याय है ? जिस वृक्ष-शाखापर आप बैठे हों, उसके मूलमें आप कुठाराघात करें और तकदीरका दोष बतावें, यह कहांकी बुद्धिमत्ता है ? यह तो ठीक वही बात है कि चलनीमें दूध दुहा जाय और ईश्वरको मर्जी मान ली जाय। वास्तवमें यह तो अपनी ही मूर्खता है। इसी प्रकार बहुत कुछ अवनति हम अपने आप कर रहे हैं। आज हमारे स्वास्थ्यका, हमारे जीवनका, हमारे पुरुषार्थका, हमारी बुद्धिका जो भयानक ह्रास हुआ है, उसका अधिकांश दोष हमारे जननी-जनक कहलानेवालोंपर ही है। वे इसके उत्तरदायित्वसे कदापि मुक्त नहीं हो सकते। माता-पिता बनना सहज है, परन्तु अपने कर्तव्य पालन करना बड़ा कठिन है। साधारण, बुद्धिहीन प्राणी, कृमि-कीट-पतङ्गादि, पशु-पक्षी सभी प्रजा उत्पन्न करते हैं। सन्तान उत्पन्न करना कोई बड़ी बात या तारीफकी बात नहीं है। वह तो प्रकृतिका नियम ही है कि स्वस्थ नर-मादाके यौन-सम्बन्धसे सन्तान पैदा होती ही है। तारीफ और विशेषता तो इसमें है कि उत्तम, नीरोग, स्वस्थ, सबल, दीर्घजीवी, बुद्धिमान, मेधावी और कर्तव्यपरायण बच्चे देशमें उत्पन्न हों। यह तभी हो सकता है, जब कि माता-पिता भी उक्त गुणोंसे युक्त हों। अर्थात् योग्य सन्तानके लिए योग्य माता-पिता होने चाहिए।

माता-पिता बननेवाले व्यक्तियों, अर्थात् विवाहेच्छुक स्त्री-पुरुषोंको चाहिए कि पहले स्वयं योग्यता प्राप्त करके योग्य बनें। इसके लिए ब्रह्मचर्य, व्यायाम और विद्याध्ययन-की सबसे प्रथम आवश्यकता है। तत्पश्चात् सन्तानोत्पत्ति विषयक ज्ञानकी आवश्यकता है। ज्ञान-प्राप्ति और ब्रह्मचर्य-पूर्वक जीवनको सम्पादन करनेवाले स्त्री-पुरुष यौवन-काल आनेपर ही विवाह करें और संयम सहित जीवन व्यतीत करते हुए प्रजा उत्पन्न करें। स्त्री-पुरुषोंको समझ लेना चाहिए कि वे विवाह-बन्धनमें अपनेको बांधकर अपने सिरपर एक गुरुतर एवं महान् उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य ले रहे हैं। देश और समाज-के प्रति जो जिम्मेवारी है, उससे वे मुक्त नहीं हो सकते। सन्तानका अच्छा या बुरा, स्वस्थ या रोगी, सबल या निर्बल, मूर्ख या बुद्धिमान होना माता-पितापर अवलम्बित है। इसलिए माता-पिताका यह प्रथम कर्तव्य है कि अपनी अयोग्यता और अज्ञानताका फल अपनी सन्तानके रूपमें समाजको न प्रदान करें।

शिशु-पालनकी योग्यताके अभावमें प्रतिवर्ष नन्हें-नन्हें अबोध, मूक और निरपराध लाखों बच्चे जमीनमें रख दिये जाते हैं। संसार-भरके युद्धोंमें इतनी मृत्यु नहीं हुई है, जितनी भारतमें बच्चोंकी होती है। आरम्भसे ही यदि भूलें न की जावें, और शिशु-पालनमें सावधानी और सतर्कता रखी जावे, तो बच्चोंकी मृत्यु-संख्या बहुत घट जावेगी। समाज और देशका बहुत दुःख मिट जायेगा।

लोग कहते हैं कि बच्चेकी बीमारीपर इलाज करते हुए भी वह मर जावे, तो क्या किया जाय ? पहली बात तो यह है कि बच्चा बीमार ही क्यों हो ? उचित खान-पान,

रहन-सहनसे बच्चा कदापि बीमार नहीं होता। हमारी भूल ही बच्चेको रोगी बनाती है—इतनेपर भी शायद वह अच्छा हो जाता; किन्तु अज्ञानता तो सभी जगह टांग अड़ाती है न? वह इलाज भी ठीक-ठीक नहीं होने देती। इलाज होता भी है, तो कुछ दूसरा ही। बच्चा बुखारमें कराह रहा है और मां-बाप जादू-टोना, मन्तर-जन्तर करा रहे हैं—भूतप्रेत, डाकिनी-शाकिनी, पिशाचिनीके लिए स्याने, ओझा, भोपासे झाड़-फूंक करानेम मस्त हैं, तो फिर कहिये, बालक मरेगा नहीं, तो क्या जिन्दा बचेगा? मूर्ख माता-पिता न जाने बालकोंको क्या-क्या खिला-पिलाकर बीमार कर देते हैं। अपने हाथों विष देते रहते हैं, और अपनी भूलको समझते तक नहीं! नवजात बालक तो एक मांसपिण्ड है। वह तो कुछ भी नहीं समझता। उसे आप बीमार बना लें या स्वस्थ बना लें, आपकी बुद्धिपर निर्भर है। उसे जिला लें या मार डालें, यह उत्तरदायित्व माता-पिता कहलानेवालोंपर है। मैं यह कहनेमें कदापि सङ्कोच नहीं करूंगा कि बालकोंकी मृत्युका पाप माता-पिताओंके सिरसे लाख उपाय करनेपर भी नहीं हटाया जा सकता। वे अपनी सन्तानकी मृत्युके स्वयं जिम्मेवार हैं। वे अपनी भूलोंको मानें या न मानें, यह बात अलग है; किन्तु वे उनकी अकाल मृत्युके जवाबदेह जरूर हैं—इसमें जरा भी सन्देह नहीं है। बच्चोंके भोजन, वस्त्र, सफाईका ध्यान रखा जावे, तो कोई बालक बिना मारे नहीं मर सकता। माता-पिताकी भूलोंसे ही भारतमें बालकोंकी मृत्यु-संख्या इस अधिकताको पहुंच गयी है। और यह दोष आज समाजको भीतर ही भीतर जर्जरित करता जा रहा है—राष्ट्रके शरीरको यह घुनकी तरह चाटता जा रहा है।

गीत

आज किस आनन्दके मिस
नाथ मेरे द्वार आये?
दे गये वरदान सुन्दर
प्राण मेरे जगमगाये।

प्राण वे, जो थे युगोंसे
मूक-से, पाषाण-से।
बह रहे झर-झर नयन
गूंजी सकल दिशि गानसे।

गान मेरे सर्वदा ही
छा रहे जल, थल, पवनमें
फैल जाती ज्यों सुरभि
इस ओरसे उस ओर बनमें!

बन-बन फिरी थी मैं बहुत
बहु विधि करी आराधना।
आज अन्तिम सान्ध्य-बेला,
पूर्ण है सब साधना।

साधना चिर जन्मकी यह
रच रही नव-गीत सुन्दर
एक ही परितोष अब
होगी विजय लघु-लघु हृदयपर?

—तारा पाण्डे।

नारी, प्रेम और काव्य

श्री प्रमागचन्द्र शर्मा

दो ढाई हजार वर्ष पूर्वके अधकचरे, अवैज्ञानिक इतिहासके मार्गसे होकर यदि कोई विश्वके इन आदि सभ्य देशों—ग्रीस, रोम, ईजिप्ट, सीरिया, बेबिलोनके तीर्थोंमें मनोयोगपूर्वक विहार करे, तो उसे महाविस्मयकारी मनोरञ्जक अनुभव होंगे। वह देख सकेगा कि ग्रीसकी राजधानीमें सरे बाजार एक स्तूप बना हुआ है, जिसपर अङ्कित है:—

"स्फूर्तिको, स्वर्गको, सूर्यको, चन्द्रको, वसुन्धराको, निशाको और वर्तमान तथा भविष्यमें होनेवाले सबके जनक—'काम' को, जो प्रेमका देवता है!"

—'वूमन एण्ड लव' पृष्ठ ३३२

वसुधाके वे आदिम पुरुष असभ्य थे, जङ्गली थे। पाषाण-पर सोते थे, वल्कल पहनते थे, जङ्गलके फल-फूल खाते थे, स्त्री-पुरुष गर्मीमें खुले मैदानमें और जाड़े या आतपमें अंधेरी खोहमें परस्पर सटकर रक्त-मांसकी उष्णतासे उत्तप्त रात-दिन बसर किया करते थे! ज्ञान या विज्ञान उस समय नहीं था। मात्र सहज ज्ञानका थोड़ा आभास वे कर सकते थे। इसीसे वे जान सके कि हममें और हमारी साथिनमें समान रूपसे साथ-साथ रहनेकी जो प्रबलतम चाह है, वह हमारी सावधान धरोहर नहीं है; वह किसीके द्वारा बाहरसे हमपर बरसायी जा रही है! हमें उसके प्रति नमन करना चाहिए। इसी भावके चलते मानव-विकासने दो-एक सीढ़ी ऊपर चढ़ते ही आभास पाया कि उपर्युक्त स्तूपकी सृष्टि साकार हुई। दुनियाका प्रत्येक धर्म प्रेमका प्रचारक है, इसका कारण यही कि प्रेमसे जुदा धर्म नामकी कोई अन्य वस्तु मूलमें अस्तित्व-वान् है ही नहीं। अर्थात् प्रेम ही धर्म है। विश्व-सृष्टिके आदि बीज आदम और इवाकी साकारता धार्मिक है या प्रेममय, जब इस विभाजनकी ओर ध्यान खींचा जाता है, तो सहसा चुप्पी छा जाती है। किन्तु अधिक विलम्ब नहीं होता कि नग्नता स्पष्ट होकर बोल पड़ती है—"तुम उसीकी सन्तान हो, यह कैसा प्रश्न?" तब, लगता है कि धर्म या प्रेमके लिए, यह बात पीछे; इस प्रथम दम्पतिका विश्वमें आविर्भाव हुआ, हमारी 'उत्पत्ति' के लिए। हम देखते हैं कि अब लोग उस स्तूपको न पूजकर सीधे प्रेमके देवता; 'काम' की पूजा करते हैं। सीमित सृष्टिका अधिकाधिक विस्तार और फलतः दैहिक-मानसिक प्रवृत्तियोंसे उत्पन्न हुई मोह, ममता, स्नेह, विश्वास, सौहार्द आदिकी बढ़ती हुई चुम्बक शक्तिसे उन्मत्त, मस्त ही वे प्रेमके उत्पत्तिकर्ता स्वरूपको अपना सबसे बड़ा कल्याणकर्ता मानते हैं और उसीकी पूजाका बाजार गर्म दीख पड़ता है! प्रेमका देवता 'काम' अब उत्पादकताका देवता बन गया, उर्बरता-का देवता बन गया। जो कि सर्वथा यौन-सम्बन्धपर स्थित थी! उस समय तक निरे बनमानुस बहुत कुछ मनुष्य हो चुके थे। खेती-बारी, ढोर-पशु उनकी सम्पत्ति बन गये थे। अब वे व्यवस्थासे थे। उन्होंने देखा कि बैल, सांड़, मेंढ़े ये सब उर्बरता तथा उत्पादनकी अद्भुत शक्तिसे वरद हैं। इनसे बढ़कर अपने वाञ्छित देवताकी पूजाका प्रतीक अन्यत्र दुर्लभ होगा। प्रेमके देवता कामको वासना, नग्नता, अनाचारतामें बदलनेवाले ये पशु, देवताकी भांति सम्मान सहित पूजे जाने लगे। वासना-त्मक प्रेमके द्वारा उत्पन्न हुआ यह उर्बरताका भाव प्राचीन ईजिप्टके धर्म-सिद्धान्तका प्रमुख तत्त्व बन गया। प्राचीन ग्रीस और रोमके धर्म-ग्रन्थ भी इसी विचारसे भरे हुए हैं।

लेकिन यह ढर्रा अधिक नहीं चल सका। क्योंकि पैदा होनेके दिनसे अभी भी पशु मानव अज्ञात देवताके प्रभाव और आतङ्कसे भयभीत था। वह देवताकी सत्ताको ठुकराने-की हिम्मत नहीं कर सका। उसने देखा कि पशु चाहे कितना शक्तिशाली क्यों न हो, 'मानव' की आराध्य मूर्ति नहीं हो सकता। अब लोगोंने आकाशमें ही अपने काम देवताका प्रतिरूप खोज लिया। ऐसा करनेके उनके कारण थे:—(१) मानवके विकारने पशु-आदर्शकी प्रेरणा पायी, तो वह उद्दण्ड, उच्छृङ्खल, अमर्यादित हो गया। चरित्रहीनता और दुराचार ही दुराचार छा गया मानवतापर! (२) मनुष्यका अपूर्णत्व और उसकी दिव्य शक्तिके प्रति ललक, (३) पशुको देव माननेपर कहीं वास्तव देवताका कोप उनपर

न आ पड़े आदि-आदि विचार। फिरसे ये सारेके सारे देश उद्विग्न हो उठे कि मनुष्यकी उर्वरता या उत्पादक शक्तिकी चाहनाके लिए बैल, भैंसे या अन्य पशु क्यों चाहिए? और भी देखिये कि घर-घर लोग चांद, तारे, सूरजको अपनी वाञ्छाका पूरक मानने लगे; स्फूर्ति, प्रकाश और उर्वरताका खजाना लोगोंको इन नभो देवताओंके समीप मिल गया! सीरियामें सूर्य-देवके लिए 'अपोलो' की पूजा शुरू हुई। फ्रीगियामें 'अडोनिस' पूजा जाने लगा, ग्रीसमें 'डिओनिसस' सूर्य-देव बना। ग्रीक लोग अफ्रीडाइटको प्रेमकी देवी मानकर पूजने लगे और केरेसको उर्वरताकी जननी समझकर। देखा गया कि तत्कालीन पशु-मानवने 'प्रेम, धर्म और उत्पत्ति' को अपनी बुद्धिके बूते इस तरह व्यवस्थित कर लिया।

गति, सृष्टिका अविराम चिह्न है। वही स्रष्टाकी भी अनिवार्य आवश्यकता है। विश्व-विकास या कि व्यक्ति-विकासकी, गति ही पहली शर्त है। जिस तरह जगत्की धर्मगत धारणायें बदलती गयीं, उसी तरह जीवनके तौर-तरीके भी परिवर्तित होते गये। किन्तु उर्वरताको धर्ममें प्रमुख स्थान देनेवाले नैतिकताके आचार्य अब अधःपातकी ओर और भी आगे बढ़े। यह सत्य है कि पशु प्रवृत्तिसे चलता है और मनुष्य बुद्धिसे। दुर्भाग्य था कि यहां मानव भी वृत्ति ही को प्रमुखता देनेमें व्यस्त था। वह भी धर्मके नामपर। अब इतिहासके सहारे यहां तक आकर हम क्या देखते हैं कि पाशविक उपचार होनेसे मानव-पशु और उद्दण्ड हुआ कि उसने अपने-आपमें सवाल किया--"जब उर्वरता, उत्पादकता हमारा देव है, तो उसे नभके देवमें, चांद-सूरजमें या कि ढोर-पशुमें ढूंढ़नेकी क्या जरूरत?" तब 'फेलस कल्ट' का आविर्भाव हुआ। एकदम लिङ्ग-पूजा शुरू हुई! ईजिप्ट, ग्रीस, रोमन-साम्राज्य, सीरिया और धीरे-धीरे सारी दुनियामें यह प्रथा फैल गयी। हर घरके सामने लैङ्गिक चिह्न लकड़ीपर खोदकर गाड़ा गया। हर खेतके अन्तिम छोरपर ऐसे ही चिह्नके स्तूप सीमा-विभाजनके लिए काममें लाये जाने लगे। जब धार्मिक मत-विश्वास बदलते हैं, तो सामाजिक रीति-रिवाजमें भी हेर-फेर हो जाता है। देखा गया कि नैतिक दृष्टिकोणके इस पाशविक समाधानमेंसे धर्मकी कराह सुनाई पड़ने लगी, और तब ईसा मसीहका जन्म हुआ। इन धार्मिक अनाचारों और ढोंग-पाखण्डोंकी फजीहत होने लगी। "ईश्वर और पड़ोसीके प्रति सच्चा और पवित्र प्रेम" का सन्देश सुन पड़ा। किन्तु कुसंस्कारोंके ऐसे घटाटोपमें ईसाका आदेश सर्वमान्य होना कदापि सम्भव न था। अतः अमूर्त प्रेम, विशुद्ध प्रेमके प्रचारकोंने निर्बुद्धि मानव-समाजसे कहा कि विश्वास, श्रद्धा इस नये तत्वको समझनेके लिए जरूरी हैं। 'प्रेम' के साथ 'विश्वास' का संयोग हुआ। भगवान् ईसा समस्त विश्वको सुख, शान्ति और स्नेहमें लबालब देखना चाहते थे। परन्तु जिस मानवताकी मामूली बात प्रेमसे समझाना आज अच्छे महान् नेताके लिए सम्भव नहीं, वैसी ही, बल्कि उससे बदतर मानवताको उसकी पशु-प्रवृत्तियोंके खिलाफ समझा ले जाना आसान बात नहीं थी। हां, ईसाको अपने प्राण देने पड़ते हैं। और ईसा मरे कि उनके अनुयायियोंने सत्य-सूत्र, सिद्धान्त-विचारको साम्प्रदायिक धर्मके घेरेमें डाला। पिछले दिनों लिङ्ग-पूजा तथा पशु-पूजाको नारी-जातिके लिए चरित्र-हीनता मानकर मिटाया गया था कि अब कैथलिक मतके प्रचारक पादरियों और ननको शारीरिक निवृत्ति और पवित्रता रखनेके लिए इतना दूर तक बढ़ाया गया कि हर नन एक पुरुषके लिए अप्राप्य—किन्तु रातमें स्वप्न-स्थितिमें स्वयं ईसा मसीहके साथ केलि-विहार करे, यह धर्म माना जाने लगा। अभी तक मनुष्य पशु अधिक थे; खुले दुराचार करते थे। अब मनुष्य विचारवान्, विवेकी हो रहे थे कि दबावके कारण उनकी देह, उनके मन प्रवृत्तियोंके अस्वाभाविक निरोधमें झुलस गये। अनाचार और दुश्चरित्रताकी धरतीपर चरित्र और नैतिकताको इतना ताना गया कि यौन-सम्बन्धके गम्भीर मानी ही को जीवनसे उड़ानेके असफल प्रयत्नको धर्मका आदेश मान लिया गया। परन्तु अन्ततः स्त्री-पुरुष-सामीप्यको अनिवार्यता मान्य हुई। लेकिन धर्म और कथित सदाचारिताने गुप्त पापकी ओर लोगोंको प्रेरित किया कि प्रोटेस्टेण्ट धर्म चला, प्यूरिटन मजहब चला, मानवोचित विकार-स्पन्दन और मानव-प्रवृत्तियोंकी इन सुधारकोंने अवहेलना नहीं की। प्रोटेस्टेण्ट नन ब्याह कर सकती थी, किन्तु वह ईसाकी ऐसी दासी नहीं हो सकती। इन सड़ी-सड़ी बातों ही को लेकर खूनकी नदियां बह गयीं! शताब्दियोंपर शताब्दियां बीतती जा रही हैं; लोग कहते हैं—इतिहास स्वयं-

को दुहराता है, आगामी कलका मानव ज्ञानके अन्तरिक्षमेंसे कह रहा है:—

"अब वह नहीं होगा,
वैसा नहीं होगा
जो होता रहा है !"

(२)

अब इस नवीन युगमें लोग विचारने लगे हैं और उनका विश्वास कुछ इस प्रकारका हो चला है कि स्त्री या पुरुष केवल इतने ही में सीमित नहीं है, जितना वह बाहरसे दीख-भर पड़ता है। आंखोंसे ओझल भी व्यक्तिका अस्तित्व है। जिसे आध्यात्मिक व्यक्तित्व, दिव्य रूप कह लीजिये। स्त्री-पुरुष सम्बन्धी उपदेशात्मक, निर्णयकारी चिन्तन इसी स्थूल-रूप-दर्शनकी आधार-भूमिपर शताब्दियोंसे होता रहा है। इसीलिए आज रूपके भौतिक और आध्यात्मिक आवरणमें हमारा दृष्टिकोण उलझकर रह गया है। मनोवैज्ञानिक, मनोविकलन-की हर बारीक कार्य-पद्धति और गति-व्यवस्थाको अपने निश्चय और अपने निर्णयोंकी आधार-भूमि मानता है। इसीलिए विवेकहीन कट्टरताके बजाय आज समझदार लोग आस्था-हीनताका अपराध ओढ़ लेना युगके प्रति ईमानदारी मानते हैं। एक दिन गोर्की और चेखव समुद्रतटपर घूम रहे थे। वे टाल्स्टायके पास पहुंचे, जोकि वहीं नजदीक समुद्रके किनारे प्रार्थनामें सिर झुकाये, दाढ़ीसे रेत बुहारते तन्मय-से बैठे थे। वे दोनों उनके नजदीक सटकर बैठ गये और नारियोंके विषयमें बातचीत करने लगे। बहुत देर तक टाल्स्टाय चुप, खामोश सब कुछ सुनते रहे। तब अचानक वह बोले:—और मैं नारीके सम्बन्धमें तथ्यपूर्ण सत्य केवल उसी समय कहने योग्य हो सकूंगा, जब मेरा एक पैर कब्रमें पहुंच चुकेगा। [लेखक—गोर्की : रेमीनिसेन्सेज आव टाल्स्टाय, पेज ६९]

इसका मतलब यह कि अब नारी पाशविक प्रवृत्तियोंकी तृप्तिदाता-मात्र न रहकर कुछ सम्मान, पूजाका भाव अपनी ओर खींच सकी। रोमान्सवादके परम आचार्य महाकवि दान्तेने बारहवीं शताब्दीमें नारीके श्रेयस् रूपके अन्तरालमें युग-युगान्तरसे छिपे प्रेमको और साथ ही शक्तिरूपा मांके रूपको देख लिया था। उसने अपनी दिव्यरूप प्रेयसि बीट्रिसको जीवनमें केवल दो बार देखकर जिस महाकाव्यकी रचना की, उसने अपने भावी युगकी रूपरेखा उन्हीं दिनों बहुत सुन्दर ढङ्गसे तैयार कर दी थी। प्रेमसे कविताका सम्बन्ध आदि-कालसे क्यों चला आ रहा है, इसकी एक लम्बी, गहरी, किन्तु विचारपूर्ण कहानी है। ऊपर बताया जा चुका कि प्रेम-तत्त्वमें परिवर्तन होता गया; आदिम युगसे क्रिश्चियन धर्मके प्रचलन तककी कहानी लिखी जा चुकी। अब लोगोंने जान लिया है कि कलका प्रेम मानवताका पोषक, प्रेरक और पूजक प्रेम होगा। उसमें धर्म, रूढ़ि, सामाजिक बन्धन किसीका भी नवयुगका मानव नहीं मानेगा। यह सत्य है कि काव्य और प्रेमकी समानताका लेखा पेश करनेके पूर्व काव्यकला, जीवनकी आदतें और भिन्न-भिन्न युगोंके पारस्परिक सम्बन्धोंका सावधान अध्ययन आवश्यक हो जाता है। ईसाका धर्म-प्रचार प्रेम ही था और उसके लिए उन्होंने अपने प्राणकी आहुति दी थी, अतः वह इतना फैला कि लोगोंको यह स्वीकार करना पड़ा कि—"प्रेम करो, घृणा नहीं; सबके लिए भलाई करो; किसीको हानि न पहुंचाओ।" ये ही विचार वास्तविक धार्मिकताके सूत्र बने। शायद प्रेमके किसी ऐसे ही भावका समस्त विश्वके काव्य द्वारा प्रसार हुआ होगा! कलाकारोंने निर्विवाद मान लिया कि प्रेम, धर्म तो है ही। किन्तु यदि वह इच्छा भी है, वासना भी है, तो अवरोधोंमें बढ़ेगी, रुकावटोंसे लहरायेगी। इस इच्छाको कभी तृप्त नहीं होने देना चाहिए। इसको किसी भी कीमतपर सञ्चित रखना चाहिए। ऐसा न हो कि आनन्द-उपभोगकी आंधीमें यह रचनात्मक प्रवृत्ति बुझ जाय! इस विचारने दो रूप लिये; एक तो सङ्घर्षप्रियता जागी कि स्वेच्छाकी अबाध अभिव्यक्तिके सहारे साहित्य रचा जाने लगा; दूसरे, लोगोंने धर्मकी परम्परा, पाखण्ड, रूढ़ि, साम्प्रदायिक कटुताके प्रति घृणासे तेवरी चढ़ा ली। इस दिन प्रेम, श्रद्धाके बीच विश्वास, आशा, मुक्तिकी क्षीण झलकका समावेश हुआ। अब प्राचीन रोमका साहित्य देखें।

वीर पुरुषोंकी गाथा और उनका प्रेमालाप रोमके साहित्यकी प्रथम प्रेम-काव्य-सृष्टि थी। दूसरी तरफ उस समयके एक बड़े कवि उगेविडकी रचनाओंने नैतिक आदर्शोंके अधःपातका वह चित्रण किया है कि उसका यहां वर्णन करना भी अभद्रतासे कम कुछ न होगा। यद्यपि उसने प्रेमका वर्णन सुन्दर शब्दोंमें किया है और निस्सन्देह वासनात्मक प्रेमके आनन्द-उपभोगका केलि-विहार और भी

मोहकताके साथ चित्रित किया है, तो भी इतनेसे ही कविको सन्तोष नहीं हुआ। उसने प्रेमकी हर गतिविधिको रोचक रूप दिया। इस प्रेम-काव्यकी गीत्यात्मक अभिव्यञ्जनाने पढ़नेवालोंको प्रेमकी कलाकी ओर रुझान दी, रुचि दी। अच्छे-बुरेका प्रश्न अभी महत्त्व नहीं पा सका था। अल्पकालमें देखा गया कि इस तरह वासनाके गीत-गायक कवि, लेखकोंकी बाढ़ आ गयी! यों, प्रेम-गीत-काव्यकी श्रेष्ठ सतह समूचे विश्वमें सबसे पहले भारतवर्षमें थी। इसे पाश्चात्य विचारक भी मान गये हैं। परन्तु ग्रीस, रोम आदि देशोंसे चर्चा शुरू करनेका एक ही उद्देश्य होता है कि वैज्ञानिक इतिहासकी व्यवस्था वहां हमें सिलसिलेवार प्राप्य है। विश्व-विख्यात शरीर-शास्त्रीय जर्मन आचार्य बर्नहर्ड ए० बोएर एम० डी० की राय है कि "अगर हम तुलनात्मक दृष्टिसे बढ़ें, तो निश्चितरूपसे काव्य-कलाके लिए सर्वप्रथम स्थान हमें प्राचीन हिन्दुस्तान ही को देना पड़ेगा।" रिचर्ड शिमितने प्रेमकी भारतीय भावधाराकी प्रशंसामें इतना भावुकतापूर्ण लिखा है कि पढ़ते ही बनता है—"भारतीय सूर्यकी धधकती गर्मी, भारतीय फल-फूलोंकी मुग्धकारिता, चांदनी रातमें कमलिनीके खिले फूलोंकी महक!! भारतवर्षमें, सिद्धान्त और व्यवहार दोनोंमें प्रेमने एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर रखा है, जिसे हम पाश्चात्य देशवासी बमुश्किल महसूस तक नहीं कर पाते।"

समस्त विश्वका काव्य गीत्यात्मकताके अरूप साम्राज्यमेंसे लहराता हुआ कठोरतम वासनाकी चट्टानोंसे टकराया है। वासनात्मक प्रेमकी एक भी बारीकी इससे बच नहीं पाती। आसक्तिकी प्रथम दृष्टिसे लगाकर अधरके प्रथम चुम्बन तक दो देहोंका एकप्राण हो जाना काव्यकी महान् सत्यता है। इसीलिए कवि अपने गीतोंमें कभी मनुष्यके प्रति मनुष्य-प्रेमका भाव गुंजाता है, कभी प्रभुके प्रति मनुष्य-प्रेमकी ललक व्यक्त करता है, कभी नैराश्य-प्रेमकी बात कहता है और कभी प्रेमकी उस उत्तेजकताके गीत गाता है, जो मानव-हृदयमें ज्वाला फूंक देती है! ईसाके आविर्भावके प्रारम्भमें रोमन साम्राज्यका काव्य जिस प्रकार अपने यहांके नैतिक अधःपातका ज्योंका त्यों प्रतिबिम्ब फेंक रहा था, उस समय प्राचीन ग्रीकके साहित्यमें विचरण करके लोग देख रहे थे कि वहांका कवि-समाज प्रेमको, उसके गीतोंको मर्त्यके लिए अमरताका सन्देश देने तथा मानवके वीरोचित रूपको व्यक्त करनेमें जुटा हुआ था। ग्रीक काव्यका जनक 'होमर' हमारे इस कथनका पुष्टिकर्ता है। प्राचीन ग्रीसके दार्शनिकोंने प्रेमकी स्वाभाविकताको प्रमुख वैचारिक एकाग्रता दे रखी थी। इसका कारण प्लेटोकी वह प्रेरणा थी, जो इतिहासमें 'प्लेटोनिक लव' (अपार्थिवका प्रेम) के ही नामसे चिरन्तन हो गयी है। किन्तु उच्चवर्गीय ग्रीसके कुछ उद्दण्ड बौद्धिक कवियोंने प्रेमकी तरह पतनके गीत भी खूब जमकर गाये हैं। यह विचार निर्विवाद है कि साहित्य, सभ्यता और संस्कृतिका प्रसार समूची पाश्चात्य भूमिपर सर्वप्रथम इन्हीं देशोंसे हुआ है, अतः यहां मूल विचारधाराके उतार-चढ़ावमें सब बातें आ जाती हैं। ईसाइयत जितनी सबल होती गयी है, उसने अपने प्रभावके अन्तरङ्ग व्यक्ति-जीवन, विचार-जीवनको बहुत बदला है। विषय-भेद हो जानेके भयसे सावधान रहते हुए मैं इस ओर केवल सङ्केत भर कर देता हूं कि इन शताब्दियोंमें शासक, सुधारक, कलाकार, कवि, साहित्यिक कोई ऐसा नहीं था, जो क्रिश्चियन धर्मकी प्रभुताके सम्मुख नत न हो। धर्मके विरोधी वाल्टेयर, गोर्की, बर्नार्ड शा, रोम्यां रोलां तो बहुत बादकी चीज हैं। ईसाके जन्मकी प्रथम शताब्दीका काव्य, साहित्य और कला धर्मप्रधान विचारधारासे लबालब दीखने लगी। मानव प्रेम प्रभु ही की ओर ठेला गया। मानवके स्वयं अस्तित्वका एकान्त ध्येय ही 'सेवा' घोषित हुआ। मानो मनुष्यका अपना, उसके अपने लिए कुछ शेष बचा ही नहीं। इस दृष्टि-भेदका काव्यपर बड़ा असर पड़ा। वासनाके गीत दबने लगे, दबाये जाने लगे। ईश्वरपर, ईसाइयतपर काव्य-रचनायें चलीं। प्रेम-गीत भी, बीच-बीचमें, अति दुर्बल आर्त्त-स्वरमें कराह उठते थे। इस प्रकारके गीत-गायकोंका एक दल था, जिन्हें 'मिने-सिङ्गर' कहते थे। बारहवीं और तेरहवीं सदीमें जर्मन तरुण प्रेम-गीत-रचयिताओंका यह एक स्कूल था। जर्मन साहित्यमें तो ये गीत-लेखक इतने लोकप्रिय और प्रशंसाके पात्र हुए कि जहां-जहां भी जर्मन भाषाकी पहुंच थी, वहीं इनका काव्य रस-वर्षण कर रहा था। दान्तेने रोमान्सका जो रूप व्यक्त किया था, वही इन गायकोंने भी गाया। प्रेमीके सम्मुख प्रेयसीकी उपस्थितिके सलज्ज, झिझक-भरे, अस्फुट चाहपूर्ण भाव इनकी कवितामें

व्यक्त हुए, जिनका मतलब प्रेयसी या प्रियपात्रको सुदूर रखकर पूजा करना था। इन मिनेसिङ्गर्स लोगोंमें जो सर्व-श्रेष्ठ था, वाल्थर वान डर वोगलविदे, उसने अपना सम्पूर्ण जीवन गान, प्रेम और अपनी प्रेयसीमें तदाकार कर दिया था। उसके बाद युद्धकी शताब्दी आयी। शरीरकी अत्यधिक थकानसे उत्पन्न होनेवाले अनैतिक विकारोंकी बाढ़ शरीर-शास्त्रीय मान्य तथ्य है। अतः नग्न पतनकी हवा फिर बही। संक्षेपमें इतना कि उन दिनों रोगके बाहरी उपचार-स्वरूप इन प्रेम-गीतोंकी रुकावट हुई। फलतः जहां एक तरफ लोग वीर-काव्य रचने लगे, वहां दूसरी तरफ छुपे-छुपे गुप्त अनाचारमें भी साहित्यिक रुचि रुंधती गयी। जर्मी कालिअर अपनी मशहूर पुस्तक 'शार्ट व्हयू आफ दि एम्योरेसिटी एण्ड प्रोफेननेस आफ दि इंगलिश स्टेज' (१६९८ में प्रकाशित) में लिखता है—"ऐसा लगता था कि मानो लोग वासनो-द्दीपक कार्यमें क्रियात्मक हिस्सा लेकर सन्तुष्ट नहीं थे; उन्होंने अन्य लोगोंसे यह चाहा था कि वे निष्क्रिय दर्शककी हैसियतसे ही सही, इस नैतिक अधोमुखतामें साझीदार बनें। वह जरूरत नाटकोंके सुखान्त और हास्यान्तोंसे पूरी की गयी।" लेकिन यह प्रवाह अधिक नहीं चला। अठारहवीं सदीके प्रारम्भ होते ही हम देखते हैं इतिहासमें कि लोग वीर-काव्यके प्रति बेहद घृणा दिखाने लगे। हमारे यहांका राष्ट्रीय काव्य-प्रवाह भी जर्मनीके इस इतिहाससे अपना भाग्य-दर्शन कर सकता है। ग्रीक कवि एना क्रिओनके नामपर एक रचनाशैली चली, जिसके द्वारा कवियोंने घरेलू स्नेह, सुख और आनन्दका वास्तविक गुण-गान किया। चूंकि उन्हीं दिनों फ्रान्स भी नग्न अनाचारितासे बमुश्किल तमाम मुक्ति ले रहा था, अतः यह नया दृष्टिकोण गहरे विस्तारके साथ फैला। इन एने क्रिओण्टिक कविताओंमें प्रेमका वर्णन हुआ; परन्तु दो प्राणोंके सात्विक भावोंके हास्य रुदन उसमें अङ्कित थे। यों, फिर दिव्यप्रेम अपनी प्रखरता लेकर भावना-लोकपर शासक हुआ। इन भले आदमियोंने प्रेमकी निष्क्रिय अस्वस्थता मिटानेकी कसम खाकर जो किया, वह यह कि प्रेमके आनन्द, सुख, उल्लासका नहीं; उसके द्वारा उत्पन्न दुःख, सङ्कट और थोथेपनका काव्यमें राग छेड़ा। इससे विकार-नाश तो नहीं ही हुआ, वरन् सौन्दर्य-भावनाकी पवित्रता, रहस्यात्मकताको गहरी ठेस लगी। कुछ लोग उद्दण्ड नैतिक होनेके बजाय आस्थाहीन पशु बन गये। उन्होंने नारीको आदर्श रूपमें समाजके सामने नहीं रखा; बल्कि पृथ्वीपर अभिशापकी प्रेरक अथवा प्रतीक उसे घोषित किया। शक्ति-रूपा नारी राक्षसी चित्रित की गयी। स्ट्रिण्डबर्गने नारी-रूपका जो चित्रण किया, उसमें प्रेमके हीनतम आचार पेश किये। दो आत्माओंके एक हो जानेकी आदर्श व्यवस्था प्रेमको उसके अपने स्वरूपमें प्रकट नहीं करना चाहा।

परिणाम स्वाभाविक था। इसी मूल विचारका प्रति-बिम्बात्मक प्रभाव यूरोप या अन्य पाश्चात्य देशोंपर जो पड़ा है, वह यह कि जर्मनीमें स्त्री बच्चे पैदा करनेकी मशीन है, इटलीमें बच्चोंकी संख्यामें होड़ाहोड़ीसे वृद्धि करनेवाली नारी पुरस्कृत, प्रशंसित है। पेरिसकी रंगरेलियां कुछ छिपी नहीं। अमेरिकाका विलास जग-जाहिर है। अस्तु; बीसवीं शताब्दीका यह प्रारम्भिक भाग? आज विश्व-साहित्य-रचनाकी क्या क्रम-व्यवस्था है। इतिहाससे अगर जवाब तलब करें, तो समूचा लेख पढ़कर मौजूदा साहित्यकी हालत मिल जाती है। मनोलोककी सतहकी आश्चर्यजनक ऊंचाई जो केवल इन्हीं पचास वर्षोंकी अपनी अद्वितीय देन है, उसको सोचें, तो हर देशके अपने-अपने महान् चिन्तक संलग्न हैं भावी स्वप्नलोकके आह्वानकी भूमिका रचनेमें।

———
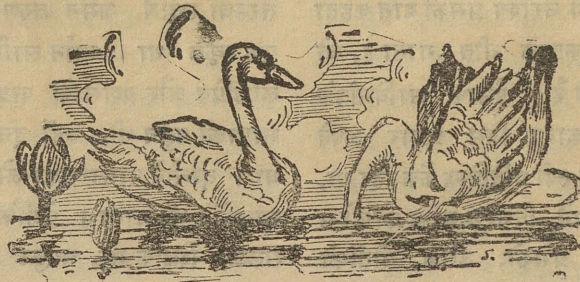
सौर-जगत्‌के परिव्राजक—पुच्छल तारे

श्री व्रजकिशोर वर्मा "श्याम"

सचमुच पुच्छल तारे सौर-जगत्‌के सच्चे परिव्राजक हैं। आकाशमें इनका कोई नियत स्थान नहीं है। ये सदैव चलते रहते हैं। आज अकस्मात् हमारे सूर्यके निकट आ गये, कल न जाने कहां होंगे। आकाशका अनन्त असीम विस्तार इनकी परिधि है। कभी-कभी इनके जीवनमें निरपेक्षित घटनायें होती होंगी। यदि भ्रमण करते-करते किसी बड़े तारेके पास ये आ जाते होंगे, इतने निकट कि उसकी आकर्षण-शक्ति इनपर अपना पूरा प्रभाव डाल सके, तो इनके मार्गमें व्यतिक्रम पड़ जाता होगा, गमनकी दिशामें उलट-फेर हो जाता होगा। इतना ही नहीं, कभी-कभी ये अपनी चिरसम्पादित स्वतन्त्रता भी खो बैठते होंगे। ये उस तारेके चक्रमें पड़ जाते होंगे और इनको उसके चारों ओर घूमना पड़ता होगा। बहुत सम्भव है कि हमारे सौर-चक्रमें इसी प्रकार कई केतु फंस गये हों; पर जो केतु स्वाधीन हैं, यदि उनपर किसी प्रकारके सूक्ष्म प्राणी हों, तो उनको असीम आनन्द मिलता होगा। वे नित्य एक नया जगत् देखते होंगे और साथ ही एक नये जगत्‌के प्राणियोंकी आंखोंको सुख देते होंगे।

प्राचीन समयके लोग ज्योतिष-घटनाओंमें पूर्णसूर्य-ग्रहण और चमकीले पुच्छल ताराओंको नहीं भूल सकते थे और उनकी चर्चा प्राचीनसे प्राचीन ग्रन्थोंमें मिलती है। महाकवि शेक्सपियरने भी लिखा है—"जब भिखमङ्गे मरते हैं, तब पुच्छल तारे नहीं दिखलाई पड़ते, राजाओंकी मृत्युपर आकाश स्वयं जल उठता है!" इस तरह पिछले कई हजार वर्षोंसे पुच्छल ताराओंका आना अशुभ ही माना जाता था और भारी दुर्घटनाओंसे इसका सम्बन्ध समझा जाता था। अब भी संसारके सभी देशोंमें लाखों मनुष्य ऐसे हैं, जिनका विश्वास है कि जब केतु उदय होता है, तो संसारमें कोई-न-कोई दुर्घटना अवश्य होती है। मैं नहीं कह सकता कि फलित ज्योतिषकी इस सम्बन्धमें क्या सम्मति है। परन्तु इस बातकी सचाईकी परीक्षा करनेसे ऐसे लोगोंका विश्वास ठीक नहीं जान पड़ता। सच्ची बात यह है कि प्रतिवर्ष कहीं-न-कहीं कोई-न-कोई दुर्घटना हुआ ही करती है और यदि कोई दुर्घटनाओं और पुच्छल ताराओंमें नाता जोड़ना चाहे, तो ऐसा वह आसानीसे कर सकता है। पुच्छल ताराओंके एकाएक दिखलाई पड़ने—उनकी चमक, उनके आकार और उनके घटने-बढ़नेसे अवश्य ही प्राचीन लोगोंके हृदयमें आनन्दके बदले भयका सञ्चार होता था और इसीलिए वे ऐसे ताराओंका सम्बन्ध दुर्घटनाओंसे भी जोड़ा करते थे। पर अब वह समय गया, जब दस-बीस वर्षमें कहीं एक केतु देख पड़ जाया करता था। अब तो यन्त्रोंकी सहायतासे प्रतिवर्ष बहुत-से केतु देख पड़ते हैं। इनके प्रभावसे क्या-क्या घटनायें होती हैं, यह कहना कठिन है।

पुच्छल तारे, जैसा कि उनके नामसे ही स्पष्ट है, पूंछ समेत दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु छोटे पुच्छल तारे, विशेष करके जो इतने छोटे हैं कि केवल दूरदर्शक यन्त्रसे ही देखे जा सकते हैं, कई एक बिना पूंछके भी होते हैं। साधारणतः पुच्छल ताराओंके तीन भाग होते हैं—(१) नाभि, (२) शिखा, (३) पुच्छ। नाभि छोटी और अत्यन्त चमकीली होती है और वह सिरके बीचमें रहती है। नाभि तारेके समान दिखलाई पड़ती है; परन्तु सब पुच्छल ताराओंमें यह उपस्थित नहीं रहती और किसी-किसीमें दो या अधिक नाभियां भी होती हैं। सभी पुच्छल ताराओंमें सिर होता है। यह छोटी-सी निहारिकाके समान होता है और साधारणतः गोल होता है। बहुत-से पुच्छल ताराओंमें पहले नाभि नहीं रहती, सूर्यके निकट आ जानेपर ही यह बनती है। परन्तु बहुत ऐसे भी होते हैं, जिनमें सूर्यसे दूर रहनेपर भी नाभि दिखलाई पड़ती है। पूंछ झाड़ूके समान सूर्यके विपरीत दिशामें निकली हुई दिखलाई पड़ती है और प्रायः सभी चमकीले पुच्छल ताराओंमें यह रहती है।

बाज पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि वे दिनमें भी दिखलाई पड़ते हैं। १८८२ का पुच्छल तारा एक समय इतना चमकीला हो गया था कि हाथ फैलाकर सूर्यको ओटमें कर देनेपर, यह दिनमें ही सूर्यसे थोड़ी दूरपर, दिख-

लाई पड़ता था। और बाज पुच्छल तारे तो इतने चमकीले होते हैं कि सूर्य और चन्द्रमाके बाद उन्हींका नम्बर आता है और इतने बड़े होते हैं कि इनकी पूंछ क्षितिजसे लेकर खस्वस्तिक (सिरके ऊपरके बिन्दु) तक पहुंच जाती है। परन्तु जितने पुच्छल ताराओंका अब तक पता चला है, उनमें अधिकांश केवल दूरदर्शकसे ही देखे जा सकते हैं और वे बहुत छोटे और मन्द होते हैं। १९२९ तक लगभग ९०० पुच्छल तारे देखे गये थे। इनमेंसे ४०० तो दूरदर्शकके आविष्कारके पहले देखे गये थे। शेष सोलहवीं शताब्दीके बाद देखे गये हैं। अब बहुत-से लोग पुच्छल ताराओंकी खोज नियमानुसार किया करते हैं और १८८० के बादसे प्रतिवर्ष ५ पुच्छल ताराओंके देखे जानेका पता पड़ता है।

पुच्छल ताराओंकी पहचान करना सहज नहीं है। इस प्रश्नका उत्तर कि अमुक पुच्छल तारा वही है या नहीं, जो पहले अमुक समयपर देखा गया था, उस पुच्छल तारेकी आकृतिसे नहीं दिया जा सकता। क्योंकि यह आकृति बदलती रहती है। पहचान कक्षाओंसे की जाती है। यदि दो पुच्छल तारे एक ही कक्षामें दिखाई पड़ें और उनके दिखलाई पड़नेके समयमें अन्तर लगभग उतना ही हो जितना गणनासे निकलता है, तो समझ लिया जाता है कि ये दोनों पुच्छल तारे एक ही हैं। यही कारण है, जिससे कि कक्षाओंकी गणना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।

कक्षाओंकी गणना करनेसे पुच्छल ताराओंकी दूरीका भी पता चल जाता है। और तब उनके प्रत्यक्ष आकारको नापकर यह भी बतलाया जा सकता है कि पुच्छल तारा कितने मील लम्बा-चौड़ा है। कोई-कोई पुच्छल तारे इतने बड़े होते हैं कि हमारे आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहता। उनका सिर ही पृथ्वीकी अपेक्षा व्यासमें साधारणतः चौगुनेसे लेकर बीस गुने तक होता है। इस तरह जिस सिरका व्यास पृथ्वीके व्यासका २० गुना होगा, उसका आयतन ८००० गुना होगा। १८११ में दिखाई पड़नेवाले पुच्छल तारेका सिर सूर्यसे भी बहुत बड़ा था। यही दशा उनकी पूंछकी भी है। चमकीले केतुओंकी पूंछ चार-पांच करोड़ मील तक लम्बी होती है। सूर्यके पाससे यदि ऐसा केतु पूंछ फैलावे, तो पृथ्वी तक पहुंच जाय!

पुच्छल ताराओंमें एक विचित्र बात यह है कि उनका विस्तार घटा-बढ़ा करता है। सूर्यके पास आनेपर पूंछ निकल आनेकी बात तो मालूम ही है; परन्तु उनमें केवल इतना ही अन्तर नहीं पड़ता। उनके सिरकी नाप भी घटा-बढ़ा करती है। पहले सिर छोटा रहता है। सूर्यके निकट आनेपर यह बढ़ने लगता है; परन्तु अत्यन्त निकट पहुंचनेपर फिर घट जाता है। कुछ ज्योतिषियोंका ख्याल था कि सिर वस्तुतः घटता-बढ़ता नहीं, भिन्न-भिन्न दिशाओंसे प्रकाश पड़नेपर ऐसा जान पड़ता है; परन्तु यह बात सर्वमान्य नहीं हुई।

सिरके घटने-बढ़नेका दृष्टान्त हैली केतुसे भी मिल जाता है। १९०९ के सितम्बरमें इसके सिरका व्यास पृथ्वीके व्यासके दूनेसे कम था; परन्तु तीन महीनेमें यह फलकर तीन गुना हो गया। सूर्यके निकटतम दूरीपर पहुंचते-पहुंचते यह सिकुड़कर आधा हो गया; परन्तु फिर जून १९१० में यह पहलेसे भी बड़ा पृथ्वीके हिसाबसे पूरा ४० गुना बड़ा हो गया। १९११ के अप्रैल तक यह फिर पृथ्वीका चौगुना ही रह गया।

कोई-कोई पुच्छल तारे बिलकुल अनियमित रूपसे घटते-बढ़ते दिखाई पड़ते हैं। होल्म केतुका सिर १८९२ ई० के नवम्बरमें पृथ्वीका २५ गुना बड़ा था। एक महीनेमें यह इसका दूना हो गया, तब यह इतना धुंधला हो गया कि बड़े-बड़े दूरदर्शकोंमें भी अदृश्य हो गया। जनवरीमें यह फिर चमक उठा। चमकीला तो खूब हो गया; परन्तु यह पृथ्वीका चौगुना ही रह गया। धीरे-धीरे यह पृथ्वीका ४० गुना हो गया और तब फिर लुप्त हो गया। इन विचित्र घटनाओंका भेद अभी तक भी नहीं खुल सका है।

यद्यपि पुच्छल तारे इतने बड़े होते हैं, तो भी उनका वजन बहुत कम होता है। कई एक पुच्छल तारे पृथ्वी और अन्य ग्रहोंके बहुत पाससे निकल गये हैं—दो-तीन बार तो निश्चय ही पृथ्वी उनकी पूंछमें पड़ गयी है—परन्तु तो भी वे पृथ्वी या उन ग्रहोंको अपने निश्चित मार्गसे जरा भी विचलित नहीं कर सके। अनुमान किया गया है कि बड़े पुच्छल ताराओंका भी वजन पृथ्वीके वजनके $\frac{१}{१०,००,०००}$ वें भागसे भी कम होगा। परन्तु ठीक-ठीक उनका वजन कितना है, इसका पता लगानेका कोई उपाय अभी तक नहीं निकाला जा सका है।

वजन कम होनेकी बातसे यह न समझ लेना चाहिए कि पुच्छल तारे ४-६ मनके होते हैं। यदि पृथ्वीके दस लाख भाग

करनेके बदले इसके दस खरब भाग भी कर दिये जायं, और पुच्छल तारा ऐसे एक भागके बराबर हो, तो भी वह डेढ़ लाख मनका होगा !

कम वजन और अधिक विस्तारके कारण पुच्छल तारा-ओंका घनत्व प्रायः शून्यके बराबर होता है। श्वाट्स शिल्डका अनुमान है कि हैली केतुके २ हजार घनमीलमें उतना द्रव्य भी न होगा, जितना साधारण वायुके एक घन-इञ्चमें होता है ! घनत्वके अत्यन्त न्यून होनेका समर्थन सूर्यबिम्बके सामने उनके आ जानेपर भी होता है। १८८२ में एक पुच्छल तारा सूर्यके पास दिखलाई पड़ा। वह सोनेके समान चमकते हुए सूर्य-बिम्बके छोरके निकटको चांदीके समान श्वेत प्रकाशसे चमक रहा था और धीरे-धीरे उस खौलते हुए बिम्बके समीप खिंचा जा रहा था। परन्तु ज्योंही वह सूर्यबिम्बसे छू गया, त्योंही एकाएक अदृश्य हो गया। इतना शीघ्र वह मिट गया कि दर्शकोंको विश्वास हो गया कि अवश्य वह सूर्यके पीछे चला गया; परन्तु पीछे इसकी कक्षाकी गणना करनेपर जरा भी शक नहीं रह गया कि इस पुच्छल तारेके शून्य घनत्वके कारण ही ऐसा हुआ।

नवीन केतुके दिखाई पड़नेपर ज्योतिषियोंकी चिन्ता।

पुच्छल ताराओंके विषयमें हमारा ज्ञान फोटोग्राफीके कारण बहुत बढ़ गया है। इसके द्वारा ऐसे ब्योरे दिखाई पड़ते हैं, जो और किसी तरह दिखलाई न पड़ते। फोटोग्राफी-के आविष्कारके बादसे कई बार चेष्टा की गयी; परन्तु पहला फोटोग्राफ १८५८ में बन सका। बात यह थी कि पहले प्लेट बहुत मन्द होते थे और तीन-चार घण्टेके प्रकाश-दर्शनमें भी उनपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ता था। परन्तु अब उनका फोटो लेना सरल हो गया है।

इस बातसे कि केतुओंकी पूंछ सूर्यसे विपरीत दिशामें रहती है, पता चलता है कि सूर्य और इन पूंछोंमें घना सम्बन्ध है। सूर्य और पूंछके द्रव्यमें आकर्षणके बदले प्रतिसारण (Repulsion) होता होगा, जिससे पूंछ खिंचनेके बदले पीछे हट जाती है। परन्तु कुल मिलकर पुच्छल तारेपर प्रायः उतना ही आकर्षण पड़ता होगा, जितना कि इस प्रतिसारणके न रहनेपर पड़ता; क्योंकि केतु आखिर आकर्षण-सिद्धान्तानुसार ही चलता पाया जाता है। ओल्बर्सका कहना था कि यह प्रति-सारण विद्युतीय है। इस सिद्धान्तकी ब्योरेवार स्थापना रूसके एक वैज्ञानिकने की थी, जिससे यह बात भी समझमें आ जाती थी कि क्यों बहुत-से केतुओंके तीन पृथक्-पृथक् पूंछें होती हैं।

परन्तु अब वैज्ञानिकोंका विश्वास है कि प्रकाशके दबावसे ही यह प्रतिसारण उत्पन्न होता है। किसी कारणसे, जो अभी तक अच्छी तरह समझा नहीं गया है, केतुसे बहुत करीब, गर्दकी तरह पदार्थ निकला करता होगा। सूर्यके प्रकाशके दबावमें पड़कर इसके कण सूर्यकी विपरीत दिशामें लौट पड़ते होंगे, ठीक उसी तरह, जैसे फव्वारेमें पानीके कण पृथ्वीके आकर्षणके कारण नीचे गिर पड़ते हैं।

प्रकाशका दबाव साधारण नापके कणोंपर बहुत कम पड़ता है; परन्तु यदि किसी कणका व्यास आधा कर दिया

एक फ्रेञ्च चित्रकारने इसमें एक देवीका चित्र दिखाया है, जो हेलीको कब्रसे अपनी भविष्यवाणीकी पूर्ति देखनेको पुकार रही है। हेलीने एक केतुके सम्बन्धमें, जो अब हेली केतुके नामसे प्रसिद्ध है—कहा था कि कुछ वर्षमें वह फिर लौटेगा और ऐसा ही हुआ।

जाय, तो इसका वजन पहलेका आठवां भाग हो जायगा; परन्तु सतह और इसलिए प्रकाश-भार भी घटकर चौथाई हो जायंगे। इसलिए यद्यपि वजन और प्रकाश-भार दोनों घट गये; परन्तु वजनके हिसाबसे प्रकाश-भार आधा ही घटा। इससे स्पष्ट है कि अत्यन्त सूक्ष्म कणोंपर आकर्षणकी अपेक्षा प्रकाश-भार भी अधिक होता होगा और इसलिए केतुसे निकले कण, यदि वे काफी सूक्ष्म होंगे तो, सूर्यकी ओर न खिंचकर विपरीत दिशामें ही जायंगे। इसका समर्थन फोटोग्राफीसे भी भले प्रकार होता है। पूंछोंमें कहीं-कहीं गांठ-सी पड़ी रहती है या उनमें कभी-कभी अन्य ब्योरे दिखलाई पड़ते हैं। थोड़े-थोड़े समय बाद लिये गये फोटोग्राफोंमें इन ब्योरोंकी स्थितियोंका मिलान करनेसे पता चलता है कि ये सूर्यकी विपरीत दिशामें चलते रहते हैं।

पुच्छल ताराओंसे पूंछके रूपमें जो पदार्थ निकल जाते हैं, वे फिर लौटकर नहीं आते। इसलिए पूंछ धीरे-धीरे छोटी होती जाती होगी। बड़े पुच्छल ताराओंमें ज्वार-भाटाके समान तरङ्गें उठती होंगी। कमसे कम उनपर वैसी ही शक्ति अवश्य काम करती होगी, जिससे पृथ्वीपर ज्वार-भाटा होता है। सूर्यके अत्यन्त निकट जानेके कारण बड़े पुच्छल ताराओंपर यह शक्ति अत्यन्त भीषण हो जाती होगी और इसीलिए शायद वे टुकड़े-टुकड़े हो जाते होंगे। इस सम्बन्धमें विएला-केतुकी कथा अत्यन्त मनोरञ्जक है।

पहले-पहल विएला नामके एक जर्मनने १८२६ में इसे देखा। गणना करनेसे पता लगा कि यह लगभग ६॥ वर्षमें सूर्यकी एक परिक्रमा करता है। जब वह १८३२ में फिर पृथ्वीके निकट आया, तो एक बड़ा तमाशा हुआ। कुछ लोगोंने गणित करके यह निकाला कि यह पृथ्वीके इतना निकट आ जायगा कि उससे पृथ्वीको टक्कर लग जानेकी सम्भावना होगी। बस, इतना ही जनतामें खलबली पैदा कर देनेके लिए काफी था। लोगोंने समझा कि कयामतका दिन आ गया। कौन कह सकता है कि ज्योतिषियोंकी गणनामें जरा-सी त्रुटि नहीं रह गयी होगी और इसलिए पुच्छल तारे और पृथ्वीमें मुठभेड़ नहीं हो जायगी। लेकिन जब पेरिसकी वेधशालाके अधिष्ठाताने यह सूचना प्रकाशित की कि उससे और पृथ्वीसे कमसे कम २॥ करोड़ कोसका अन्तर होगा, तब जाकर लोगोंको शान्ति हुई। जब यह केतु १८४६ में देखा गया, तो एक विचित्र बात हुई। यह दो टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। दोनों टुकड़े एक-दूसरेसे दूर हट गये। १८५२ में ये दोनों टुकड़े देखे गये, तो इनका पहलेसे आठगुना अन्तर हो गया था। १८५९ और १८६६ में यह बहुत ढूंढ़नेपर भी न मिला। ऐसा प्रतीत होने लगा कि यह किसी कारणसे सौर-चक्रके बाहर हो गया। परन्तु सन् १८७२ में एक और विचित्र बात हुई। इस साल इसको फिर देख पड़ना चाहिए था और पृथ्वीको इसका मार्ग काटकर जाना चाहिए था। केतु तो न देख पड़ा, पर २७ नवम्बरको पृथ्वीने इसका मार्ग काटा—तो आकाशमें आश्चर्यजनक फुलझड़ी छूटी। असंख्य तारे टूटे और कई आगके गोले, जो चन्द्रमाके बराबर प्रतीत होते थे, देख पड़े। ऐसी आतिशबाजी कभी कदापि नहीं देखी गयी होगी। बात यह है कि विएला-केतु टूटते टूटते असंख्य छोटे-छोटे टुकड़ोंमें बंट गया—यहां तक कि वे टुकड़े यन्त्रोंसे भी देखे

जाने योग्य न रहे। पर जब पृथ्वी इनके बीचसे होकर जाती है, तो ये टूटते हुए तारोंके रूपमें देख पड़ते हैं।

इसी आधारपर यह समझा जाता है कि पुच्छल तारे और कुछ नहीं, महज बहुत-से छोटे-बड़े टुकड़ोंके समूह हैं। उनके साथ बहुत-सी गर्द और गैस भी रहती है। जब वे सूर्यसे दूर रहते हैं, तब हमको सूर्यके प्रकाशके उस भागके कारण दिखाई पड़ते हैं, जो उनपरसे लौटकर हमारे पास आता है। जैसे-जैसे वे सूर्यके निकट आते हैं, वैसे-वैसे उनमेंसे गैस और गर्द निकलने लगती हैं और उनमेंसे सूर्यकी रश्मियोंसे निजकी चमक भी उत्पन्न होने लगती है। सूर्यके अधिक पास आनेपर यदि गैस और गर्दकी मात्रा काफी हुई, तो प्रकाश-भारके कारण पूंछ बन जाती है।

वे टुकड़े, जिनसे पुच्छल तारा बना रहता है, कितने बड़े होते होंगे, इसका केवल अनुमान ही भर है, प्रमाण नहीं है। उनमेंसे बड़ेसे बड़े अवश्य कई मनके होंगे और इस पृथ्वीपर जो बड़ी-बड़ी उल्कायें गिरी हैं, उनसे वे कई गुने बड़े होंगे। केतुओंके छोटे कण बारीकसे बारीक गर्दसे भी सूक्ष्म होंगे। औसत व्यास शायद आध इञ्चसे कम न होगा; क्योंकि यदि कम व्यास होता, तो प्रकाश-भारके कारण केतुओंपर सूर्यकी आकर्षण-शक्ति प्रत्यक्ष रूपसे कुछ कम हो जाती।

पुच्छल तारे भी सौर-जगत्के सदस्य हैं, पहले इस बातको लोग नहीं मानते थे। जब तक हैली-केतुके दीर्घ वृत्तमें चलनेका आविष्कार नहीं हुआ था, लोग यही समझते थे कि पुच्छल तारे अनन्त दूरीसे आते हैं और उसी अनन्त आकाशमें सदाके लिए लौट जाते हैं। परन्तु अब थोड़े समय-में परिक्रमा करनेवाले बहुत-से पुच्छल ताराओंका पता लगनेपर लोगोंका यह विश्वास जाता रहा।

पुच्छल ताराओंकी संख्या कई लाख होगी। तीन-चार पुच्छल तारे हर साल देखे जाते हैं, इससे अनुमान किया जाता है कि प्रति वर्ष कमसे कम बीस-पचीस अवश्य ही सूर्यकी परिक्रमा करते-करते अपनी कक्षाके उस विन्दुको पार करते होंगे, जो सूर्यकी निकटतम दूरीपर है। बृहस्पति या अन्य ग्रहके आकर्षणसे कुछका वेग तो इतना बढ़ जाता होगा कि वे सूर्यके आकर्षणसे मुक्त हो जाते होंगे। परन्तु दूसरे नक्षत्रोंसे छुटे हुए पुच्छल ताराओंके सौर-जगत्में आ जानेकी सम्भावना बहुत कम जान पड़ती है।

बहुत-से पुच्छल ताराओंका परिक्रमा-काल कई हजार वर्ष होगा। उनके दुबारा लौट आनेकी प्रतीक्षा कौन कर सकता है?

पुच्छल ताराओंकी बनावट ठीक-ठीक ज्ञात न रहनेसे इस प्रश्नके विषयमें कुछ निश्चित रूपसे कहा नहीं जा सकता, परन्तु यदि पहले बतलाया गया सिद्धान्त ठीक है—जैसा बहुत सम्भव जान पड़ता है—और पुच्छल तारा वस्तुतः दूर-दूरपर बिखरे हुए कई छोटे-छोटे टुकड़ोंसे बना है, तब कोई विशेष भय नहीं है। यदि ये सभी टुकड़े दो-चार सेरके भी होंगे, तो हमारा वायुमण्डल हमको बचा देगा। ऐसे टुकड़े पृथ्वीतलपर पहुंचते-पहुंचते वायुमण्डलमें ही भस्म हो जाते हैं और हमें उल्काके रूपमें दिखलाई पड़ते हैं। परन्तु यदि ये टुकड़े दस-बीस मनके या इससे भी बड़े होंगे, तब तो अवश्य ही खतरा है। पृथ्वीके जिस भागपर वे गिरने लगेंगे, उसका सर्वनाश हो हो जायगा; हां, पृथ्वी चकनाचूर नहीं हो जायेगी।

रह गयी विषैली गैसोंकी बात, उनसे कोई डर नहीं मालूम होता। क्योंकि केतुओंमें इनकी मात्रा काफी नहीं है। शायद वायुमण्डलकी ऊपरी तहोंमें ओषजनकी अधिकताके कारण विषैली गैसें परिवर्तित होकर विष-रहित भी हो जायंगी। जो हो, इतना निश्चय है कि पृथ्वी आधुनिक समयोंमें भी पुच्छल ताराओंकी पूंछमेंसे निकल गयी है और हम लोगोंको गणनाके सिवा और किसी बातसे इसका पता नहीं लगा है। १८६१ के बड़े पुच्छल तारेकी पूंछमेंसे और १९१० के हैली केतुकी पूंछमेंसे भी, पृथ्वी निकल गयी और हम लोगोंको इसका ज्ञान भी नहीं हुआ।

एक पहलू

श्री "रमण"

गुलबियाकी जवानी मेरे मुहल्लेकी चर्चा थी। जहां कहीं देखिये या सुनिये, कुओंपर—सड़कोंपर—दालानोंमें—सभी जगह बातोंके प्रसङ्गमें उसका उल्लेख अनिवार्य था। जब कभी मुहल्लेकी दो-चार औरतें कमरपर घड़े और हाथोंमें रस्सियां लेकर, कुएंपर जुट जातीं—जैसे गुलबिया-का जिक्र बिना किये अजुग हो जाना असम्भव हो जाता। एक कहती—"कितना चमककर चलती है," और दूसरी उसकी ताईद करती—"आंखोंका शील ही धुल गया है।" और इसी बीचमें यदि गुलबिया भी अपनी पुरानी झोंपड़ी-से—जिसपरके खर और फूस प्राय: उड़ चले थे—जिसकी टट्टियां बरसातकी हवाओंसे बिखर गयी थीं—पतली काली साड़ी, नीचे लाल छींटका साया, बदनमें चुस्त जाकेट, आंखोंमें ताजा काजल, दांतोंमें हल्की मिस्सी, एक हाथमें एक-आध लहठी और दूसरेमें आसमानी रङ्गकी दो-तीन चूड़ियां, बालोंको कभी बाकायदा संवारे और कभी कपड़े साफ करनेवाले साबुनसे धोकर खोले—छितराये—पतली कमरपर छोटा-सा घड़ा लिये—बल खाती, आंखोंसे इधर-उधर निहारती—बिना वजह मुस्क-राती और बेजगह ठोकरें खाती—उस कुएंपर आ जाती, तो वे औरतें जल जातीं! सभी झट अपने-अपने घड़े लेकर अपनी राह लग जातीं। गुलबिया भी जैसे उन्हें छेड़ना नहीं चाहती। और कभी-कभी यदि गुलबिया यों ही यह पूछ भी देती कि "गंगिया फूआ, इन दिनों तुम्हें देखती नहीं हूं", तो इसका जवाब उसकी गंगिया फूआ नाक सिकोड़ कर देती, "अरे, गुलाबो! तुम आजकल हम लोगोंको क्यों देखोगी? तुम तो देखोगी..." और यह कहती-कहती गर्दन घुमा लेती। गुलबिया इसका कुछ अर्थ विशेष नहीं समझती। दुसाध जातिकी वह अल्हड़ बालिका, जैसे केवल इतना जान गयी थी कि जवानीका मोह—इस उमरकी ईर्षा, इन्हें बहुत है। और यही कारण था कि वह चुप रह जाना ही अच्छा समझती। मुहल्लेमें उसका साथ देनेवाला और कोई नहीं था, बस थी तो उसकी भाभी, जो अपनी भरी जवानीमें ही—अपनी सासके शब्दोंमें—अपने पतिको खा गयी थी। बेचारीने जैसे अपनी ख्वाहिशोंपर पत्थर डाल लिया हो। सबेरे ही हाथमें खुरपी और टोकरा लेकर घासके लिए निकल जाती। शहरोंमें घास भी आसानीसे मिलनेवाली नहीं। फिर भी उसने रेलवे लाइनकी बगलकी घास गढ़-गढ़कर उसे रेतकी तरह सफेद कर दिया था। जाड़ा हो या गर्मी, बारह बजेके पहले उसका घर लौटना उसी दिन होता, जिस दिन घरमें कोई पर्व रहता या बारीके जङ्गल साफ करने होते। ऐसी जातियोंमें विधवायें फिर विवाह कर लेती हैं; किन्तु उसी उमरमें तीन बच्चे भी उसकी गोद भर गये थे। गुलबिया उस भाभीकी चिन्ता बहुत अधिक करती। परवरिशका एकमात्र साधन थी एक छोटी-सी दुकान। एकदम छोटी-सी। दस-पांच मिट्टीके बर्तन होंगे—टट्टियोंपर चिलमें लटकतीं, किरासनका तेल और छोटे-छोटे तीन-चार टोकरोंमें चावल-दाल। गुलबियाका बूढ़ा पिता बहुत झुक गया था और इसलिए चलने-फिरनेमें उसे तकलीफ होती थी। रातमें जरा दिखाई भी कम पड़ता, इसलिए मुहल्ले-भरके लड़के खराब अठन्नी-चवन्नी लेकर उसी समय सौदा करने जाते। और जब कुछ ही दिनोंमें उसके पास छः रुपयोंकी रेजगियां रद्दी निकल आयीं, तो उसने रातको सौदा बेचना ही बन्द कर दिया। उसकी बगलमें ही मेहतरोंका टोला है। वे ही उसके खरीदार थे। और कभी-कभी तो लाख बार चेष्टा करनेपर भी गुलबियाका पिता जब रातको अन्न नहीं बेचता, तो उन मेहतरोंको या तो दूर जाना पड़ता या उपवास ही कर सो जाना पड़ता। किन्तु दूसरे दिन सबेरे ही उन लोगोंके घरोंपर आंचलमें सामान बांधकर गुलबिया दे आती और हंस-हंसकर यह भी कह देती कि सबेरे ही क्यों नहीं मंगवा लेते तुम लोग?

और उस दिन दोपहरमें जब झोंपड़ोंमें सन्नाटा था, तो गंगिया फूआ गुलबियाके पास आयी। बैठी और चिलमें पीं। गुलबिया इसे कुछ समझ नहीं रही थी कि आज बात क्या है? फिर कुछ इधर-उधरकी बातोंके बाद उसने कहना

शुरू किया—'गुलाब', तुम्हारी शिकायत बहुत हो रही है। कल शामको तुम्हें मास्टर साहबसे बातें करते मांजन बाबूने देख लिया : भात काटनेकी बात हो रही हैं।" और जैसे गुलबियाके बदनमें आग लग गयी। अभी उसी दिन मांजनका एक आदमी गुलबियासे भद्दी बातें कर गया और यह भी कह गया कि मांजन तुमसे मिलना चाहते हैं; किन्तु गुलबियाने उसका जवाब जरा कड़े शब्दोंमें दिया था। और आज उसीके प्रतिकारमें वह एक झूठा अभियोग लगाकर अपने दिलकी आग बुझाना चाहता है। जातिसे बाहर कर देनेकी धमकी भी देता है। गुलबियाने जैसे इसे सुना ही नहीं हो। उसने इतना ही भर कहा—"अच्छा, देखा जायेगा।" और तब उसकी गंगिया फूआ चली गयी थी।

मास्टर भी मुहल्लेमें एक जीव है। 'इण्ट्रेन्स" पास नहीं कर सका। कुछ तो कुन्दजिहन था और कुछ उसे समयकी कमी रही। तभीसे वह पढ़ाईका काम ही प्रमुख कर बैठ गया है। सुबह, दोपहर, शाम जब देखिये तभी, वह किसी-न-किसीके यहां कुछ बच्चोंको लिये—कहीं "रैम माने भेड़ा" तो कहीं "एक पैसेमें दो आम" कर रहा है। मासमें २०) पैदा कर लेता है। एक होटल नहीं, भोजनालयमें खाता है और एक सज्जनके बरामदेमें एक चौकीपर सो जाता है। उसमें एक खास बात है। वह कपड़े बहुत साफ पहनता और अपनेको सुन्दर भी समझता है। उसकी एक पुरानी लालटेन है—कोई पांच-सात वर्षोंकी; किन्तु है एकदम चकचक। सप्ताहमें एक बार जब अपने जूतोंपर कोबरा लगाता, तो उसी दिन नींबू या सुरखीसे लालटेन भी जरूर मांजता। शामको उसे जलाकर, वह अपने विद्यार्थियोंके यहां जाता और अपनी ही लालटेनकी रोशनीमें, कुछ पढ़ा-लिखा आता। मुहल्लेमें उसका अपना कोई न था। इसलिए दिल बहलानेके लिए वह गुलबियाको सबसे अधिक पसन्द करता। गुलबिया भी उससे नाराज नहीं होती, यह तय था और कभी-कभी तो मुस्करा भी जाती। मास्टर खिल जाता उस समय! वह अपनी इस कमजोरीको एकदम नहीं समझ सकता था।

जाड़ोंमें सुबह—तीन बजेसे वह गाने लगता था और ज्योंही पूरबमें लाली नजर आती, टहलनेके लिए निकल जाता। और इसका कारण यह था कि गुलबिया सुबह ही गोबर बीछने निकल जाती। मास्टरका कहना है कि उसे गुलबियासे कोई जान-पहचान भी नहीं; किन्तु जो मुहल्लेके छंटे-छंटाये लोग थे, इसे अच्छी तरह समझने लग गये थे। किन्तु करें क्या? कभी कोई ऐसा मौका ही नहीं आता, जो मास्टरपर कोई उंगली उठा सकता और उस दिन गंगिया फूआने भी मांजनका जो समाचार सुनाया, वह बदला लेनेकी एक प्रतिक्रिया मात्र थी। दिलकी कसक, ज्वालाको बुझानेके लिए मांजनने गुलबियाके साथ अन्याय ही करना तय कर लिया था।

और लगा उस दिन दशहरेका मेला। शहर-भरमें कोलाहल मच गया। दस दिनों तक शहरमें देहातके नर-नारी उमड़कर चले आते और फिर लौट जाते। कई जगह दुर्गाकी प्रतिमायें बनाकर पूजी जा रही थीं। और मास्टरने समझा—वह इन्हीं दस दिनोंमें गुलबियासे अपने हृदयकी सारी बातें कह लेगा। एक दिन जब मास्टर अपनी लालटेन लिये चला जा रहा था, तो गुलबिया अपनी भाभीसे कह रही थी—"इधर साड़ियोंकी बड़ी दिक्कत रहती है......" और इसके अलावा मास्टर कुछ सुन नहीं सका। उसने यही समझा कि उसे साड़ियां चाहिए और वह भाभीके परदेमें मुझसे कह रही थी। गरचे बात एकदम ऐसी नहीं थी।

और दूसरे दिन रातको मास्टर इस ताकमें रहा कि गुलबियासे कब निर्जनतामें मुलाकात होती है। वह सोचता—यदि वह इसे स्वीकार न करेगी तब? और करेगी क्यों नहीं? गरीब आदमी है और इसलिए उसकी ख्वाहिशें पूरी हों—यह सम्भव नहीं। वह कभी-कभी यह भी सोचता कि वह किस दिक्कतसे साढ़े चार रुपये लगाकर उन्हें खरीद लाया है। किन्तु जैसे वह इन बातोंको उस दिन भूल जायगा, जब गुलबिया इसे पहनकर एक बार, बस एक बार उसकी ओर देखकर हंस देगी। और यह सोचते-सोचते वह न जाने किस दिशामें उस नावकी तरह बह जाता, जो बिना पालके बह रही हो।

और तभी अंधेरेमें एक धुंधली-सी छाया दिखाई पड़ी। वह और भी समीप होती गयी और मास्टरने देखा—गुलबिया अपनी भाभीके साथ मेलेसे लौट रही थी। मास्टरके हृदयमें तूफान था। उसका सारा शरीर थरथर कांप रहा था और ललाटपर पसीनेकी बूंदें चमक रही थीं। और

ज्योंही गुलबिया उसके समीप पहुंची—मास्टरने बण्डल बढ़ा दिया। वह रुकी और सकुचायी, शायद चाहा—लौटा दूं; किन्तु मास्टरने कहा—"घबराओ नहीं, इसे अभी ले जाओ"—और गुलबिया बिना कुछ कहे चली गयी लेकर! मास्टरने इससे अधिक सफलता अभी तक अपने जीवनके किसी क्षेत्रमें प्राप्त नहीं की थी। और विजयादशमीके दिन जब गुलबिया और उसकी भाभीको उसी जोड़ेकी एक-एक साड़ी पहने देखा, तो उसके आनन्दकी सीमा न रही। और उसके हृदयमें एक भाव आकर डङ्क मार गया उसी समय—काश, मेरी अपनी भी कोई होती और मैं उसे प्रत्येक पर्वको नयी-नयी साड़ियां पहनाता। उसकी आंखें छलछला गयीं।

मास्टर इसके बादसे ही कुछ अन्यमनस्क-सा दीखता। न तो कहीं पढ़ाने ही जाता और न टहलने ही। कोई कुछ कहता और कोई कुछ। किन्तु कोई भी यह समझ न सका कि हृदयमें एक नयी वेदनाने घर कर लिया है। एक नया नासूर पैदा हो गया है। गुलबियामें भी कुछ परिवर्तन दिखाई पड़े। उसके अल्हड़पनको एक विचित्र गम्भीरताने ढंक लिया। कुएंपर न तो वह नजरबाज़ी रह गयी और न गंगिया फूआसे ताने मार-मारकर बातें ही।

और इस तरह महीना भी न गुजरा था कि एक दिन सुबह यह बात आगकी तरह फैल गयी कि मास्टर गुलबियाके साथ कहीं भाग गया है। साथ जाते तो किसीने नहीं देखा; किन्तु रघुनन्दनकी बेटीने इतना जरूर कहा कि कल शामको मास्टर साहब गुलबिया फूआसे बहुत बातें कर रहे थे। और यही काफी था इसकी पुष्टिके लिए कि वह मास्टरके सिवा दूसरा कोई नहीं था, जो गुलबियाको भगाकर ले गया। लोग समझते कि उसकी भाभीको सारी बातें जरूर मालूम होंगी; किन्तु भाभी चुप थी चोरकी औरतोंकी तरह। मास्टरका सारा सामान उसी तरह पड़ा था, केवल कुछ कपड़े गायब थे। और गुलबियाके घरकी बात बाहर नहीं फैल सकी; क्योंकि उसका बाप इसे पोशीदा ही रखना चाहता था। उसे उम्मीद थी कि जवानीके अल्हड़पनमें यह गलती हुई होगी और दो-चार दिनोंमें गुलबिया लौट आवेगी।

धीरे-धीरे एक मास निकल गया, पर न तो मास्टर ही लौटा और न गुलबिया ही। मुहल्लेमें गुलबियाकी गैर-हाजिरीसे बहुतोंने तकलीफ उठायी—यह पीछे पता चला। कुछ दिनों तक उसकी चर्चा गर्म रही; किन्तु समयके साथ ही बातें पुरानी पड़ती गयीं और उसके साल-भरके बाद तो जैसे यह घटना कभी हुई ही नहीं थी। किसीके क्रममें अन्तर न पड़ा। दुकान उसकी उसी हालतमें चलती रही और उसकी भाभी भी घासके टोकरे ढोती रही।

किन्तु दो वर्षके बाद जब मैं इस बार कलकत्ते गया, तो एक दिन "कालिज स्कायर" में मास्टरसे मुलाकात हो गयी। देखकर उसने झट पहचान लिया। एक अजीब जीवन बिता रहा है। देखा, कुछ कबाब, कुछ भूना मांस फेरी लगाकर बेचता है। मैं नहीं चाहता था कि गुलबियाकी बातें चलाऊं, किन्तु मान भी नहीं सका। और मेरे पूछते ही, वह रुककर कहने लगा—"क्या पूछते हैं? दो साल तो साथ ही, यहीं रही है। किन्तु आज प्रायः साल-भर हुआ, एक रातको गुम हो गयी। और तबसे उसका कुछ पता नहीं चला है सरकार।" मैं इसे सुन रहा था कि उसने झट पूछा—"वहां तो नहीं चली गयी है?" और मेरे 'ना' कहनेके पहले वह समझ गया कि वह वहां नहीं है। मैं कुछ पूछना नहीं चाहता था और वह अपना मांसका टोकरा लेकर एक ओर चला गया।

प्रायः सप्ताह-भरके बाद जब पटने पहुंचा, तो एक दिन कुछ दोस्तोंके अनुरोधसे गाना सुनने चौक चला गया। दोस्तोंकी पसन्द हुई और एक घरमें गाना शुरू भी हुआ। किन्तु बातोंके सिलसिलेमें बाईजीने अपनी दाई, गुलाबनको पुकारा—तो मेरे कान खड़े हो गये। और मेरे आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब मैंने अपनी पूर्व परिचित गुलबियाको—वहां दाई बनकर गुलाबनके रूपमें देखा। वह मुसलमान हो चुकी थी। उसने मुझे पहचान लिया और फिर अपनी उसी मुस्कानको लेकर इठलाती हुई चली गयी। किन्तु मैंने अनुभव किया, जैसे उसमें पहलेवाली मुस्कानकी वह सरलता और सचाई अब बाकी नहीं रह गयी।

मैं वहांसे लौटता हुआ यही सोच रहा था कि जिसकी खोजके लिए मास्टर और गुलबियाने पक्षियोंकी तरह जमीनको छोड़कर आकाशमें पर मारे, क्या वह उन्हें हासिल हो सका? और यदि नहीं, तो वे उस पथपर कितनी दूर पहुंचकर चूर हो गये—और भी दूर हो गये!

———

आत्महत्याका यह भीषण रोग !

श्री श्याम उपाध्याय, पत्रकार

आत्म-हत्या एक ऐसा रोग है, जिसकी चिन्तासे समस्त राष्ट्र उद्विग्न हो रहे हैं। क्या कारण है कि यह घातक रोग इतनी प्रचुर मात्रामें प्रत्येक देश, जातिमें प्रविष्ट होकर उसका संहार कर रहा है ? पाठक आश्चर्य करेंगे कि अमेरिका-जैसे उन्नत राष्ट्रमें हर २६ मिनटमें एक आत्मघातकी घटना घटित हो जाती है। इसी प्रकार ब्रिटेन-जैसे देशमें प्रतिदिन लगभग २० प्राणी इसके शिकार होते हैं। यदि प्रत्येक देशके आंकड़े दिये जायं, तो यह बड़ी विशाल संख्या दिखाई पड़ेगी। जर्मनी, आस्ट्रिया, हंगरी, पोलैण्ड, जेकोस्लोवेकिया तथा जापान आदि देशों और राष्ट्रोंमें एक लाख मनुष्योंमेंसे २९ से ३० तक आत्महत्या कर लेते हैं। अब तक भारत-सरकारके पास कोई प्रमाणित अङ्क नहीं हैं। इसके लिए सरकार जितनी दोषी है, उससे अधिक यहांकी प्रथा है, जिसके अनुसार यहां पता बहुत कम लगता है कि मृत्यु स्वाभाविक रूपसे हुई अथवा आत्महत्या तथा अन्य साधनोंसे। फिर भी हमारा अनुमान है—जिसका विस्तृत विवेचन हम आगे करनेका प्रयास करेंगे—कि यहां प्रतिवर्ष १० हजारके अङ्क हमें प्राप्त होते हैं, जिनको आत्मघातके अन्तर्गत ले सकते हैं। सभी देशोंके आत्महत्याके अङ्कोंकी एक तालिका बनाकर देखा जाय, तो हृदय कांप उठनेवाली समस्या उत्पन्न हो जाती है। किन्तु इन अङ्कोंसे यह भी स्पष्ट भान होने लगता है कि सभ्य देशोंके मुकाबलेमें असभ्य कही जानेवाली जातियों तथा देशोंमें यह दारुण रोग कम मात्रामें पाया जाता है। उदाहरण-स्वरूप हम अमेरिका-स्थित निग्रो जातिको ही ले सकते हैं, उस जातिमें एक करोड़ पीछे प्रतिवर्ष ५०० अपघात ही होते हैं; पर ज्यों-ज्यों ये सभ्यताकी श्रेणीमें प्रवेश करते जाते हैं, इनमें यह रोग वृद्धि करता जाता है। यह भी देखा जाता है कि भारतको छोड़कर अन्य देशोंमें पुरुष आत्महत्या अधिक करते हैं। भारतमें स्त्रियोंकी ही संख्या अधिक पायी जाती है।

यह एक और भी विचित्र बात है कि सभी देशों, राष्ट्रों और धर्मोंमें आत्महत्याको अनुचित बतलाकर अपने धर्म एवं उच्च ग्रन्थोंमें इसको अधर्म कहा है। कानूनसे भी सभी जगह इसे दण्डित ठहराया गया है। परन्तु क्या कारण है कि इन सब बातोंके होते हुए भी यह रोग बढ़ता जाता है—इसका वृत्त विस्तृत होता जाता है ? एक शब्दमें हम कह चुके हैं कि प्रथम कारण है वर्तमान सभ्यता और दूसरा मुख्य कारण इसीकी एक शाखा है—ईश्वर, धर्मके प्रति अविश्वास, इस ओर सभ्यताकी उदासीनता। यदि ध्यानपूर्वक इसके अङ्कोंका मनन किया जाय, तो हम इस तथ्यपर पहुंचते हैं कि धर्म और ईश्वरपर विश्वास रखनेवाले लोग और जातियां बहुत कम आत्महत्यापर उतारू होती हैं। पाठकोंने बहुत कम पढ़ा होगा कि किसी पण्डित, पुरोहित, पादरी, मुल्ला या पुजारी, मौलवीने अपघात करके प्राणोंका अन्त किया ! भारतवर्षमें भी जबसे नवीन सभ्यताका साम्राज्य हुआ है, आत्महत्याका आतङ्क बढ़ता जाता है। अस्तु, यह निर्विवाद सत्य है कि नास्तिक ही इसके शिकार अधिक होते हैं, आस्तिक बहुत कम।

आत्महत्याके दण्डपर विचार करें, तो और भी हंसी आती है। यह दण्ड आत्महत्यामें सफल होनेवाले व्यक्तिको न दिया जाकर असफल व्यक्तिको दिया जाता है। भारतीय न्यायशास्त्रमें लिखा है, जिसका आशय है कि आत्महत्या स्वयं नहीं, आत्महत्याका प्रयत्न दण्डनीय है।

स्वभावतः मनुष्य मृत्युसे भयभीत होता है। मनुष्यकी तो बात ही क्या, छोटे-से शिशुको भी इससे डर लगता है। उसे आग, पानीमें ढकेलनेका प्रयास करनेपर वह भयसे आतुर होकर पीछेकी ओर हटनेका प्रबल प्रयत्न करता है। फिर कौन-सी दानवी दुष्ट सत्ता है, जिसके वशीभूत होकर वह ऐसा दुस्साहस कर बैठता है। यदि इसपर इसी दृष्टिकोणसे विचार किया जाय, तो कहना पड़ेगा कि आत्महत्याके प्रयत्नमें वीरताकी झलक है; पर इसे वीरोचित कार्य कह नहीं सकते हैं; क्योंकि असफल प्राणी ही अपघातपर आरूढ़ होते हैं। अस्तु, यह कायरतापूर्ण कार्य है, जिसे कमजोर, कायर, कापुरुष ही करते देखे गये हैं। तभी धर्म-ग्रन्थोंमें इसे निन्दित कहा है

और न्यायमें इसको दण्ड देनेवाला कार्य माना गया है। यह दूसरी बात है कि वह हत्याकारीको दण्ड दे नहीं सकता, क्योंकि वह उसकी परिधिसे बाहर है।

यहां इसका विवेचन करना है कि आदमी आत्महत्या क्यों करता है? इस प्रश्नका उत्तर एक शब्दमें देना कठिन है; क्योंकि अपघातके विभिन्न कारण हैं—कोई जीवनमें असफल होनेसे करता है, कोई प्रेमिका-विरहमें इसका शिकार हो जाता है, कई कर्ज, निन्दा, अपयश, समाजके भय, जीविका न मिलनेके कारण, कुछ शर्मके भयसे, स्त्रियां पति एवं कुटुम्बियों द्वारा सताये जानेपर, अमानुषिक अत्याचारोंसे तङ्ग आकर और प्रायः वृद्ध रोग या शारीरिक कष्टोंसे उकताकर आत्महत्या करनेका साहस कर बैठते हैं। इन कारणोंके अलावा भी अनेकों कारण हो जाते हैं, उन सबका हमें विवेचन नहीं करना है। पर यह कहना पड़ेगा कि वर्तमान डाक्टर इस तथ्यपर पहुंचे हैं कि यह भी एक प्रकारका रोग है, जिसका उपचार भी यथासमय पता लगनेपर हो सकता है और यह एक प्रकारका मानसिक विकार है, जिसके वशीभूत होकर प्राणी ऐसा दुस्साहसी कार्य कर बैठता है, जो साधारण अवस्थामें कठिन एवं असम्भव-सा प्रतीत होता है।

आत्महत्याकी अधिकांश घटनायें इस बातकी द्योतक हैं कि इनके पीछे कोई-न-कोई कारण अथवा रहस्य अवश्य है। और यह भी स्पष्ट है कि यह किसी सदुद्देश्य या सद्कार्यके लिए नहीं की जाती है।

जिस प्रकार आत्महत्या करनेका कोई एक कारण नहीं है, उसी प्रकार इसके करनेके ढङ्गोंमें भी विभिन्नता है; पर यह मानी हुई बात है कि देश, काल एवं परिस्थितिका प्रभाव इसपर अवश्य पड़ता है। किसी जमानेमें केवल विष खाकर, पानीमें डूबकर या हथियारसे हत्यायें की जाती थीं। आजकल रेल, मोटर, ट्राम एवं मशीनसे कटकर, बिजलीको छूकर, जलकर, ऊंचे स्थानसे कूदकर, फांसी लगाकर, रासायनिक औषधोंका सेवन करके, पिस्तौल खाकर, जहरीली गैसके सेवनसे की जाती हैं। सम्भव है, कई प्रकार (या करनेके ढङ्ग) हमसे छूट गये हों। विभिन्न देशों, जातियोंमें पृथक्-पृथक् प्रणालियां हैं। जिसको जो साधन सुगम पड़ते हैं, जो समयपर सूझ जाते हैं या जुट जाते हैं, उन्हींको लेकर मानसिक विकारसे विकृत व्यक्ति अपने प्राणोंका उत्सर्ग कर देते हैं। सारांश यह है कि जितनी हत्यायें होती हैं, उतने ही विविध ढङ्ग और पृथक् प्रकारसे उन्हें करते देखा जाता है।

कुछ मनुष्योंको इसकी सनक भी सवार हो जाती है। किसीको यदि एक बार सफलता नहीं मिलती है, तो वह पुनः चेष्टा करेगा, उद्योग करेगा। ऐसा व्यक्ति रोका नहीं जा सकता है। हां, उसका उपचार हो सकता है। पर कुछ प्राणी ऐसे होते हैं, जो भूलसे, कायरतासे इस कुण्डमें कूद पड़ते हैं। इनको प्रथम प्रयासमें सफलता न मिलनेपर ये परब्रह्म प्रभुको धन्यवाद देते हैं, उसकी सहायताकी सराहना करते हैं, उसकी महती अनुकम्पाके लिए स्तुति करते हैं। अपनी कायरताके लिए इन्हें ग्लानि भी होती है। वे अपने मनको धिक्कारते भी हैं कि वे किस ओर बह गये।

अवस्थाकी दृष्टिसे आत्महत्याके तीन विभाग किये जा सकते हैं—बालक, युवक और वृद्ध। नर और नारीके विभेदसे इसकी तीन श्रेणियां और हो जाती हैं। यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि अन्य देशोंमें पुरुष आत्महत्या अधिक करते हैं; पर भारतमें स्त्रियोंकी संख्याका आधिक्य है। पुरुषोंमें बालकों और वृद्धोंको यदाकदा अपघात करते सुनते हैं; पर अधिकांशमें तरुण ही इस जलती आगपर चलकर प्राणोंका उत्सर्ग करते हैं। यह स्पष्ट करना अत्यावश्यक नहीं है कि पुरुष अधिक अग्रसर क्यों होते हैं? बात यह है कि इस अवस्थामें उसके खूनमें जोश होता है, मस्तिष्क अपरिपक्व होता है। जीवन-यापनकी समस्या समक्ष खड़ी होती है। उसका आत्मिक विकास नहींके बराबर होता है; भावुकताका प्रभुत्व रहता है, गृहस्थीके झञ्झट भी उलझ जाते हैं, प्रायः प्रेमके थपेड़े खाकर अचेत होना पड़ता है, जीवन-पथपर अग्रसर होते समय अन्य कठिनाइयोंका भी सामना हो जाता है; अस्तु, उनसे विमुक्त होनेके कारण युवक अपघात करनेपर उतारू हो जाते हैं। जो बात युवकोंके लिए लागू है, वही युवतियोंपर लागू है। बालकोंको आत्महत्याका प्रयास करते बहुत कम सुना है। इस अवस्थामें न उनमें बल होता है, न साहस, शक्ति और जोश एवं उल्हड़पन कम रहता है। वे सांसारिक झञ्झटों एवं जीविका-उपार्जनके प्रश्नसे विमुक्त होते हैं। प्रेम तथा विरहाग्निका ज्ञान उनको नहीं होता है। चिन्ताके चिह्नोंकी कमी इस अवस्थाका प्रमुख गुण है, अतः कोई कारण

ऐसा उपस्थित होता ही नहीं कि उनको अपघात करना पड़े। सङ्कटकी अवस्था तो केवल युवावस्था या तरुणायु है, इसमें ही अच्छे-अच्छे डगमगा जाते हैं, उनके पैर उखड़ जाते हैं।

वृद्ध मनुष्य कुछ खास कारणोंके आ जानेपर ही आत्म-हत्या करते हैं। उनको मृत्युसे भय भी होने लगता है। समयके थपेड़े खाकर वे सहनशील हो जाते हैं। शारीरिक शक्ति न हाते हुए भी मानसिक शक्ति प्रचुर परिमाणमें पायी जाती है, भावुकताका अभाव हो जाता है, उनकी आत्मा प्रबल हो जाती है एवं उन परिस्थितियोंका सर्वथा अभाव होता है, जिनके वशीभूत होकर युवक हत्या कर लेते हैं। यदि किसी वृद्ध पुरुषने अपघात किया, तो उसका कारण हो सकता है चिररोग, समाज-निन्दा, अपयश, अत्यधिक कर्ज और आर्थिक हानि।

स्त्री-जाति स्वभावसे कमजोर, भावुक एवं सन्देहशील होती है। ये बातें एक अमेरिकन आदमीमें अधिक होती हैं, तभी एक घण्टा व्यतीत होते-न-होते वहां दो आदमी आत्म-घात कर लेते हैं। दूसरे स्त्री-जातिको गृहस्थीकी चिन्ताके अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ता नहीं रहती है। वह पुरुषकी आश्रिता है, उसका क्षेत्र भी सीमित है। पर जिस देश और जातिमें उनका कदम बढ़ता जाता है, वे पुरुषोंके पद-चिह्नोंपर अग्रसर होने लगती हैं, वहां आंकड़े बढ़ जाते हैं।

प्रत्येक देशकी सरकार इस चिन्तामें ग्रस्त है कि इस रोगसे मनुष्य-समाजको कैसे मुक्त किया जाय? वे इस रोग-की दिन-प्रतिदिन वृद्धिको देखकर घबरा रही हैं और भांति-भांतिके प्रयत्नों एवं उपचारोंसे इसकी संख्याको घटानेमें प्रयत्नशील हैं। हमारा तो दृढ़ विश्वास है कि जब तक जीवन-को सरल, आमोद-प्रमोदसे पृथक्, आडम्बर-रहित न किया जायगा, इसके विनाशकारी विकासका मार्ग बदला न जायगा, मनुष्योंका धर्म और ईश्वरपर भीतरी विश्वास जमाया न जायगा, उन्हें धैर्यवान् एवं सहनशील बनना न सिखाया जायगा, ऐसी कहानियों, गल्पों, नाटकों और उपन्यासोंका प्रकाशन बन्द न होगा, जिनको पढ़कर नास्तिकताकी बू फैलती है, जिनमें जीवनका दुखी चित्रण करके उसको आत्म-हत्याके मार्गसे विमुक्त करनेके दृष्टान्त जनताके समक्ष उपस्थित किये जाते हैं, तब तक सफलता मिलनेकी बहुत कम सम्भावना है। वे सतत प्रयत्न करें, उनको कामयाबी नहीं हो सकती। दुःख इस बातका और भी अधिक है कि भारत-सरकारके कानोंपर जूं भी नहीं रेंगती है, उसको अव-काश ही नहीं प्रतीत होता है कि वह इस घातक रोगकी ओर ध्यान दे।

कुछ वर्षों पूर्व पञ्जाबकी प्रान्तीय सभाने इस विषयपर भारत-सरकारका ध्यान आकर्षित किया था कि अकेले पञ्जाबमें ही पांच सौसे अधिक आत्म-हत्यायें होती हैं। सन् १९३४ में तो यह संख्या ६९६ से अधिक थी, जिनमेंसे २२ व्यक्तियोंने अपने प्राणोंको बेकारीकी बलिवेदीपर न्योछा-वर कर दिया। यदि इसी औसतपर भारतके अन्य १० प्रान्तोंकी संख्याका अनुमान लगाया जाये, तो भी ९ हजारसे अधिक ही बैठता है। यदि देशी राज्योंमें होनेवाली आत्म-हत्याके अङ्क इसी संख्यामें जोड़ दिये जायं, तो भारतमें नित्यप्रति औसतन् १० हजार हत्यायें हो सकती हैं। अधिक सन्ताप इस बातका है कि इन १० हजारमें स्त्रियोंकी संख्या अधिक है। समस्त भारतके अङ्कोंको देखा जाय, तो भी स्त्रियोंकी आत्म-हत्याकी संख्या, पुरुषोंकी संख्यासे तीस प्रतिशतसे भी अधिक है, जहां अन्य देशोंसे इसके विपरीत बात देखी जाती है। वहां यदि १०० पुरुष हत्या करते हैं, तो स्त्रियोंकी संख्या केवल २० या २१ ही रहती है; किसी भी पाश्चात्य देशमें स्त्रियोंकी संख्या २५ प्रतिशतसे अधिक नहीं पड़ती है। परन्तु भारतकी परतन्त्र परिस्थिति और है। यहां पुरुषोंकी दशा इतनी शोच-नीय नहीं है, उनपर वे सब बातें घटित नहीं होती हैं जो अन्य देशोंके पुरुषोंपर घटती हैं। भारतीय स्त्रियोंको जितने दुःख हैं, उनपर जिस प्रकार असहनीय अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं, उनके कारण ही यहां संख्या इतनी बढ़ी हुई है और ज्यों ज्यों परिस्थिति बदलती है, त्यों त्यों वे बातें लागू हो जाती हैं, जो पाश्चात्य देशोंमें घटती हैं।

उपर्युक्त विवरणका यदि विचारपूर्वक मनन किया जाय, तो यह सिद्ध होगा कि जिन प्रान्तोंमें पर्देका बाहुल्य है, वहां आत्म-हत्याकी संख्याका भी आधिक्य है, यह भी स्पष्ट है कि इन दुर्घटनाओंमें विधवाओंकी हत्याओंकी संख्या अधिक है। बङ्गाल इसमें सबसे अग्रसर है। भारतीय स्त्रियां धार्मिक वृत्तिवाली होती हैं, यदि इसपर भी यह संख्या इतनी बढ़ी हुई

है, तो सहज ही समझ सकते हैं कि उनके दुःखोंका वारापार नहीं है, उनके कष्टोंकी सीमा नहीं है, तभी वे बाध्य होकर इस असार संसारसे मुक्त होनेको छटपटाती हैं। इनकी हत्याके मुख्य साधन विष, जल, अग्नि और फांसी भी हैं।

भारतीय स्त्रियोंकी आत्म-हत्याका मुख्य कारण है यहांकी सामाजिक कुरीतियां, जिनके निवारणकी ओर हम बहुत कम ध्यान देते हैं। यदि हमारे सामाजिक जीवनमें सुधार हो जाये, तो स्त्रियोंकी आत्म-हत्याकी संख्याको कम किया जा सकता है। बङ्गाल और सिन्धमें दहेज-प्रथाके कारण अनेक अबलायें आत्म-हत्या करती हैं। वैसे बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह, बहु-विवाह और उनसे उत्पन्न होनेवाली विधवाओंके कारण यह संख्या इतनी बढ़ गयी है।

हिन्दू-समाजको कई घातक रोग लग रहे हैं, उनमेंसे यह भी एक है, जो इसकी जड़को धीरे-धीरे काट रहा है। भारतमें मृतकोंकी जांच-प्रथा न होनेसे यह बहुत कम पता लगता है कि मृत्यु किस प्रकार हुई। देशमें फैली हुई बेकारीसे भी यह रोग बहुत बढ़ रहा है। किसानोंको उनका कर्ज विवश कर देता है। स्त्रियोंको प्रारम्भसे ही ऐसा पाठ पढ़ाना चाहिए कि वे अपनी आश्रिता नव-वधुओंके दिलोंको ठेस न पहुंचायें। इन बातोंपर ध्यान रखनेसे आत्म-हत्याकी संख्या कुछ कम हो सकती है।

[इस सम्बन्धमें जिस बातकी ओर लेखककी नजर जानी चाहिए थी, वह है हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था। हमारी वर्तमान सामाजिक व्यवस्था विषमताओंसे भरी हुई है। धनका ऐसा असम विभाजन हो रहा है कि उसमें विशृङ्खलताका न फैलना ही आश्चर्यजनक होता। गणतन्त्रात्मक देशोंमें भी—जहां सिद्धान्ततः मनुष्यके लिए समानाधिकारोंकी बात स्वीकार की जाती है, वहां भी सम्पत्तिका प्रायः तीन चौथाई भाग थोड़े-से लोगोंके पास रहता और शेष एक चौथाई सारे देशमें बंटा हुआ है। अतः एक वर्गके ऐश्वर्य एवं वैभव तथा सुख एवं विकासके समस्त साधनोंकी तुलनामें दूसरे वर्गकी विपन्नता एक ऐसा तथ्य है, जो जीवनमें असन्तोषका कारण होता है। सभ्यताके साथ-साथ जो आत्म-हत्याका रोग बढ़ता चलता है, उसका कारण यह है कि सभ्यताने जहां हमारी आवश्यकताओंको बढ़ाया है, वहीं उसने समाजकी इस विषमताका भी पर्दाफाश कर दिया है। परिस्थितिका यह ज्ञान असन्तोष एवं परिणामतः बहुत अंशोंमें आत्म-हत्याका कारण बना हुआ है। आस्तिक एवं धार्मिक भावनावाले व्यक्तियोंके आत्मघातसे बचनेका उपाय अगर उनकी धार्मिकता है, तो इसी धार्मिकता, प्रारब्ध आदिके आधारपर वे अपनी विपन्नताको भी अपना कर्मफल मानकर सहन करते हैं। लेकिन आजका सुसंस्कृत मनुष्य जब इन स्थितियोंका वैज्ञानिक विवेचन कर इस निष्कर्षपर पहुंचता है कि सभ्यताकी इस शोचनीय परिस्थितिकी जिम्मेदारी ईश्वर और धर्मपर बिलकुल नहीं है, जिनके नामपर पादरी, पुरोहितादि हाथपर हाथ रखे बैठनेके आदी हो गये हैं। न जाने कितने लक्षाधीश घोर पाप-पङ्कमें फंसे रहते और ईश्वर और धर्म-विरोधी आचरणमें निरन्तर रत रहते हुए भी आत्म-हत्या करनेके लिए विवश नहीं होते। और इसका कारण यह होता है कि ऐसा सब करते हुए भी समाजकी दृष्टिमें वे अपनेको इतना ऊंचा और सम्पन्न समझते हैं कि जीवनकी निराशा उनमें आत्मघातक असन्तोष नहीं भरती। अतः सामाजिक विषमतापर आजकी बढ़ती हुई आत्म-हत्याकी संख्याकी बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। हम जिन्हें व्यक्तिगत मानसिक चिन्तायें और व्यक्तिगत असफलताओंका नाम देकर उन्हें आत्म-हत्याका कारण बताते हैं, उनकी भी जिम्मेदारी आजके विषम अर्थमूलक समाज एवं इसकी पूंजीवादी सभ्यतापर बहुत कुछ है। यह ऐसा विषय है, जिसपर अभी बहुत कुछ कहनेको है।

—सं० मा० वि०]

भारतमें प्रारम्भिक तथा प्रौढ़ शिक्षाकी समस्या

प्रो० शङ्करसहाय सक्सेना, एम० ए० एम० काम०

संसारकी बीस प्रतिशत जनसंख्याको आश्रय देनेवाला देश—भारतवर्ष आज अत्यन्त अपमानित तथा पतित जीवन व्यतीत कर रहा है। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टिसे हमारा देश जितना पिछड़ा हुआ है, उतना पिछड़ा हुआ देश संसारके सभ्य देशोंमें कदाचित् कोई भी नहीं है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी पतित अवस्थाका मुख्य कारण हमारी राजनीतिक परतन्त्रता है। परन्तु केवल ब्रिटिश साम्राज्यशाहीको कोसने ही से हमारी दयनीय स्थितिमें सुधार नहीं हो सकता, इसके लिए हमें देशमें सर्वाङ्गीण चेतना उत्पन्न करनी होगी। पिछले पचास वर्षोंमें इस ओर जितने भी प्रयत्न हुए हैं, उन्हें आशाजनक सफलता नहीं मिली; क्योंकि देश निरक्षरता और अशिक्षाके भयङ्कर रोगसे आक्रान्त है। देशको अशिक्षाका अभिशाप लगा हुआ है। यह हमारे पतनका मुख्य कारण है; फिर भी इस समस्याकी ओर जितना ध्यान देनेकी आवश्यकता थी, उतना ध्यान नहीं दिया गया। हम लोग भारतवासियोंकी निरक्षरता सम्बन्धी अङ्कोंको सुननेके इतने अधिक अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें यह जानकर तनिक भी कष्ट नहीं होता कि हमारे देशवासी ९१ प्रतिशत निरक्षर भट्टाचार्य हैं।

सन् १९३१ ई० की मनुष्य-गणनाके अनुसार, पांच वर्षसे अधिक आयुवाली कुल जनसंख्याका केवल ९.५ प्रतिशत लिख-पढ़ सकते थे। इनमेंसे अधिकांशकी शिक्षा केवल अक्षर-ज्ञान तक सीमित थी। नीचे लिखे हुए अङ्कोंसे विभिन्न प्रान्तोंमें साक्षरताके विषयमें कुछ अनुमान लगाया जा सकता हैः—

प्रति हजार (पांच वर्षसे अधिक) में साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या।

प्रान्त	पुरुष	स्त्रियां
आसाम	१९६	२२
बङ्गाल	१८२	३३
बिहार-उड़ीसा	९८	८
बम्बई (सिन्ध सहित)	१७६	३१
मध्यप्रान्त-बरार	१२१	१२
मद्रास	१८८	३०
सीमाप्रान्त	८०	१२
पञ्जाब	१००	१७
संयुक्तप्रान्त	९४	११

कतिपय देशी राज्योंको छोड़कर अधिकांश देशी राज्योंमें साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या बहुत कम है। राजपूतानेके देशी राज्योंमें पांच वर्षसे अधिक आयुवाले पुरुषोंमें केवल ७ प्रतिशत लिख-पढ़ सकते थे और स्त्रियां तो एक हजारमें केवल ६ ही लिख-पढ़ सकती थीं। जहां अधिकांश देशी राज्यों-में साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या ब्रिटिश भारतकी अपेक्षा कम है, वहां कतिपय देशी राज्य ऐसे भी हैं, जहां साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या ब्रिटिश भारतसे कहीं अधिक है। कोचीन राज्यमें ४६ प्रतिशत पुरुष और २२ प्रतिशत स्त्रियां साक्षर हैं। ट्रावनकोरमें भी साक्षर स्त्री-पुरुषोंकी संख्या बहुत अधिक है। अंगरेजी लिखे-पढ़े स्त्री-पुरुषोंकी संख्या तो देशमें और भी कम है। पुरुषोंमें २.१२ प्रतिशत और स्त्रियोंमें .२८ प्रतिशत अंगरेजी पढ़ी हैं।

सन् १९३९ में जेनेवासे बेकारी सम्बन्धी एक रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, जिसमें भिन्न-भिन्न देशोंकी प्रारम्भिक शिक्षा सम्बन्धी ज्ञातव्य बातें दी गयी थीं। उसे देखनेसे पता चलता है कि अधिकांश देशोंमें प्रारम्भिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गयी है। फ्रान्स और जर्मनीमें प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त कर लेनेके उपरान्त प्रत्येक छात्रको किसी औद्योगिक पाठ-शालामें जाकर अपनी रुचिके धन्धेकी शिक्षा ग्रहण करनी पड़ती है। ब्रिटेनमें यद्यपि अनिवार्य शिक्षा १४ वर्ष तक ही दी जाती है; परन्तु स्थानीय अधिकारी यदि चाहें, तो १६ वर्ष तक छात्रोंको शिक्षा प्राप्त करनेपर विवश कर सकते हैं। अधिक-तर प्रारम्भिक शिक्षाका पाठ्यक्रम ऐसा है कि छात्रको किसी-न-किसी धन्धेका ज्ञान करा दिया जाता है और जहां प्रार-म्भिक शिक्षाके पाठ्यक्रममें यह सुविधा नहीं है, वहां प्रारम्भिक शिक्षा समाप्त करके कुछ समयके लिए छात्रोंको अपनी रुचिके

धन्धोंमें अपरैण्टिस होकर रहना पड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि अधिकांश देशोंने अपने बालकोंको योग्य नागरिक तथा जीविका उपार्जन करनेके योग्य बनानेके लिए अनिवार्य प्रारम्भिक शिक्षाकी सुन्दर व्यवस्था की है। किन्तु भारतवर्षमें इस अत्यन्त आवश्यक कर्तव्यकी ओर राज्यने कभी ध्यान ही नहीं दिया और न समाजने ही इसके महत्त्वको समझा। देशके धनी व्यक्तियोंने जहां यथेष्ट सम्पत्ति धर्मशाला, मन्दिर, मसजिद तथा अन्य धार्मिक संस्थाओंके निर्माण करनेमें लगायी है, वहां शिक्षाके लिए अपेक्षाकृत बहुत कम दान दिया है। और जिस किसी भी धनी जमीन्दार, व्यापारी अथवा व्यवसायीने शिक्षाके लिए दान दिया भी, तो वह अधिकांशमें अंगरेजी स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयोंको ही दिया गया। किसीने यह नहीं सोचा कि जितना धन एक अंगरेजी स्कूलके चलानेमें व्यय किया जावेगा, उसके द्वारा पचास ग्रामीण पाठशालायें चलायी जा सकती हैं। इस अवहेलना और उपेक्षाका परिणाम यह हुआ कि भारतीय ग्रामोंमें विद्याका प्रकाश नहीं पहुंच सका और ग्रामीण जनता भाग्यवादी, रूढ़िवादी और निकम्मी बन गयी। जो कुछ नाममात्रकी प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबन्ध किया गया, वह ग्रामीण जनताके लिए तनिक भी उपयोगी सिद्ध नहीं हुई।

भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित अङ्कोंसे ज्ञात होता है कि पांच बर्ष तथा दस वर्षके बीचमें जितने बालक देशमें हैं, उनमेंसे लगभग २९ प्रतिशत प्रारम्भिक कक्षाओंमें पढ़ते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि पढ़ने योग्य बालकोंकी तीन चौथाई संख्या आज भी नहीं पढ़ रही है। जब लड़कोंकी दशा इतनी शोचनीय है, तब लड़कियोंके सम्बन्धमें कुछ कहना अनावश्यक है। इस समय देशमें लड़कोंकी प्रारम्भिक शिक्षापर ६ करोड़ ८० लाख तथा लड़कियोंकी प्रारम्भिक शिक्षापर एक करोड़ बत्तीस लाख रुपये व्यय होते हैं। प्रति लड़केकी शिक्षाका व्यय १०) से कुछ कम और प्रति लड़कीकी शिक्षाका व्यय ६) के लगभग होता है। बङ्गालमें प्रति लड़केकी प्रारम्भिक शिक्षाका व्यय केवल ४) ही होता है। अतएव यदि प्रयत्न किया जावे और प्रारम्भिक शिक्षाकी व्यवस्था ठीकसे हो, तो प्रति लड़का और लड़की शिक्षाका व्यय घटाया जा सकता है। यदि वर्तमान शिक्षा-व्ययको ही आधार मानकर चलें, तो देशके समस्त बालकोंको प्रारम्भिक शिक्षा देनेके लिए २४ करोड़ रुपये तथा कुल लड़कियोंको शिक्षा देनेके लिए १३ करोड़ रुपयेकी आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दोंमें हम यह कह सकते हैं कि देशके समस्त बालक-बालिकाओंको प्रारम्भिक शिक्षा देनेके लिए जितना रुपया अभी व्यय किया जा रहा है, उससे ३० करोड़ रुपया अधिक व्यय करना होगा। ऊपर दिये हुए अङ्क केवल ब्रिटिश भारतके हैं; किन्तु भारत अखण्ड है। वह ब्रिटिश अथवा देशी राज्योंमें विभाजित भले ही कर दिया गया हो; किन्तु स्वतन्त्र भारत इस प्रकारके राजनीतिक विभाजनको स्वीकार नहीं करेगा, उस समय हमें सारे भारतवर्षको ध्यानमें रखकर ही कोई योजना बनानी होगी। अतएव यदि इन अङ्कोंमें देशी राज्योंके अङ्क भी जोड़ दिये जावें, तो सारे देशके बालक-बालिकाओंको प्रारम्भिक शिक्षा देनेके लिए लगभग ४० करोड़ रुपयेकी आवश्यकता होगी। यदि प्रारम्भिक शिक्षाका ठीक सङ्गठन हो, तो प्रति छात्र शिक्षाका व्यय घटाया जा सकता है; परन्तु फिर भी कमसे कम ३० या ३५ करोड़ रुपयेकी और आवश्यकता होगी, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं है।

देशके सामने प्रारम्भिक शिक्षाको अनिवार्य बनानेमें सबसे बड़ी कठिनाई आर्थिक है। ३५ करोड़ रुपयेका प्रबन्ध कहांसे हो? यह एक ऐसा प्रश्न है, जिसको हल किये बिना देशमें प्रारम्भिक शिक्षाको अनिवार्य नहीं बनाया जा सकता। दूसरी समस्या यह है कि पाठ्यक्रम क्या हो? महात्मा गांधीने इस सम्बन्धमें देशके सामने एक मौलिक योजना रखी है। यद्यपि वह योजना अभी पूर्ण रूपसे कार्यमें परिणत नहीं की गयी है; किन्तु प्रसिद्ध वर्धा-योजना उनकी योजनाके आधारपर ही तैयार की गयी है।

यदि देखा जावे, तो गांधीजीकी योजनामें चार मुख्य बातें हैं—(१) उच्च शिक्षा (विश्वविद्यालयों तथा कालेजों) के लिए सरकार व्यय न करे। विश्वविद्यालयोंको चलानेके लिए शिक्षामें रुचि रखनेवाले व्यक्तियोंका सङ्गठन स्थापित किया जावे। राज्य उच्च शिक्षाकी व्यवस्था करना अपना कर्तव्य न समझे। (२) औद्योगिक तथा कला-सम्बन्धी शिक्षाके प्रबन्धका उत्तरदायित्व उद्योग-धन्धोंपर रहे। जिस प्रकार यूरोपमें मध्यकालमें औद्योगिक सङ्घ औद्योगिक शिक्षाकी व्यवस्था करते थे, उसी प्रकार देशके व्यवसायियोंपर

इसका उत्तरदायित्व रखा जावे। (३) १४ वर्षकी अवस्था तक प्रत्येक लड़के और लड़कियोंको प्रारम्भिक शिक्षा दी जावे, जो कि स्वावलम्बी हो। (४) शिक्षित स्त्री-पुरुषोंको (राष्ट्रको शिक्षित बनानेके लिए) अध्यापन-कार्य करनेके लिए विवश किया जावे।

वर्धा-योजनामें एक दोष यह है कि उसमें ७ वर्षकी आयुके पूर्व बच्चेकी शिक्षाका कोई प्रबन्ध नहीं है। आज संसारके प्रत्येक उन्नतिशील राष्ट्रमें स्कूलमें जानेके पूर्वकी शिक्षाका विशेष महत्त्व है। ३ वर्षसे ७ वर्ष तक शिशु-शिक्षाका आयोजन किसी देशके राष्ट्रीय शिक्षाक्रमके लिए आवश्यक है। परन्तु भारतवर्षमें जहां प्रारम्भिक शिक्षाका ही प्रबन्ध करना कठिन दिखलाई पड़ रहा है, वहां शिशु-शिक्षाका समुचित प्रबन्ध कर सकना और भी कठिन है। किन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इस ओर ध्यान ही न दिया जावे। शिक्षा-विशेषज्ञोंने वर्धा-योजनाके स्वावलम्बी होनेका घोर विरोध किया है। उनका कहना है कि यदि प्रारम्भिक शिक्षाका स्वावलम्बी होना अनिवार्य कर दिया गया, तो धन्धोंको सफल बनानेकी ओर विशेष ध्यान दिया जावेगा और शिक्षाको गौण स्थान दे दिया जावेगा। इसके अतिरिक्त यदि देशभरमें स्वावलम्बी प्रारम्भिक शिक्षाका आयोजन हुआ, तो राज्यको स्कूलोंमें बनी हुई चीजोंकी बिक्रीके लिए विशेष सङ्गठन करना होगा, जिसके फलस्वरूप देशके व्यावसायिक तथा आर्थिक सङ्गठनमें राज्यको यथेष्ट हस्तक्षेप करना होगा। जहां-जहां वर्धा-योजनाका प्रयोग हुआ है, वहां उसको स्वावलम्बी बनानेका प्रयत्न नहीं किया गया।

कुछ विद्वानोंने महात्माजीके इस विचारका भी विरोध किया है कि शिक्षित स्त्री और पुरुषोंको राज्य अध्यापन-कार्यके लिए विवश करे। किन्तु किसी भी व्यक्तिने यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं समझी कि इतने बड़े राष्ट्रको शिक्षित बनानेके लिए इसके अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है। जब प्रत्येक राज्यको देशकी रक्षा करनेके लिए प्रत्येक युवाको सेनामें भर्ती करनेका अधिकार है, तब राष्ट्रको शिक्षित बनानेके लिए यदि राज्य शिक्षित स्त्री-पुरुषोंको अध्यापकोंकी सेनामें भर्ती करे, तो उसका विरोध कोई भी समझदार व्यक्ति न करेगा। शिक्षाको स्वावलम्बी बनानेके सम्बन्धमें भी यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि यदि राष्ट्रके आय-व्ययका ठीकसे विभाजन हो, शासनको कम खर्चीला बनाया जावे तथा उच्च शिक्षाका राज्य द्वारा दी जानेवाली सहायता कम की जावे, तो प्रारम्भिक शिक्षाके लिए यथेष्ट धन प्राप्त हो सकता है। परन्तु यदि राज्य किसी भी प्रकार प्रारम्भिक शिक्षाके लिए यथेष्ट धन न दे सके, तो शिक्षाको स्वावलम्बी बनानेके अतिरिक्त और कोई उपाय ही नहीं है।

किन्तु देशको शीघ्रसे शीघ्र शिक्षित बनानेके लिए प्रौढ़ शिक्षाकी समस्याको भी हल करना होगा। केवल प्रारम्भिक शिक्षाका प्रबन्ध कर देनेसे ही काम नहीं चलेगा। राज्यको प्रौढ़ शिक्षाकी व्यवस्था करनेके लिए अधिक धन व्यय करनेकी आवश्यकता नहीं है। विश्वविद्यालय तथा कालेजोंमें उच्च शिक्षा-प्राप्त युवकोंसे यह कार्य लिया जाना चाहिए। ग्रीष्मकालकी छुट्टियोंमें तथा विश्वविद्यालयकी परीक्षा पास करनेके उपरान्त एक वर्ष तक प्रत्येक स्नातकको प्रौढ़ शिक्षा विभागकी देख-रेखमें प्रौढ़ शिक्षाका कार्य करना होगा। जब तक कि कोई व्यक्ति एक निश्चित समय तक प्रौढ़ शिक्षाका कार्य नहीं कर लेता, उसे विश्वविद्यालय उपाधि न दे। कुछ लोग कह सकते हैं कि इस प्रकार शिक्षित युवकोंको गांवोंमें अवैतनिक शिक्षा-कार्य करनेके लिए विवश करना अनुचित होगा। लेकिन यदि राष्ट्रीय दृष्टिसे देखा जावे, तो प्रत्येक व्यक्तिका, जिसे उच्च शिक्षा प्राप्त हुई है, यह प्रथम नागरिक कर्तव्य है कि वह अशिक्षित देशवासियोंको शिक्षित बनानेका प्रयत्न करे। यदि यह सम्भावना हो कि भारतका शिक्षित समुदाय अपने इस राष्ट्रीय कर्तव्यको समझेगा, तो राज्यको नियम बनाकर उन्हें विवश करनेकी आवश्यकता नहीं होगी; किन्तु हमारे शिक्षित वर्गकी जैसी भी कुछ मनोवृत्ति है, उससे यह आशा करना व्यर्थ है। अतएव राष्ट्रीय हितके लिए राज्यको उन्हें विवश करना होगा।

ऊपर लिखी हुई योजना पूर्ण रूपसे तभी काममें लायी जा सकती है, जब कि देश स्वतन्त्र हो और राष्ट्रीय सरकार देशको शिक्षित बनानेकी राष्ट्रीय योजनाके अनुसार कार्य करे। परन्तु देशकी स्वतन्त्रताके आन्दोलनका सफल होना भी बहुत कुछ ग्रामीणोंकी शिक्षापर निर्भर है। आज जो प्रतिगामी वर्ग देशकी स्वतन्त्रताके मार्गमें रुकावट डालनेमें सफल हो रहा है, उसका मुख्य कारण यह है कि देशकी अधिकांश जन-संख्या अशिक्षित होनेके कारण अपने हित-अनहितको नहीं

समझ पाती । सर्वसाधारणमें शिक्षाका अभाव होनेके कारण राजनीतिक चेतना प्रायः नहींके बराबर है, इस कारण प्रतिगामी वर्ग भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक तथा राजनीतिक सङ्गठन खड़े करके जनताको भ्रममें डालकर राष्ट्रीय आन्दोलनको शक्तिको क्षीण करनेमें सफल हो जाता है। अतएव देशमें राष्ट्रीय सरकार स्थापित होने तक प्रारम्भिक शिक्षाकी समस्याकी ओरसे उदासीन रहना घातक होगा। आवश्यकता इस बातकी है कि एक स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा सङ्घकी स्थापना की जावे। उस सङ्घकी प्रत्येक प्रान्तमें शाखायें हों। राष्ट्रीय शिक्षा-सङ्घ प्रारम्भिक तथा प्रौढ़ शिक्षाकी एक योजना बनाकर उसके अनुसार प्रत्येक प्रान्तमें कार्य करे। धनी व्यक्तियोंसे दान लेकर, शिक्षित व्यक्तियोंको शिक्षा-कार्यके लिए अपना कुछ समय देनेके लिए तैयार करके, कालेज तथा स्कूलोंके राष्ट्रीय विचारवाले विद्यार्थियोंकी सहायता लेकर राष्ट्रीय शिक्षा-सङ्घ देशमें निरक्षरताके विरुद्ध युद्ध छेड़ दे। किन्तु एक बात ध्यानमें रखनेकी है कि जनतामें राजनीतिक चैतन्य उदय करनेके लिए पाठ्यक्रममें तनिक परिवर्तन करनेकी आवश्यकता होगी।

भारतवर्षमें ग्रामीण जनताकी शिक्षाके साथ-साथ ग्रामीण जनताके योग्य साहित्य उत्पन्न करनेकी भी आवश्यकता है। अभी तक हमारी देश-भाषाओंके साहित्यिकोंका इस ओर ध्यान ही नहीं गया है। इसके लिए भिन्न-भिन्न भाषाओंके साहित्यिकोंकी सहायता तथा सहयोग प्राप्त करनेकी आवश्यकता होगी। अभी तक हमारे लेखकों और प्रकाशकोंने इस सूने क्षेत्रकी ओर ध्यान ही नहीं दिया है। आज भी, जब कि गांवोंमें इने-गिने लोग ही साक्षर हैं, तब भी प्रति वर्ष लाखों रुपयोंकी कुरुचिपूर्ण पुस्तकें, अल्हखण्ड तथा अन्य पुस्तकें गांवोंमें बिकती हैं। जब देशव्यापी साक्षरता-आन्दोलन सङ्गठित रूपमें चलाया जावेगा, तब गांवोंमें पुस्तकोंकी मांग बहुत बढ़ जावेगी।

जब कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलोंने प्रान्तोंका शासनसूत्र अपने हाथमें लिया, उस समय यह आशा हुई थी कि इस ओर कुछ कार्य होगा। किन्तु कांग्रेस-मन्त्रिमण्डलोंके हटते ही वह आशा नष्ट हो गयी। यदि राज्यकी शक्तिका सहारा मिल सकता, तब तो कहना ही क्या था; किन्तु वह तो स्वतन्त्र भारतकी राष्ट्रीय सरकारके शासन-कालमें ही स्थायी रूपसे मिल सकता है। आवश्यकता इस बातकी है कि राष्ट्रीय विचारवाले शिक्षित व्यक्ति, जो कि देशको शिक्षित और स्वतन्त्र देखना चाहते हैं, अपना एक सङ्गठन बना लें। महात्माजीके नेतृत्वमें जो तालीमी सङ्घ स्थापित हुआ है, यदि वह स्वतन्त्र रूपसे इस कार्यको अपने हाथमें ले ले और देशव्यापी साक्षरता आन्दोलनका सञ्चालन करे, तो थोड़े समयमें देशमें प्रारम्भिक शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षाका आन्दोलन तीव्र गतिसे चल सकता है।

———

गीत

जीवन-तरुमें नीड़ बनाया।
सुख-दुखके तृन-तृन चुन-चुनकर,
मनमें सदा नाम गुन-गुनकर,
सोचा वास करेगी आकर—परिचित एक सुनहली छाया!

जीवन-तरुमें नीड़ बनाया।
मधु आशाके वन्दनवारे,
पात-पात पर सजा, संवारे—
रोम-रोमने भू-नभ खोजा—पर न मिला फिर भी मनभाया

जीवन-तरुमें नीड़ बनाया।
सांस-सांसकी डाल-डालपर,
सपनोंका सोना बिखरा कर—
आकुल नयन प्रतीक्षा की है—पर बिछुड़ा पन्छी कब आया?
जीवन-तरुमें नीड़ बनाया।

—नर्मदाप्रसाद खरे।

डेनमार्कका सामरिक और आर्थिक महत्त्व

श्री रामाधीन अग्निहोत्री, बी० ए०

डेनमार्क नात्सीवादका भावी शिकार होगा, इसके लक्षण पहले ही से प्रकट होने लगे थे। काफी दिनोंसे निर्बल डेनमार्क अपने निरंकुश एवं साम्राज्यलोलुप सबल पड़ोसी जर्मनीके बिछाये हुए नात्स वादके विकराल जालमें तीव्र गतिसे फंसता जा रहा था, नात्सी गुण्डे अपने तूफानी कारनामों द्वारा विशाल नगरोंकी शान्तिप्रिय प्रजाके मध्य आतङ्क छा रहे थे, हिटलरके गुमाश्ते श्लेसविग-हाल्स्टीनकी अल्पसंख्यक जर्मन जनताके सम्मुख विदेशी सत्ताके काल्पनिक अत्याचारों व दुर्व्यवहारोंको हिमालयका विकराल रूप देकर उनके हृदयोंमें असन्तोषकी लहर पैदा करते जा रहे थे, और वे अपने राष्ट्रीय नेता हिटलरके लिए मार्ग प्रशस्त बनानेमें तन, मन, धनसे संलग्न रहे हैं; जर्मनीके वायुयान अन्तर्राष्ट्रीय नियमोंका अतिक्रमण कर पूर्ण स्वतन्त्रता व निर्भीकताके साथ डेनमार्कके गगन-मण्डलपर वहांकी सैनिक गतिविधिकी जानकारी प्राप्त करने तथा विदेशी जलपोतोंके गमनागमनपर कड़ा निरीक्षण रखनेके लिए आये दिन मंडराया करते रहे; और वहांकी सरकार अपने स्वतन्त्र जीवनकी अन्तिम घड़ियां अपने वयोवृद्ध राजाके साथ गिनती रही है। और इन सबका परिणाम आज यह दिखाई पड़ा है कि जर्मनीने डेनमार्कको भी अनेक लघुराष्ट्रोंकी भांति ही उदरसात् कर लिया है।

आस्ट्रिया, जेकोस्लोवेकिया तथा मेमेलके पश्चात् बेचारे डेनमार्ककी ही बारी थी; उसी बलि-बकरेकी भेंट हिटलरकी वेदीपर चढ़नेको थी। अभाग्य अथवा सौभाग्यवश वह दुर्दिन कुछ दिनोंके लिए, अथवा यों कहें कि कुछ महीनोंके लिए टला रहा। हिटलरकी राहुदृष्टि इससे पूर्व समृद्धिशाली एवं बहुजनसंख्यक पोलैण्डपर पड़ी, और बावजूद पोलैण्ड तथा उसके सहायक राष्ट्रों—इंगलैण्ड व फ्रान्सके तीव्र विरोधके उसने केवल तीन सप्ताहोंमें उसे नष्ट-भ्रष्ट कर आत्मसात् कर लिया। अभी पोलैण्डको उदरस्थ किये पूरे छः मास भी न होने पाये थे, और न पश्चिमी मोर्चेपर चलनेवाले जीवन-मरण-युद्धका अन्त ही, कि हिटलरकी गृद्ध-दृष्टि अपने उत्तरी पड़ोसी नार्वेपर पड़ी। इस भीषण युद्धकालमें जब जर्मनीके दो विध्वंसक अंगरेजों द्वारा बिछायी हुई सुरङ्गोंसे टकराकर नार्वेके पश्चिमी समुद्रतटके निकट जलमग्न हो गये, तब उस ओर हिटलरकी दृष्टिका आकृष्ट होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं। अतएव नार्वेको अधिकारमें लानेके लिए यह एक प्रकारसे उसके लिए केवल आवश्यक ही नहीं, वरन् अनिवार्य हो गया कि वह अपने निकटवर्ती पड़ोसी डेनमार्कको भी बिना किसी सङ्कल्प-विकल्पके जीतकर अपने संरक्षणमें रखे और इस प्रकार अपने देशको शत्रुओंके उत्तरी-पश्चिमी आक्रमणसे पूर्णतया सुरक्षित रखे।

जर्मनीके लिए नार्वेपर आक्रमण करना यदि असम्भव न था, तो कष्टसाध्य अवश्य था; क्योंकि डेनमार्क बाल्टिक सागरके पूर्वी जलमार्गोंका ही द्वारपाल, संरक्षक एवं एकाकी स्वामी नहीं है, वरन् प्राचीन कालसे ही वह नार्वे तथा स्वीडनमें सुगमतासे प्रवेश करनेका मुखद्वार भी है। स्वयं डेनमार्क सदियों तक सम्पूर्ण स्कैण्डीनेविया प्रायद्वीपका स्वामी रहा। यह इसकी लाभदायक प्राकृतिक स्थिति ही थी, जिसने प्राचीन डैनिश योद्धाओंको इस विशाल प्रायद्वीपपर फैलने तथा इसे विजित कर राज्य करनेका सुअवसर दिया था।

जटलैण्ड प्रायद्वीपका उत्तरी भाग अन्तरीपके सदृश समुद्रमें इस प्रकार प्रवेश करता चला गया है कि वह सरलतापूर्वक स्केजर राक (Skagar Rak) और काटेगाट (Kattegat) का पूर्ण स्वामी बन गया है। इस प्रायद्वीपके उत्तरी छोटे-छोटे बन्दरगाहोंसे बातकी बातमें नार्वेकी राजधानी आस्लो और वहांसे देशान्तरमुखी ग्लोमेन घाटीके सुगम मार्ग द्वारा सेनायें उत्तरमें फ्राण्डेन (Frondhjan) बन्दरगाहको पहुंचायी जा सकती हैं। इस प्रकार नार्वेकी सेनाओंको दो भागोंमें विभाजित कर वहांकी सैनिक शक्तिका नाश किया तथा समस्त देशपर अधिकार जमाया जा सकता है। पूर्व दिशामें काटेगाटको पारकर स्वीडनके पश्चिमी बन्दर गाटेबर्ग शीघ्रतासे पहुंचा जा सकता है। वहांसे 'गोटा नहर' द्वारा वेनर व वेटर झीलोंको पारकर नारकोपिङ्ग होते हुए

पूर्वी तटपर पहुंचा जा सकता है, और फिर समुद्रयात्रा द्वारा देशकी सुरम्य राजधानी स्टाकहोम जाया जा सकता है। इस प्रकार नार्वेके सदृश स्वीडनकी निचली घाटीके दोनों पश्चिमी और पूर्वी द्वारोंको अल्प समयमें अधिकृत किया जा सकता है। डेनमार्कके पश्चिम तटीय बन्दर एस्बजर्गसे प्रारम्भ होनेवाले रेल-नौकाओंके मार्गका भी, जो डेनमार्ककी राजधानी कोपेनहेगेन द्वारा स्वीडनके प्रसिद्ध बन्दरगाह माल्मो तथा वहांकी राजधानी स्टाकहोम तक जाता है यह पूर्ण स्वामी है। इस प्रकार हम देखते हैं कि डेनमार्कको आत्मसात् कर जर्मनी नार्वेपर तो सफलतापूर्वक अपना स्वस्तिक झण्डा फहरा ही सकता है और अब जब चाहेगा तब स्वीडनको भी बातकी बातमें पद-दलित कर वहांकी विशाल लोहेकी खदानों, कागजकी मिलों तथा दियासलाईके कारखानोंका स्वामी बन बैठेगा।

इतना ही नहीं, डेनमार्कके अधिकारके साथ ही आज जर्मनी बाल्टिक सागरके समस्त पूर्वी तङ्ग, परन्तु महत्त्वपूर्ण जलमार्गोंका एकाकी स्वामी बन बैठा है। 'लिटिल बेल्ट', 'ग्रेट बेल्ट' तथा 'दी साउण्ड' तीनों जलमार्ग उसके संरक्षण तथा निरीक्षणमें आ गये हैं। अधिक गहरा न होनेपर भी इन तीनोंमें 'साउण्ड' नामक जलमार्ग सबसे अधिक प्रसिद्ध है, जिसकी रक्षा कोपेनहेगनका सुरक्षित बन्दरगाह करता है। यह सुरम्य एवं सुदृढ़ नगर जीलैण्ड तथा अमेजर टापुओंके मध्यवर्ती तङ्ग जलडमरूमध्यपर बसा हुआ है। थोड़ी-सी सतर्कता तथा सावधानीसे समस्त बाल्टिक सागरको अब जर्मनी अपने शत्रुओंके घातक आक्रमणोंसे भली भांति रक्षित रख सकता है। आवश्यकता पड़नेपर रूसी जहाजी बेड़ेको बाल्टिक सागरसे बाहर आने तथा उसे उत्तरी सागरसे बाल्टिक सागरमें जानेसे अनायास ही रोक सकता है, और इस प्रकार युद्धके समय रूसको भारी क्षति पहुंचा सकता है। डेनमार्कपर अधिकार कर हिटलरने बाल्टिक सागरको एक सुरक्षित जर्मन झीलमें परिणत कर दिया है। निश्चय ही डेनमार्कको पराजित कर हिटलरने अपनी कुशाग्र बुद्धि, राजनीति-कुशलता तथा दूरदर्शिताका सम्यक् परिचय दिया है। समयकी अचूक कसौटी ही उसके इस सुवर्ण-कार्यकी सार्थकताका परिचय देगी।

जर्मनीको आर्थिक लाभ—साधारण जनताको डेनमार्ककी विजयमें सामरिक लाभसे कहीं अधिक आर्थिक लाभ दिखलाई देता होगा। परन्तु वास्तवमें ऐसी बात नहीं है। बाह्यरूपसे तो जर्मनीके क्षेत्रफल और जनसंख्यामें क्रमशः १६५७५ वर्गमील और ३७,०४,३४९ व्यक्तियोंकी वृद्धि हो गयी है, किन्तु इसी सानुपातमें उसे आर्थिक लाभ नहीं हुआ है। डेनमार्क देशपर प्रकृतिकी विशेष कृपा नहीं है। देशमें खनिज पदार्थोंका नितान्त अभाव है, और यहां कोई विशाल नदी भी नहीं है। अधिकांश भूभाग निचला होनेके कारण कारखानोंको सञ्चालित करनेके लिए जल-विद्युत् भी नहीं उत्पन्न की जा सकती। यहांकी मिट्टी भी उपजाऊ नहीं है। इसके अति रिक्त देशका एक बड़ा भाग निपट ऊसर है। इतना सब होते हुए भी यहांके निवासियोंने अपने प्रखर बुद्धि और अध्यवसायसे अनेक उन्नतिशील उद्योग-धन्धे स्थापित कर लिये हैं, जो निश्चय ही अनेक बड़े-बड़े देशोंके लिए आदर्श हैं और साथ ही ईर्षाके कारण भी।

खेती द्वारा देशवासियोंकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए भी पर्याप्त अनाज नहीं पैदा होता। गेहूंकी वार्षिक उपज न होनेके तुल्य ही कही जा सकती है। अतएव गेहूं प्रचुर मात्रामें विदेशोंसे मंगाया जाता है। डेनमार्क प्रमुखतया अपने 'पशु-पालन' तथा दुग्धशालाओंके लिए यूरोपीय मुल्कोंमें प्रसिद्ध है। गत पच्चास वर्षोंमें इसने इस क्षेत्रमें आशातीत उन्नति कर ली है। पशुओं तथा शूकरोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है, और इसके साथ ही मक्खन, पनीर और शूकरामिषकी पैदावार भी। इस समय देशमें ५५१००० घोड़े, ३०,७९,००० पशु, ३०,८३,००० सुअर और २६,०००,००० मुर्गियां हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि जर्मनीके कोयले आदि खनिज पदार्थोंकी खपत डेनमार्कमें हो जाया करेगी, और उसके एवजमें वह मक्खन, पनीर, गोश्त, अण्डे आदि खाद्य पदार्थ तथा दूध और शराब आदि पेय पदार्थ जर्मनीको भेजा करेगा।

सम्पूर्ण डेनमार्कमें १०१९९२ कारखानें व दूकानें हैं। सारे देशमें शराब उतारनेके चार बड़े कारखाने हैं, जिनमें अंगूरी तथा जौकी शराब बनायी जाती है। इन कारखानोंमें प्रतिवर्ष ९,४४१,००० लिटर अंगूरी शराब तैयार होती है। देशमें शकर बनानेके भी ९ कारखाने हैं, जिनमें प्रतिवर्ष २१६१५० टन शकर चुकन्दरसे तैयार की जाती है। चर्बी

तैयार करनेके लिए देशमें छोटे-बड़े ११७ कारखाने हैं, जिनमें प्रतिवर्ष ७८२०० टन चर्बी तैयार की जाती है। जटलैण्ड प्रायद्वीपके आसपास छिछले जलमें मछलियां भी अधिक मात्रामें पायी जाती हैं। समुद्रके किनारे बन्दरगाहोंमें जहाज बनाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त जर्मनी ४८७२ मील लम्बी वृहत् सड़कों, २७००० मील लम्बी लघु सड़कों तथा ३२०० मील लम्बी रेलोंका स्वामी हो गया है। लगभग एक लाख स्थल और नौसेना तथा ६९ वायुयान भी उसके अधिकारमें आ गये हैं। देशकी सम्पूर्ण फौजी छावनियां, बन्दरगाह तथा हवाई जहाजोंके बड़े-बड़े अड्डे उसकी देखरेखमें हो गये हैं।

रैदास

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

जन्म लिया मोची-घर जिसने ऐसा था रैदास!
उसकी छायासे बचती थी—
यह दुनिया उसपर हंसती थी
पथकी भीड़ बिखर जाती यदि आ जाता वह पास
जन्म लिया चमार-घर जिसने ऐसा था रैदास!

स्वामी रामानन्द स्नानके बाद एक दिन भोर
चले जा रहे थे प्रसन्न प्रभुके मन्दिरकी ओर
किया प्रणाम दूरसे ही नत-मस्तक भक्ति-विभोर
उस रैदास भक्तने उनके चरणोंमें कर जोड़
"सखा! कौन हो तुम?"—पूछा द्विजवरने सहित सनेह

मिला जवाब,—"कौन हूं मैं, मैं हूं बस मिट्टी-खेह—
तुच्छ धूल निशि-दिन रौंदी जो घृणा-उपेक्षा द्वारा
तू स्वामी! घनश्याम दूर नभका जीवनमय प्यारा
बरस जाय इस रेत तुम्हारी यदि करुणाकी धार
तो यह धूल पुकार उठे बन फूल हजार-हजार"

छातीसे तब उसे लगाकर
उसपर निज सनेह बरसाकर
जगा दिया उस मोचीके मन—
स्वामीने उकसा-उकसा—कर
सौ-सौ सुन्दर गीतोंका झञ्झामय एक बतास
जन्म लिया मोची-घर जिसने ऐसा था रैदास!

अनुवादक—केसरी।

लापरवाह

श्री पी० आर० नौटियाल

आंसू देखने ही न देते थे। सब कुछ अन्धकारमय हो रहा था। पर जब जरीसे जड़ी एक लाल रङ्गकी साड़ी पहने कोई आकर खड़ा हुआ, तो वह धुंधलापन भी पहचान गया : अरे सामने सुहागभरी गौरी ही तो खड़ी थी, गौरी—गौरी—मेरी गौरी···मेरी—और एक दिन···।

"गौरी ठीक ही कहती थी!"—हंसते हुए एक लड़की बोली थी।

"क्या कहती थी?" मेरे हृदयमें जिज्ञासा थी।

"कि आप बड़े ही लापरवाह हैं!" कहकर उसने जैसे ताना दिया!

"क्यों?"—मेरी समझमें नहीं आया। माथेपर बल पड़ गये थे!

"वही कहती थी—क्यों? क्या—कैसे?—मैं क्या जानूं, उसीसे जाकर पूछिये न!"

"समझा नहीं!"

"क्यों समझने लगे! तभी तो लापरवाहकी उपाधि मिली है!"—और हंस दी, फिर चुटकी ली—"समझ ही होती, तो समझनेके लिए उसीकी बातें क्या कम थीं?"

"बातें—गौरीकी बातें—कैसी बातें—उसने तो मुझसे आज तक कोई बात नहीं की। समझने या न समझनेका सवाल ही नहीं उठता। खाली चुपसे जो कुछ भी समझा जा सकता है—और कुछ नहीं भी।"—मैंने सच्ची सफाई पेश की।

"कलाकार होकर—इतने विद्वान् होकर भी मौन भाषा नहीं समझते—यह नहीं जानते कि बहुत-सी बातें ऐसी होती हैं, जो न कहनेसे ही ठीक कही जाती हैं।"

"हूं।"—कहा मैंने, लेकिन नजर उठाकर देखा, तो गौरीके फ्लैटके सामने अपनेको खड़ा पाया था। और इतनेमें ही साथवाली लड़की अपने फ्लैटपर खटपट करती चढ़ गयी थी।

बात कुछ अधूरी-सी रह गयी थी, और मैं सब कुछ सह सकता हूं, लेकिन दुविधामें पड़े रहना मुझे पसन्द नहीं—यही सोच रहा था कि गौरी सामनेसे आती दिखाई पड़ी—

"मैं आपको ही देखने जा रही थी?"

"क्यों, खैर तो है?"

"पिताजीकी तबियत ज्यादा खराब है। आपको बुला लानेके लिए कहा तो सबेरे ही था, पर···।

"तो सुबह ही क्यों नहीं आयीं?"

गौरी कुछ न बोली, लेकिन उसकी आंखें आंसुओंसे कुछ कहलाना चाहती थीं।

"अच्छा, तो अन्दर खबर कर दो!"

"नहीं।"—और मेरा हाथ पकड़कर वह मुझे अन्दर खींच ले गयी।

भीतर गया। देखा, वृद्ध घोषाल बाबू आंखें बन्द किये एक तख्तपर लेटे हैं। सिरहाने पड़ी बेञ्चपर मेरे बैठते-बैठते गौरी बङ्गालीमें अपने पिताजीसे बोली—"बाबा, वे आये हैं!"

"सोने दो न!" मैंने हल्का-सा अनुरोध किया। लेकिन इतनेमें ही घोषाल बाबूने आंखें खोल भी दी थीं।

गौरीने फिर कहा—"सुरेश बाबू आये हैं बाबा!"

दोनों ही मुझे देख रहे थे, लेकिन मेरे मुंहसे सहानुभूतिका एक भी शब्द नहीं निकल रहा था। किसी तरह कोशिश करके मैंने कहा—"आप जिस चिन्तासे व्यथित होकर बीमार पड़ गये हैं, वह आज दूर हो गयी है—लीजिये"—और एक हजारका एक चैक घोषाल बाबूके हाथमें दे दिया।

घोषाल बाबूने कांपते हुए हाथोंसे उसे पकड़ा। मुखपर आश्चर्ययुक्त आनन्द आलोकित हो उठा—नेत्रोंमें कृतज्ञता भी। वे उसे हाथमें पकड़े देखतेके देखते ही रह गये—और गौरी?—वह भी गद्गद हो रही थी। एक अजीब प्रसन्नता, कृतज्ञता और श्रद्धाका भाव उसके आननसे टपक रहा था—कुछ लजायी-सी, शरमायी-सी भी थी। और मुझे देखते-देखते न जाने कहां खोयी-सी।

इस विचित्र वातावरणकी नीरवता वृद्धने भङ्ग की—"तो सुरेश बाबू, आपको किन शब्दोंमें धन्यवाद······।"

"धन्यवाद—धन्यवाद—कैसा धन्यवाद—किसके लिए

धन्यवाद—ध—न्य—वा······” और मैं उस एक हजारके चैकका इतिहास पढ़ने लगा थाः—

...उस दिन घर लौटा, तो जरा देर हो गयी थी। चुप-चाप घर पहुंचकर पड़ रहनेका विचार था, पर आया, तो देखा कि एक वृद्ध बङ्गाली महाशय मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरे आते ही नमस्कार करके बोले—“आप ही हैं सुरेश बाबू, सिनेमामें काम करते हैं?”

“जी हां, आइये—बैठिये।”—मैंने दरवाजा खोलकर उन्हें अन्दर बुलाया। कहनेको तो कह दिया इतनी सभ्यतासे, इतने शिष्टाचारसे, लेकिन गुस्सेका पारा बहुत चढ़ गया था। मन कहता था कि कह दो—“अभी निकल जाइये, यहांसे!”

वे बैठ गये। मैंने बनावटी हंसी हंसते हुए कहा—“कहिये?”

वे बोले—“आप नहीं जानते, हम इसी बिल्डिङ्गमें नीचेके फ्लाटमें रहते हैं। हमने सुना कि आप सिनेमामें काम करते हैं, इमें बहुत खुशी हुई। आप तो वहां डिरेक्शन करते हैं न?”

मैंने कहा—“इतनी जङ्गी बिल्डिङ्ग। इसमें इतने घर और न जाने कितनी तरहके आदमी रहते हैं, आखिर किसे-किसे जानूं!”

इसके बाद मैंने उन्हें अपनी सारी योग्यता और पोजी-शनका ब्यौरा बता दिया। भूखके मारे आंतें कुलबुला रही थीं, फिर भी मैं उनकी उपेक्षा न कर सका, क्योंकि वृद्ध महाशय बड़े सङ्कोच और शिष्टतासे बातचीत कर रहे थे। मैंने पूछा—“और आप······?”

“मैं—मेरा नाम मणिकान्त घोषाल है।”

फिर उन्होंने बतलाया कि मैं एक ‘खबर कागज’ का सम्पादक था। फिर सरकारी नौकरी की थी, जिसे असह-योग-आन्दोलनमें छोड़ दिया। तबसे बेकार हूं। दो हजार-का बीमा कराया था, उसीसे किसी तरह खर्च चल रहा है। लेकिन एक लड़की सयानी हो गयी है। शादी उसकी करनी है। रुपयेकी सख्त जरूरत है। एक कहानी लिखी है, वह अगर बिक जाये, तो कन्या-दान आसानीसे हो जाये।

लेकिन इस ‘अगर’ से ‘मगर’ बहुत बड़ी थी। मैं चुप रहा। मुझे चुप्पी साधे देख वह बोले—“देखो भाई, मुझे नामकी जरूरत नहीं। नाम आप अपना दे सकते हैं। मुझे तो बस ५००) रुपये मिल जाने चाहिए। और आप इस कामको आसानीसे करा सकते हैं!”

उनका मतलब था कि कहानी लेकर मैं उन्हें अपने पाससे ५००) दे दूं—और इस तरह उनकी मदद करूं। लेकिन मेरे पास रुपया होता, तब तो दया, धर्म, सहायताकी बात उठती। फिर भी मैंने कहा—“आप कहानी सुनाइये। कामकी होगी, तो कोई-न-कोई प्रबन्ध किया जा सकता है।”

“अच्छा, तो हम आते हैं।” कहकर वे चले गये।

लेकिन मेरी नींद हराम हो गयी। बुड्ढेकी चिन्ता मेरे सिरपर सवार हो गयी—लड़कीकी शादी—और दहेज!—दहेज! बिना इसके कैसे काम चल सकता है? तो जैसे भी हो, इनकी सहायता करनी ही होगी!

घोषाल बाबू हाथमें कुछ कागज लेकर आये और बैठते हुए बोले—“आपको कुछ कष्ट दे रहा हूं—क्षमा कीजियेगा।”

“नहीं, कोई बात नहीं—आप सुनाइये।”

वे कहानी सुनाने लगे। कहानी बहुत अच्छी थी और मुझे विश्वास हो गया कि अगर एक हजार नहीं, तो सात-आठ सौ तो कहीं गये नहीं। डाइरेक्टर तो इसे सुनकर लेखकका हाथ चूम लेगा। मैं इन्हीं आशाओंमें डूब रहा था कि एक महीन आवाज आयी—“बाबा!”

घोषाल बाबू बङ्गालीमें बोले—“चाय लायी हो बिटिया?”

और उसने अपनी भाषामें ही उत्तर दिया—“ले आयी हूं बाबा!”

“भीतर ले आओ!”

एक चौदह-पन्द्रह वर्षकी लड़की दो प्याले चायके लेकर अन्दर आयी।

घोषाल बाबू मेरी तरफ होकर बोले—“यही मेरी लड़की है—गौरी!” और गौरीकी तरफ मुड़कर बङ्गालीमें बोले—“यही हमारे सुरेश बाबू हैं, फिल्म-संसारके एक बड़े आदमी हैं। बड़े सज्जन हैं। मुझे बहुत अच्छे लगे।”

गौरीने हाथ जोड़कर चुपकेसे नमस्कार किया। मैंने उत्तर दिया, पर वह ठहरी नहीं। चली गयी।

चाय अपने सामने देखकर मुझे बड़ी शर्म मालूम हुई—“क्षमा कीजियेगा घोषाल बाबू। कुछ बातोंमें मुझे चायका

ध्यान ही नहीं रहा। यहीं बननी चाहिए थी। व्यर्थ ही आपको कष्ट उठाना पड़ा।"

"नहीं-नहीं—सब आपका ही तो है। आपकी फैमिली कहां है?"

"फैमिली कैसी घोषाल बाबू?"

"आपकी पत्नी—घरके लोग?"

"मैं अकेला हूं। मेरा और कोई नहीं है।"

"और कोई नहीं?—क्या कहते हैं?"

"हां, सचमुच नहीं!"

"अभी तक आपका विवाह नहीं हुआ है! बड़ा ताज्जुब है। तब तो आपको बड़ा कष्ट होता होगा।"

"खैर, छोड़िये इस घरेलू जञ्जालकी बात। तो फिर कहानीका क्या मामला हो?"

"जैसा आप उचित समझें!"

"कहानी तो ठीक है, पर उसे अभी बनाना होगा!"

"हां, जो भी आप ठीक समझें, करें। हमें कोई आपत्ति नहीं।"

"तो कलसे रोज सुबहको आप यहां आ जाया करें। हम लोग साथ मिलकर विचारकर उचित संशोधन कर लेंगे।"

यह कार्यक्रम निश्चित हो गया और दूसरे दिनसे चलने लगा। हम लोग खुले दिलसे कहानीकी आलोचना-प्रत्यालोचना करते थे, और समुचित परिवर्तन तथा परिवर्द्धन करते जाते थे। और रोज ही गौरी चाय और नाश्ता ले आती और अक्सर कहानीकी बहस दिलचस्पीसे सुनने बैठ जाती। कुछ समझती थी या नहीं, सो नहीं कह सकता; लेकिन उसकी मुद्रासे यह जरूर स्पष्ट था कि वह तन्मय होती। और अगर मुझे अपनी इस तन्मयताको तोड़ते देख लेती, तो लजाकर लाल हो जाती!

दिन यों ही बीतने लगे। कहानी प्रायः आधी बन गयी थी। पहले जब दिनभरका थका-मांदा क्लान्तमन कमरेमें वापस लौटता था, तो बस सोते ही रहनेको जी चाहता था। सवेरा जल्दी होता मालूम होता और मुझे क्रोध आ जाता था। अब रातको सोता हूं, तो कल सवेरेकी सरस आशाओंको स्वप्नोंकी जगह आंखोंमें लेकर—और सवेरा अब निष्ठुर हो चला था—निष्ठुर प्रेयसीकी तरह ही—अब वह देरसे होता लगता था। मैं जगकर ही अक्सर क्षितिज-पर लालिमाकी एक रेख देखनेके लिए आकुल प्रतीक्षा करता रहता!

एक दिन सवेरा हुआ तो, लेकिन नहीं हुआ।

आठ बजे। साढ़े आठ बजे—नौ बजे और बजते ही चले गये। घोषाल बाबू नहीं आये, नहीं आये। जी करता था कि नीचे जाकर गौरीसे ही क्यों न पूछ लूं कि क्या बात है, क्यों नहीं आये? अरे नहीं आये, तो मुझे इतनी फिक्र क्यों—काम जिसका है, उसे फिक्र हो—लेकिन नहीं-नहीं—काम उनका ही तो नहीं है—

इतनेमें ही गौरी चाय-नाश्ता लिये सामने खड़ी थी—"बाबा आज नहीं आ सके—शरीर खराब है।"

गौरीकी हिन्दी मुझे प्यारी लग रही थी। मैंने पूछनेके लिए होंठ भी न खोल पाये थे कि वह जा भी चुकी थी! मैं हताश बैठा रह गया।

और एक दिन बीतनेके बाद, एक पखवारा भी ऐसे ही बीत गया। घोषाल बाबू नहीं आये। और गौरी भी नहीं आयी। मेरी चिन्ता बढ़ गयी—मेरा नौकर चाय लाया, तो मैंने उससे पूछा—"क्यों रे, गौरी तो किसी वक्त मुझे देखने नहीं आयी थी?"

"नहीं तो। उसके पिता आजकल बीमार हैं। टायफायड है!"

"टायफायड! तुम्हें किसने कहा?"

"कल उन्होंने मुझसे दवा मंगायी थी। डाक्टर कहता था कि हालत अच्छी नहीं है, संभालकर रखना चाहिए!"

"उनके पास कोई नौकर-चाकर नहीं है क्या?"

"नहीं। गौरी है और उसकी मां। बस और कोई नहीं।"

मैं परेशान हो गया। कारण समझते देर नहीं लगी। पैसेकी तङ्गी हारी-बीमारीमें तो और भी खल जाती है। देनेको तो मैं ही दस-पांच रुपया दे सकता हूं, पर उससे क्या होगा? कहानी अभी तक बिकी नहीं। हो तो कैसे क्या हो? कहानी तो पूरी हो आयी है, दो-एक सीन शेष हैं, सो आज पूरे कर लूंगा। लेकिन कोई ऐसा भलामानस तो नहीं है कि रुपया मांगनेके साथ ही फौरन् दे दे। तब? खैर, किसी तरह जल्दीसे जाकर कहानी समाप्त कर दी। फिर

तबियतमें आया कि घोषाल बाबूको यह खुशखबरी सुना आऊं—और गौरीको भी—लेकिन खाली हाथ—बिना पैसेके खुशी कैसी ? आजकी दुनियामें तो पैसा और खुशी पर्यायवाची हैं। फिर भी चल दिया। घोषाल बाबूका दरवाजा बन्द था। जैसे जानमें जान आयी। भूल आपही ठीक हो गयी। फिर लौट आया और सीधा आफिस चला गया। वहां डाइरेक्टरसे मिला। कहानी उन्हें बहुत पसन्द आयी और मञ्जूर भी कर ली, लेकिन रुपयेके लिए 'तीन महीने बाद' कहा। मेरी जैसे जान निकल गयी। साहस बटोरकर मैंने लेखककी परिस्थिति तिल-तिल समझायी—और मुझे सफलता मिल गयी। एक हजारका चेक मेरे हाथमें था।

हवाके घोड़ेपर सवार होकर मैं घरकी तरफ भागा। गौरी—घोषाल बाबू—ओह! एक अप्रत्याशित आनन्द—यही सोचता आता था।

मुहल्लेमें घुसा ही था कि कालेजसे लौटती हुई लड़कियोंका एक दल मिल गया। संकरा रास्ता, और इतनी सारी लड़कियां कि रास्ता घिरा हुआ था। मैं किसी तरह पीछे-पीछे चलने लगा। पर आगे बढ़नेकी चेष्टा मेरी उत्सुकता बराबर कर रही थी। वे धीरे-धीरे जा रही थीं। मैंने दीवालका हाथसे सहारा लिया और एक छलांग मारी। गिरते-गिरते बचा। लड़कियां हंसने लगीं—ठहाका मारकर। मैं झेंप गया। लम्बे-लम्बे डग बढ़ाये, पर पीछेसे किसीने पुकारा—"सुरेश बाबू!" मैं रुक गया। —"बड़ी आर्टिस्टिक चाल चलते हैं आप। हमने तो समझा था कि आप अब गिरे, अब गिरे। हम लोगोंको मदद करनी पड़ेगी। लेकिन आप क्यों गिरने लगे—ऊंचे चढ़ते ही हैं—आर्टिस्ट जो ठहरे!"

"इसके मानी हैं कि मेरे गिरनेसे आपको खुशी होती! क्यों?"

"खुशी तो शायद न होती, पर एक आर्टिस्टको सहायता करनेका सौभाग्य तो अवश्य ही प्राप्त होता!"

"तो क्या वह सौभाग्य गिराकर ही मिल सकता था? और फिर आर्टिस्टमें ही कौन-से सुर्खाबके पर लगे होते हैं? क्या वह आदमी नहीं होता? फिर कोई विशेष मोह क्यों?"

"आर्टिस्टके लिए हमारा ही नहीं, सारे संसारका मोह है। लोग पैसा खर्च करके आर्टिस्टोंको सिनेमामें देखने जाते हैं—उनका सुख-दुख वे केवल पर्देपर देख ही सकते हैं, चाहनेपर भी कोई मदद नहीं कर सकते! पर यहां वह अवसर हमें आसानीसे मिल जाता!"

"वह अवसर तो बिना किसी दुर्घटनाके भी आप लोगोंके चाहनेपर मिल सकता है। आप लोगोंकी सहायता भला कौन स्वीकार नहीं करेगा! खैर, छोड़िये इन भावुकताकी बातोंको। आप लोग अपना परिचय तो दीजिये!"

उसी लड़कीने कहना शुरू किया—"हम सब इसी मुहल्लेमें रहती हैं, और मैं तो आपकी ही बिल्डिङ्गमें रहती हूं। हम सब लोग यहीं कालेजमें पढ़ती हैं। गौरी मेरी सहेली है, उसीसे आपकी तारीफ सुनी थी। एक दिन आपको दिखाकर उसीने कहा था—'सुरेश बाबू यही हैं—हमारी बहुत मदद करते हैं—बड़े उदार हैं—इनके दिलमें बड़ी दया—' सचमुच सुरेश बाबू, गौरीके कुटुम्बकी सहायता आपको करनी चाहिए। बेचारे बड़ी मुसीबतमें हैं—और आजकल तो उसके पिताजी बीमार भी हैं!"

"गौरी—गौरी—" मैं जैसे सोनेसे जागा, और अपनेको संभालकर बोला—"ओह, अच्छा जाता हूं!"

"चलिये, मैं भी वहीं चल रही हूं।"

और लड़कियोंने अपने-अपने घरका रास्ता लिया। मैं और गौरीकी सहेली साथ चलने लगे। उतावली मेरे पैरोंकी चालको जरूरतसे ज्यादा तेज किये दे रही थी। मैं भागा-सा जा रहा था। सोचा—क्या औरतोंके साथ इसी तरह चला जाता है—कैसा पागल हूं मैं—इतनेमें ही वह काफी पिछड़ गयी थी; वहींसे चिल्लाकर बोली—"सुरेश बाबू, भागते क्यों हैं, साथ ही चलिये!"

मैं रुक गया। अपनी बात रखनेके लिए कहा—"मैं तो नहीं भाग रहा हूं। आप ही धीरे-धीरे चल रही हैं!"

"लेकिन आर्टिस्ट होते हुए भी सुरेश बाबू आपको स्त्रियोंके साथ चलना नहीं आता!"

"तो क्या यह जरूरी क्वालीफिकेशन है आर्टिस्टकी—कि वह स्त्रियोंके साथ रेंगता हुआ चले?"

"गौरी ठीक ही कहती थी।"—हंसते हुए वह बोली थी।

वही गौरी सामने खोयी-सी बैठी है।—फिर धन्यवाद—ध-न्य-वा—इसकी क्या अब भी कोई जरूरत है!

"तो धन्यवाद देनेकी क्या जरूरत है घोषाल बाबू। जैसे आपका काम, वैसे मेरा काम! और आप दवा किसकी

करा रहे हैं?"—कहकर मैंने गौरीकी तरफ मुंह किया।

"डाक्टरके पास भेजनेको कोई आदमी ही नहीं मिलता। एक होम्योपैथिक दवा खा रहे हैं, लेकिन कुछ ठीक नहीं होता!"

"कोई आदमी नहीं—तो मुझसे क्यों नहीं कहा? मेरे नौकरसे ही कह दिया होता! आखिर सङ्कोच किस बातका?" मैंने साश्चर्य पूछा।

"सुरेश बाबू!...सब आपकी ही तो दया है"—और दीनता ही जैसे उनकी आंखोंसे बोल रही थी।

रुपया सबसे बड़ा इलाज है, सो वह अब मौजूद था। घोषाल बाबू अच्छे हो गये थे। अब केवल एक बीमारी और दूर करनी थी—उसके लिए एक सुयोग्य वरकी तलाश थी। एक दिन घोषाल बाबू मेरे पास आकर कहने लगे—"भाई, आपकी दया हम कभी नहीं भूल सकते। एक महीनेके लिए मैं घरसे जा रहा हूं। घरको कभी-कभी देखते-भालते रहियेगा।" —स्वरमें विनम्रता बहुत थी। मैंने कहा—"आप फिक्र न करिये। सब ठीक ही रहेगा। आप गौरीसे कह दीजिये कि जिस चीजकी जिस वक्त भी जरूरत हो, तुरन्त मुझसे कहे।"

"हां हां—हमने पहले ही कह दिया है।"—कहकर वे चले गये।

सात दिन बीत गये, लेकिन गौरी एक बार भी नहीं आयी। मैंने सोचा—वह तो मुझे लापरवाह समझती है—फिर क्यों मेरे पास आने लगी? मैं भी नहीं जाऊंगा फिर—ऐसे ही सही—और मेरी नजर दरवाजेपर किसीके खड़े होनेका आभास पाकर उधर ही चली गयी! गौरी ही तो थी! मैंने कहा—"आओ गौरी!"

"मांने चाय पीनेके लिए बुलाया है।"—गौरीने भीतर पैर रखते हुए कहा। मैंने जरा स्वाभिमानपूर्ण स्वरमें उत्तर दिया—"आज तुम लोगोंको मेरी याद कैसे आयी? इधर क्यों भूल पड़ीं?"

"हमारी बात छोड़िये। लेकिन आपको भी तो हमारी याद नहीं आयी। याद आनेपर भी हम तो कुछ नहीं कर सकते थे—पर क्या आपको भी नहीं आना था?"

"क्या तुम्हारे यहां आनेमें कोई अड़चन थी? क्या कोई नाराज होता है? 'हम तो कुछ नहीं कर सकते थे' का क्या मतलब है?"

"नहीं—पर—"

"पर मैं परवाह नहीं करूंगा—इसी डरसे, क्यों?"

"यह भी हो सकता है, पर यह सब आपसे कहा किसने?"

"हमारे मनने! सच कहो गौरी, क्या मैं तुम्हारी परवाह नहीं करता?"

"सुरेश बाबू, मांने आपको बुलाया है—चलिये न!"—गौरीने जैसे मेरी बात सुनी ही नहीं।

"जवाब क्यों नहीं देतीं...?"

"आप चलिये—मांने बुलाया है। देरी हो रही है—आइये।"—कहते-कहते वह कमरेसे चली गयी।

मैंने पैरोंमें चप्पल डाली और गौरीके यहां फौरन् ही पहुंच गया।

चाय रखते हुए गौरीकी मां बोलीं—"बेटा, तुम क्या नाराज हो गये?"

"नहीं तो मांजी! नाराज क्यों हूंगा?"

दूसरे दिन जब मैं बिस्तरसे उठनेकी चेष्टा कर रहा था, तो मेरे हृदयमें एकाएक एक कोमल कल्पना दौड़ गयी, आंखोंके सामने एक प्यारी-प्यारी-सी तसवीर घूम रही थी। क्या जाने मैंने क्या लापरवाही की है?.........कहीं मैं गलत रास्तेपर तो नहीं......नहीं, आज मैं गौरीसे स्पष्ट कह दूंगा, मैं कह दूंगा—नहीं-नहीं गौरी, मैं तुम्हारी उपेक्षा नहीं करता—तुम्हारी मैं सबसे ज्यादा परवाह करता हूं—क्या सचमुच तुम अपनी मौन भाषामें मुझसे कुछ कहा करती थीं? नहीं-नहीं, तुमने मुझसे कभी भी कुछ नहीं कहा, अगर तुम कहतीं, तो मैं अवश्य ही उसकी परवाह करता, मैं लापरवाह नहीं हूं। नहीं, मैं कुछ भी नहीं कहूंगा, यदि मैंने उससे कुछ भी कहा, तो वह समझेगी कि थोड़ी-सी मदद की है, तो उसका बदला किस भयङ्करतासे लिया जा रहा है, किसीके मनपर जबर्दस्ती कब्जा करनेका प्रयत्न किया जा रहा है! नहीं, मुझे कोई अधिकार ही नहीं है कि मैं किसीसे इस तरहकी बातें करूं! मगर फिर उसने उस लड़कीसे यह क्यों कहा—मैं लापरवाह हूं—वह लड़की ही फिर ऐसा क्यों कहती थी कि उसकी मौन भाषाको तुम नहीं समझ सके—क्या वह झूठ बोलती थी? मगर उसे इस तरहका झूठ बोलनेकी क्या जरूरत थी; उसने झूठ नहीं कहा...गौरी मुझे चाहती है, वह अवश्य मुझसे प्रेम करती है,...........न जाने कब तक मैं इसी विचारमें तन्मय रहता, यदि 'सुरेश बाबू!' इस

सम्बोधनसे मेरी विचार-धारा न टूटती—मैं चौंककर उठ बैठा, वृद्ध महाशय दरवाजेपर खड़े थे!—प्रणाम किया—बोला—"आइये, आप आये कब?"

"यही ८ बजेकी गाड़ीसे तो आया हूं। हमको आपका सहयोग सौभाग्यसे ही मिला है—गौरीके लिए एक बहुत अच्छा लड़का मिल गया है! बी० ए० पास है, स्कूलमें मास्टरी करता है, दहेजमें कुछ भी नहीं लेगा, राष्ट्रीय विचारका लड़का है—ठीक आप जैसा स्वभाव और चेहरा!"

क्षण-भरमें मेरा दिमाग झनझनाने लगा, पैरों-तलेसे जैसे जमीन खिसक गयी, अस्फुट स्वरमें मुंहसे निकला—"अच्छा!"

आग्रहपूर्वक घोषाल बाबूने कहा—"तुम्हारे जैसे भाग्यवान बेटेका संसर्ग मिला, इसीलिए यह काम हुआ, नहीं तो हमारे भाग्यमें कहां था?"

बड़े कष्टसे हास्यकी एक रेखा मुखपर लाते हुए मैंने कहा—"बड़ी खुशीकी खबर है। कब तक विवाह होगा?"

"जल्दी ही!" कहकर वृद्ध महाशय उठ खड़े हुए। बोले—"अभी तक स्नान भी नहीं किया, अब मैं जाऊं, फिर मिलूंगा!"

उदास भावसे मैं खिड़कीसे बाहर ताकने लगा; लगा, जैसे मेरा सर्वस्व लुट गया हो! इसी वक्त दबे पांव गौरी आकर चारपाईके पास खड़ी हो गयी—चाय और नाश्ता लिये थी। इच्छा हुई, गौरीको बधाई दूं—मनकी बात मन ही में रखूं, पर गौरी स्वयं ही बोल बैठी—"तुम क्या अभी भी चुप रहोगे?" उसके 'तुम' शब्दको सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। हाथकी चीजोंको मेजपर रखकर वह कोनेके पास बैठ गयी और हूक-हूककर रोने लगी।

एक अप्रत्याशित घटना होते हुए भी मैं विचलित न हुआ। धीरेसे जाकर मैंने दोनों हाथोंके सहारे उसे उठाया! मेरे कन्धेमें मुख छिपाकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। आंसुओंसे मेरी कमीज भींग गयी। मेरा सारा शरीर कांप रहा था, मुखसे एक भी शब्द नहीं निकलता था! गौरीकी पीठपर हाथ रखकर मैं चुप ही रहा। क्षणभर बाद मैंने कहा—"तुम तो मेरे मनकी बातोंको समझती थीं गौरी, फिर भी तुमने अपने मनकी बात मुझे इशारेसे भी नहीं समझायी—मुझे तो तुमसे कुछ भी कहनेका साहस ही नहीं होता था, और इसीलिए मैं दो मिनट पहले भी अपने ही मनकी आन्तरिक भावनाको समझनेमें भी असमर्थ था। तुमने उस भावनाको समझनेका मौका ही नहीं दिया। इसके अलावा मेरे पास क्या है, धन-सम्पत्ति कुछ भी तो नहीं, घर-बार मैं जानता तक नहीं, किस भरोसे तुम्हें कुछ कहता, और अब भी कुछ तुम्हारे पिताजीसे कहूं! चुपके सिवा और क्या उपाय है?"

"मैं धन-दौलतके लिए तुम्हारे पास नहीं आना चाहती और तुम अपने आपको अगर धोखेमें रखना चाहते हो, तो तुम्हारी मर्जी!"

गौरी कह रही थी कि नीचेसे उसकी मांकी आवाज सुनाई दी—"गौरी!" "गौरी जाओ, मां बुला रही है।" और गौरी एकदम उठकर चली गयी।

उस दिनसे मैंने अपना दूसरा ही प्रोग्राम बना लिया। रातको १२ बजे आता, सुबह ७ बजेसे पहले चला जाता। वह मकान, वह मुहल्ला, मुझे सब कुछ खानेको दौड़ता। गौरीका समाचार मुझे नौकरसे प्रायः रोज ही मिल जाता था। गौरी प्रायः रोज ही आकर नौकरसे मेरे विषयमें पूछ लेती थी। गौरीके विवाहके दिन मैं किसी तरह न रह सका, उनके घरपर चला ही गया! गौरीके माता-पिता दोनोंने मुझे घेरकर पूछना आरम्भ किया—"क्यों नहीं आते? क्या हुआ?" खैर, बहाना बनाया। अन्दर गौरीके पास गया, देखा, उन्हीं पूर्व-परिचित कालेज-कन्याओंसे गौरी घिरी हुई है। गया नहीं, लौट आया। ठहर नहीं सका। सिर-दर्दका बहाना बनाकर अपने कमरेमें गया। चारपाईपर लेट गया। किसी तरह मनको न समझा सका, आंसू बन्द ही न होते थे।

आज गौरी मेरी नहीं रही। वह जा रही है। ओह! कितनी सुन्दर लग रही है इस विवाहकी सुहाग-साड़ीमें—यौवनकी सुन्दरता साकार बनकर उतर आयी है—पर गौरी—गौरी—

"तुम रोते हो?"

अरे मैं रो रहा हूं, मुझे ध्यान आया। और इस ध्यानके साथ ही एक सरस मृदुल भार मेरे सीनेपर था—

भार सजल हो उठा—

मेरे सीनेसे चिपटी गौरी रो रही थी।

"मुझे भूलोगे तो नहीं......मैं चाहती हूं, तुम हमेशा मुझे याद रखो—बोलो—बोलो—भूलोगे तो नहीं!"

और फिर वह सिसकने लगी—

मैं चुप रहा। क्या कहता। धुंधलापन गहरा होकर अन्धकार बनता जा रहा था।

"मुसलिम गोखले" ?

"मेरी इच्छा मुसलिम गोखले बननेकी है"—आत्म-प्रकाशनकी एकान्त घड़ियोंमें कुछ ऐसे ही उद्गार स्वर्गीय गोखलेके एक प्रिय मुसलिम शिष्यके मुंहसे निकले थे। अपनी उग्र राष्ट्रीयता एवं प्रबल देशभक्तिके कारण इस युवकने थोड़े ही दिनोंमें राजनीतिक क्षेत्रमें यथेष्ट लोकप्रियता प्राप्त कर ली तथा देशके नेताओंकी प्रथम पंक्तिमें हिन्दू-मुसलिम एकताके अग्रदूतके रूपमें आ गया। देशके नेतागण इस युवकके सम्बन्धमें बड़े उच्च विचार रखते थे, देशको भी उससे बड़ी-बड़ी आशायें थीं; परन्तु महत्त्वाकांक्षाओंने उसकी राजनीतिक विचार-धाराका प्रवाह बदल दिया, और किसी दिनका उग्र राष्ट्रीय युवक, आज लगभग ६९ वर्षकी आयुमें फिरका-परस्तोंका सरदार बना बैठा है। जिस व्यक्तिका हम उल्लेख कर रहे हैं, वह है मुसलिम लीगका स्थायी सभापति कायदे आजम मुहम्मद अली जिन्ना। वर्तमान सङ्कटकी परिस्थितिमें अपनी साम्प्रदायिक नीतिके कारण जनाब जिन्ना अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर रहे हैं और साम्प्रदायिकताके इतिहासमें वे अपनी उपर्युक्त विशेषताके कारण अमर रहेंगे।

दिसम्बर १८७६ के अन्तिम सप्ताहमें, करांचीके एक धनवान खोजा परिवारमें जनाब जिन्ना साहिबका जन्म हुआ था। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा करांचीमें ही हुई और वे सन् १८९२ में ही, सोलह वर्षकी अल्पायुमें उच्च शिक्षाके लिए इंगलैण्ड भेज दिये गये। इंगलैण्डमें वे स्वर्गीय दादा-भाई नौरोजीके सम्पर्कमें आये, जिन्होंने उन्हें राष्ट्रीयताका पहला पाठ पढ़ाया। विदेशमें चार वर्ष रहनेके उपरान्त, जिन्ना बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। १८९७ से ही उन्होंने भारतमें वकालत करनी शुरू की। अभी तक उनकी राज-नीतिक धारणायें निश्चित न थीं और न उन्हें जीवनका ही कुछ अनुभव था। अभी वे भविष्यके सुनहले स्वप्न ही देख रहे थे कि उन्हें एक दिन विषम दारिद्र्यका सामना करना पड़ा। उनका कारोबार बैठ गया और उन्हें पैसेके लिए दूसरोंका मोहताज होना पड़ा। सम्पत्तिकी खोजमें वे बम्बई गये और वहां वकालत शुरू की; परन्तु वहां भी तीन साल बड़ी कठिनाईसे गुजरे। तीन सालके बाद उनके सितारे फिर चमके—उन्हें थोड़ी बहुत सफलता मिलने लगी। वे लगन और परिश्रमके साथ अपने व्यवसायमें लगे रहे और थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने इतनी उन्नति और लोकप्रियता प्राप्त कर ली कि वे भारतके अच्छे-अच्छे वकीलोंमें गिने जाने लगे।

इस समय वे युवक थे—उनकी धमनियोंमें यौवनका गर्म रक्त बह रहा था और उनके हृदयमें देशभक्तिके बीज तो कई वर्ष पूर्व इंगलैण्डमें स्वर्गीय दादाभाई नौरोजी द्वारा बोये ही जा चुके थे। बम्बईमें वे स्वर्गीय गोपालकृष्ण गोखलेके सम्पर्कमें आये। श्री गोखलेकी राजनीतिने उन्हें इतना अधिक प्रभावित किया कि जिन्नाने उन्हें अपना गुरु और आदर्श बना लिया। स्वर्गीय बदरुद्दीन तैयबजी और स्वर्गीय सर फिरोजशाह मेहताके उदाहरणसे उन्हें प्रेरणा मिली और वे कांग्रेसके कार्यमें क्रियात्मक भाग लेने लगे। १९१० में, उन्हें बम्बईके मुसलमानोंने एसेम्बलीके लिए अपना प्रतिनिधि चुना।

१९१३ में वे पुनः भ्रमणके विचारसे इंगलैण्ड गये। वहां

उन्होंने विद्यार्थी सङ्घकी ओरसे कार्य किया तथा आन्दोलन चलाया। वहांसे ख्याति एवं लोकप्रियता प्राप्त कर, १९१४ में जब वे भारत लौटे, तब वे भारतमें अधिक न ठहर सके। उसी वर्ष उन्हें अखिल भारतीय कांग्रेसके डेपुटेशनमें, भारतके एक प्रतिनिधिकी हैसियतसे पुनः इंगलैण्ड जाना पड़ा। यह उनका बड़ा सम्मान था कि वे उस आयुमें उतने गौरव-पूर्ण पदके लिए निर्वाचित किये गये। परन्तु थे वे इस मानके सर्वथा योग्य। उन्हें भारतकी परिस्थितिका अच्छा अध्ययन था तथा वे एक सुयोग्य वक्ता भी थे। इंगलैण्डसे वे और भी अधिक लोकप्रियता प्राप्त कर लौटे। दूसरी बार वे पुनः बम्बईके मुसलमानों द्वारा बड़ी धारा-सभाके सदस्य चुने गये और प्रायः तबसे ही वे उसके सम्पर्कमें रहे आते हैं।

१९१२ में कतिपय मुसलमान नेताओंके उद्योगसे, जातीय हितोंकी रक्षाके लिए एक 'मुसलिम लीग' की स्थापना हुई थी। सर्वप्रथम तो यह संस्था पूर्ण रूपसे साम्प्रदायिक थी; परन्तु कुछ वर्ष पश्चात् इसके विधानमें किञ्चित् परिवर्तन कर, इसके ध्येयमें कुछ राष्ट्रीयताकी भावना लादी गयी। उग्र राष्ट्रवादी जिन्नाने ऐसी साम्प्रदायिक संस्थासे कोई सम्बन्ध न रखनेका विचार किया। कार्यकर्ताओं द्वारा विशेष रूपसे आमन्त्रित किये जानेपर वे लीगके अधिवेशनमें कलकत्ता गये। वहां उन्होंने लीगके साम्प्रदायिक कार्य-क्रममें कोई हिस्सा न लिया। हां, संस्थाके विधानमें किये गये राष्ट्रीय संशोधनोंकी प्रशंसा उन्होंने अवश्य की। परन्तु अभी भी वे इस संस्थाके सदस्य नहीं हुए थे। १९१३ में जब वे इंगलैण्डमें थे, तब स्वर्गीय मुहम्मद अली तथा वजीर हसन महोदयने उनसे भेंट कर लीगका सदस्य बननेका आग्रह किया। जिन्ना सदस्य बन तो गये; परन्तु उन्होंने यह स्पष्ट घोषित कर दिया कि वे साम्प्रदायिक कार्योंसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय कार्य समझते हैं, अतः वे कांग्रेसका अहित कर मुसलिम लीगका कोई हित न कर सकेंगे।

जिन्ना एक नेताकी हैसियतसे अब काफी लोकप्रिय हो गये थे। उन्होंने सच्चे हृदयसे हिन्दू-मुसलिम एकताके लिए प्रयत्न प्रारम्भ किये। १९१५ में श्री गोखलेकी असामयिक मृत्युसे दोनों जातियां एक-दूसरेके पास आयीं और उनमें मैत्री बढ़ी। उस वर्ष कांग्रेसका अधिवेशन बम्बईमें हुआ, और वहीं मुसलिम लीगका अधिवेशन राष्ट्रीय सप्ताहमें हुआ। जिन्नाके प्रयत्नोंसे दोनों दलोंके नेता एक-दूसरेके समीप आये और उनमें कुछ अस्थिर समझौते भी हुए। जिन्ना अपने प्रयत्नोंमें आंशिक रूपसे सफल हुए।

होमरूल आन्दोलनके दिनोंमें पहले तो जिन्ना महोदयने उसमें कोई क्रियात्मक भाग नहीं लिया; परन्तु जब श्रीमती एनी बीसेण्ट जेल भेज दी गयीं, तब वे अपने आपको न रोक सके। उन्होंने आन्दोलनमें भाग लेना शुरू किया और कुछ ही दिन बाद बम्बईकी होमरूल लीगके सभापतिकी हैसियतसे आन्दोलनका सञ्चालन करने लगे।

गत विश्वव्यापी महायुद्धकी समाप्तिपर, जब भारत स्वराज्यके स्वप्न देख रहा था, रौलट एक्ट और जलियान-वाला बागकी घटनाओंने उसे सोतेसे जगा दिया। हिन्दू और मुसलमान दोनों जातियोंने सम्मिलित रूपसे राष्ट्रीय अपमान-का बदला लेनेका निश्चय किया और महात्मा गांधीके नेतृत्वमें असहयोग आन्दोलन चला। परन्तु श्री जिन्ना इस आन्दोलनके विरोधी थे। १९२१ में अहमदाबादमें मुसलिम लीगका चौदहवां ऐतिहासिक अधिवेशन हुआ, जिसमें महात्मा गांधी तथा कांग्रेसके अन्य प्रमुख नेता उपस्थित थे। लीगको कांग्रेसके सत्याग्रहके प्रति सहानुभूति थी और कांग्रेसको लीगकी खिलाफतके प्रति। दोनोंने एक-दूसरेको खूब सहयोग दिया। अभाग्यवश चौरी-चौरा तथा अन्य दुर्घटनाओंके इस प्रसङ्गमें हो जानेके कारण गांधीजीको सत्याग्रह बन्द करना पड़ा। शासनकी कूटनीतिके कारण देशमें स्थान-स्थानपर साम्प्रदायिक दङ्गे हुए, जिनके परिणाम-स्वरूप हिन्दू और मुसलमानोंके बीचकी खाई पुनः जैसीकी तैसी चौड़ी और गहरी हो गयी।

जिन्ना साहिबके विचारोंमें अब साम्प्रदायिकता आ गयी थी, और उनका दृष्टिकोण अब उतना व्यापक न रह कुछ संकुचित हो चला था। उनके नेतृत्वमें उनकी इस नयी मनो-वृत्तिका आभास मिलने लगा था; परन्तु १९२७ में उन्होंने पुनः हिन्दू-मुसलिम ऐक्यके लिए प्रयास किया। दुर्भाग्यवश उन्हें सफलता न मिल सकी।

इसी समय श्री जिन्ना भारतीय राजनीतिके रङ्गमञ्चपर एक नये रूपमें आये। उनका यह नया स्वरूप एक अवसरवादी एवं प्रतिगामीका था। कांग्रेस तथा हिन्दू महासभा द्वारा बनाये भारतीय शासन-विधानका विरोध उन्होंने खुले रूपसे

साम्प्रदायिक नेताके रूपमें किया। इसी समय उन्होंने अपने चौदह सवाल पेश किये।

सर्वदल सम्मेलनके कार्यक्रममें मुसलिम लीगने १९२८ की बैठकोंमें हिस्सा लिया था। सम्मेलन असफल रहा, क्योंकि वह मुसलिम लीगकी मांगोंको स्वीकार न कर सका। द्वितीय राउण्ड टेबिल कान्फरेन्समें जहां एक दलने एक ओर नेहरू कमेटीकी मांगोंको स्वीकार करानेका यत्न किया, जिन्ना साहबने अपने चौदह सवाल रखे। हिन्दू-मुसलिम समस्या हल न की जा सकी।

द्वितीय राउण्ड टेबिल कान्फरेन्सके बादसे आज तक जिन्ना महोदयने क्या किया है—उनकी क्या नीति रही है—यह सर्वविदित है। १९३९ के सुधारोंके आनेपर भारतीय राष्ट्रीय महासभाका विरोध करनेके लिए उन्होंने मृतप्राय मुसलिम लीगका पुनः सङ्गठन किया, और भारतमें साम्प्रदायिकताका जहर फैलानेके लिए जी-जानसे प्रयत्न किया। पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रोंकी मांगसे ही उन्होंने भारतीय राष्ट्रीयतापर पहला घातक वार किया। पण्डित जवाहरलाल द्वारा किये जानेवाले हिन्दू-मुसलिम एकताके प्रयत्नको उन्होंने अपनी 'मुक्ति-दिवस' की अपीलसे बीचमें ही रोक दिया। अब लाहौरके प्रस्ताव द्वारा वे भारतके विभाजनके स्वप्न देख रहे हैं। देखें, भविष्यमें वे और कौन-सी योजना बनाते हैं!

श्री जिन्नाके अतीत एवं वर्तमान राजनीतिक जीवनपर दृष्टिपात करनेसे आश्चर्य होता है। क्या ऐसा परिवर्तन सम्भव है? क्या श्री जिन्ना अपनी आन्तरिक इच्छाकी पूर्ति कर 'मुसलिम गोखले' बन गये हैं? क्या उनकी अब भी यही इच्छा है?

—श्यामाचरण दुबे

"जनानिस्तान"

मि० मुहम्मद अली जिन्नाकी पाकिस्तान योजनापर एक व्यंग्यात्मक लेख आचार्य कृपलानीने लिखा है, जो कई दृष्टियोंसे व्यंग्य-साहित्यकी एक मूल्यवान् चीज है। रचनाका कुछ अंश यों है :—

इस समय भारतको विभिन्न प्रदेशोंमें बांटनेकी योजनाओंपर विचार हो रहा है। चारों ओरसे भारतके टुकड़े-टुकड़े करनेकी आवाजें उठ रही हैं। कहा यह जा रहा है कि जिस देशमें विभिन्न संस्कृतियां एवं सभ्यतायें हैं, उसमें उनके अनुकूल विभिन्न राष्ट्रोंका निर्माण करना ही उचित होगा। ऐसा करनेसे ही वे सुख और शान्तिपूर्वक जीवन-निर्वाह कर सकेंगे। इसी आधारपर लाहौरमें मुसलिम लीगने अपने अधिवेशनमें नियमानुकूल पाकिस्तानकी योजना स्वीकृत की है। सिख सम्प्रदाय पञ्जाबपर अपना एकाधिपत्य चाहता है। उसका दावा है कि पञ्जाब न तो हिन्दुओंका है और न मुसलमानोंका। यह तो सिखोंके अधिकारमें था और अंगरेजोंने सिखोंसे ही उसे लिया है। इसी प्रदेशने उनके गुरुओंके जन्म और मरण देखे हैं और यहीं उनके धर्मका चरम-विकास हुआ है। अतः पञ्जाबमें बहुमत और अल्पमतका प्रश्न ही नहीं उठता। सभ्यता एवं संस्कृतिका तकाजा है कि पञ्जाब सिख प्रान्त बनाया जाय।

भारतको हिन्दू-मुसलिम प्रान्तमें ही विभक्त करनेकी बात चलती, तो एक बात थी। परन्तु स्थिति तो यह है कि मुसलमानोंका शिया सम्प्रदाय अपने लिए अलग प्रदेश चाहता है। इस वर्गका कहना है कि सुन्नियोंके साथ रहकर शिया सुख-शान्तिका उपभोग नहीं कर सकते। सुन्नी तबर्रा पढ़नेका विरोध करेंगे और शिया तबर्रा पढ़े बिना रह नहीं सकते। इसलिए आवश्यक है कि शिया सम्प्रदायके लिए एक अलग प्रान्त बनाया जाय। दक्षिण भारतके लोगोंका कहना है कि वहां एक द्रविड़ प्रदेशका गठन होना चाहिए, जिससे हिन्दू सभ्यता और हिन्दी भाषाका बहिष्कार किया जा सके। इस प्रकार सबकी मांगोंपर अगर विचार किया जाय, तो इसमें आंशिक औचित्य भी दीख पड़ता है। अलग राष्ट्रोंके निर्माणका आन्दोलन जब इतना जोर पकड़ता जा रहा है, जब भिन्न-भिन्न योजनायें भी पेश हो रही हैं, तब एक और नयी योजनाका पेश करना बुरा न माना जायेगा।

मेरी योजना एक अलग जनानिस्तानके निर्माणकी है। मेरा ख्याल है कि भारतीय नारियोंको अगर अपनी हीनताका बोध होता, अगर उन्हें भी पुरुष जातिके अत्याचारोंके विरुद्ध सिर उठाने और वक्तृतायें देनेका काफी ढङ्ग आ गया होता, तो बहुत पहले ही उनके दिमागमें एक अलग जनानिस्तान बनानेकी योजना आ गयी होती। किन्तु आज वे अशिक्षित हैं और संसारकी प्रगतिको समझनेमें असमर्थ हैं, इसलिए उनपर अत्याचार होते चलते हैं और वे सहन करती चलती हैं। इसलिए क्रान्तिके इस युगमें, बंटवारेकी इस

लूटमें मैंने उचित समझा कि मैं उन लोगोंकी ओरसे आवाज उठाऊं, जिनके मुंहमें जबान नहीं है। मैं उनके लिए एक योजना पेश करना चाहता हूं। मेरा ख्याल है कि सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक सभी प्रकारके इतने कारण वर्तमान हैं कि उनके आधारपर जनानिस्तानकी योजना पेश की जा सकती है। इस नये राष्ट्रमें स्त्रियां स्वाधीनतापूर्वक रहकर समानाधिकारका उपभोग कर सकती हैं।

मैं जिन कारणोंसे जनानिस्तानके निर्माणकी हिमायत कर रहा हूं, उनका पता लगाना मुश्किल नहीं है। सृष्टिके प्रारम्भसे ही नारी और पुरुषमें एकाधिक भेद पाये जाते हैं, जिनके दूर होनेका कोई उपाय नहीं है। हिन्दू और मुसलमान, सिख तथा अनार्य एवं द्राविड़ तथा आर्योंके भेदसे भी नारी और पुरुषके भेद अधिक हैं। सच पूछिये तो इन दो वर्गोंमें जितनी विषमता है, उतनी दूसरे किसी वर्गमें नहीं। वास्तविक बात तो यह है कि नारी और पुरुष भेदके साथ ही जन्म लेते हैं। दुनियाकी बात मैं नहीं करता, किन्तु हिन्दुस्तानमें तो शुरूसे ही भेद दृष्टिगत होने लगता है। परिवारमें जब पुत्र पैदा होता है, तो खुशीसे मिठाइयां इत्यादि बांटी जाती हैं और लड़की पैदा होती है, तो चारों तरफ मातम छा जाता है। यह भेदकी खाई पटनेके बजाय दिन-ब-दिन चौड़ी होती जाती है। जन्मसे ही लड़के और लड़कियोंके लालन-पालनमें अन्तर दीख पड़ने लगता है। जहां लड़केकी शिक्षा जीवनको उच्च तथा हर पहलूसे आदर्श बनानेके लिए होती है, वहां लड़कीकी शिक्षाका उद्देश्य सिर्फ उसे घरेलू काम-काजके लिए योग्य बनाना ही होता है। नैतिक दृष्टिकोणसे भी दोनोंके दो महत्त्व हैं। जहां लड़का अपने आचरणकी गलतीके लिए मामूली झिड़कन पाता है, वहां लड़की ऐसी गलतीके लिए अपने मां-बापके घर अभिशाप बन जाती है। उसके सिर कुलकी प्रतिष्ठा डुबो देनेका इल्जाम ठोका जाता है और उसे भी अपनी बेचारगीके कारण इस स्थितिको बरदाश्त करना पड़ता है। बहुत-सी लड़कियां तो ऐसी हालतसे आत्म-हत्या कर लेती हैं और कितनी तो मां-बापके घरको छोड़ अज्ञात प्रदेशके लिए निकल पड़ती हैं।

रक्तरञ्जित क्रेमलिन

प्रायः ६ महीनेसे पत्रोंमें क्रेमलिनकी चर्चा बराबर होती रही है। यूरोप-भरके राजनीतिज्ञोंके कूटनीतिक द्वन्द्वोंका पिछले दिनों क्रेमलिन एक अखाड़ा रहा है। क्रेमलिनके सम्बन्धमें आम तौरपर लोगोंकी यह धारणा होती है कि यह एक विशाल महल है, जिसमें रूसका राजकीय कार्य-सम्पादन होता है, जैसा कि इसके 'क्रेमलिन प्रासाद' नामसे प्रकट होता है। लेकिन वास्तवमें यह केवल एक प्रासाद नहीं है। क्रेमलिनमें कितने ही प्रासाद, गिरजाघर, अस्पताल, निवास-स्थान, शस्त्रागार, बैरक आदि विभाग हैं। मास्का नदीके तटपर ऊंचे-ऊंचे स्तम्भोंपर बना हुआ क्रेमलिन पन्द्रहवीं सदीसे ही रूसका हृदय-सा रहा है।

कई शताब्दियोंसे रूसके शासकोंका यह प्रधान केन्द्र रहा है। समयने कितनी ही बार आक्रमणोंसे इसे धूलमें मिलते और पुनः उठते देखा है। जितनी ही बार क्रेमलिनका पतन हुआ है, उतनी ही बार यह और भी शान-शौकतके साथ उठा है। क्रेमलिनमें यद्यपि अब बोल्शेविक नेताओंका अड्डा है, पर उसकी दीवारोंपर जारोंकी कहानियां अब भी चित्रित दिखाई पड़ती हैं। रूसके राजनीतिक उत्थान-पतनका एक इतिहास क्रेमलिनके इतिहासके साथ संयुक्त हो गया है। जहां जार बैठते थे, वहीं लेनिन रह चुका है और स्टैलिन, मोलोटोव और कालिनिन आदि वहां रह रहे हैं। वहीं कभी बुखारिन, रेखोव और जिनोविफ भी रह चुके हैं। कभी वे दिन भी थे, जब ट्राट्स्की भी वहीं रहता था।

क्रेमलिनके भीतर एक बहुत विशाल हाल है, जिसमें जारोंके समयमें उनके साथ बड़े-बड़े सामन्त और कोट्याधीश बैठते, दरबार करते और रंगरेलियोंसे दिल बहलाया करते थे। उसी हालमें अब सोवियट कांग्रेस हुआ करती है। एक जमाना था, जब उस हालमें जारके कृपापात्रोंको छोड़कर कोई प्रवेश नहीं कर सकता था और अब इसका इतिहास ही बदल गया है। नवम्बर १९१७ के तूफानी दिनोंमें जिन वीरोंने अपनी जान गंवायी, उनकी यादगार भी इस हालके एक किनारे बनी हुई है।

क्रेमलिनका इतिहास अनेक अनोखी रक्तरञ्जित कहानियोंसे भरा पड़ा है। राजाओं एवं षड्यन्त्रकारियोंने यहां रहकर कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे और अन्तमें भाग्यने उनके साथ कैसा विद्रूप किया, इसकी कहानियां अगर दीवारें बोल सकतीं, तो हजार बार सुनातीं। कितने कैदियोंकी आहें और कितनी हत्याओंका चीत्कार यहांके वातावरणमें

है। जहां बैठकर जार लाल क्रान्तिके सरदारोंके विरुद्ध षड्-यन्त्रके जाल बुना करता था, वहीं बैठकर ट्राटस्कीपर षड्यन्त्र रचनेका अभियोग लगाया जाता है। क्रेमलिनके भीतर एक रहस्य है, जिसे जार-कालसे ही कोई भेद न सका। और आज भी जब हम कहते हैं कि रूसका अगला कदम किस दिशामें उठेगा, तब हम अपनी इस असमर्थताका परिचय देते हैं कि हमें मालूम नहीं कि क्रेमलिन क्या कर रहा है।

महान् पुरुषोंके जीवनके कुछ क्षण

संसारमें विभिन्न क्षेत्रोंमें महत्ता प्राप्त करनेवाले व्यक्तियोंके जीवनमें कभी-कभी ऐसे क्षण भी आ जाते हैं, जो बड़े मनोरञ्जक और अनोखे होते हैं।

कहते हैं कि कुछ दिन पहले लार्ड हेलीफाक्स (भारतके भूतपूर्व वायसराय) ट्रेनमें सफर कर रहे थे। उनके डिब्बेमें ही दो स्त्रियां भी बैठी हुई थीं। गन्तव्य स्थानपर पहुंचनेके पहले रेलको एक पहाड़ी सुरङ्गके नीचेसे जाना पड़ता था। सुरङ्गके नीचे ट्रेन चलने लगी, तो इतना अन्धकार हो गया कि कोई एक दूसरेको देख नहीं सकता था। इस अन्धकारमें लार्ड हेलीफाक्सको जरा मखौल सूझा। उन्होंने अपना बायां हाथ तीन बार बड़े स्नेहसे चूमा। चूमते समय ऐसा शब्द हुआ, जिसे दोनों स्त्रियोंने भी सुना। बादको जब ट्रेन स्टेशन-के नजदीक पहुंची, तो लार्ड साहबने अपनी हैट उठायी और बड़े तपाकसे खड़े होकर कहने लगे, "आप दोनों देवियोंमेंसे मैं किस देवीको सुरङ्गके अन्धकारमें होनेवाली सुखद घटनाके प्रति कृतज्ञता प्रकट करूं?" तब तक स्टेशनपर वे उतर भी पड़े और दोनों स्त्रियां एक दूसरेका मुंह ताकती रह गयीं।

बर्नार्ड शा अपनी व्यङ्गोक्तियोंके लिए संसार-प्रसिद्ध हैं; पर यह प्रसिद्धि उन्होंने कैसे प्राप्त की, इसके सम्बन्धमें एक बड़ी विचित्र घटना बतायी जाती है। शा अभी अन्धकारमें पड़े थे कि लन्दनके कुछ अखबारोंने उनके सम्बन्धमें लेख छापने शुरू कर दिये। वे लेख भेंट और बातचीत—इण्टरव्यू-के रूपमें होते थे। इण्टरव्यूसे पता चलता था कि कोई व्यक्ति अक-स्मात् एक दिन शाके मकानमें घुस गया और बड़े अपमान-जनक ढङ्गसे उनसे बातें कीं, जैसे उन्हें जनतामें मूर्ख बनानेके लिए ही उसने ऐसा किया था। पत्रोंमें जो इण्टरव्यूके विवरण निकलते, वे भी शाके सम्बन्धमें बड़ी बदतमीजीसे भरे होते थे।

बहुतोंने सोचा कि शा वास्तवमें क्या कोई मनुष्य है, जो ऐसी अपमानजनक बातोंको भी बर्दाश्त कर जाता है। उसने ऐसे बदतमीज इण्टरव्यू लेनेवालेको ठोकर मारकर सीढ़ीसे नीचे क्यों नहीं ढकेल दिया? उसने पुलिसकी भी मदद क्यों नहीं ली? इस प्रकार शिक्षित व्यक्तियोंमें शाकी चर्चा होने लगी।

लेकिन लोगोंके आश्चर्यका ठिकाना न रहा, जब उन्होंने जाना कि वे सब इण्टरव्यू शाके ही लिखे होते थे। दूसरा कोई इण्टरव्यू लेनेवाला व्यक्ति न था।

मार्कट्वेन साहित्यके इतिहासमें नाम कर गया है, तो मित्र-मण्डलीमें रद्दीसे रद्दी सिगार पीनेके लिए उसकी बड़ी कुख्याति थी। लेकिन जरा सोचिये कि अन्धविश्वासके कारण किसी व्यक्तिकी अच्छाइयोंको भी हम किस प्रकार बुराई समझ बैठते हैं। उसने लिखा है—एक दिन मैं १२ मित्रोंके साथ दावत खानेवाला था। इन मित्रोंमें एक ऐसे भी थे, जो कीमतीसे कीमती सिगार पीनेके शौकीन थे और दावतों तथा दूसरे सार्वजनिक स्थानोंपर वे और भी कीमती सिगार पीते। मैं उनके घर गया और जब कोई नहीं था, चुपचाप मैंने उनसे सिगार लिये, जो बड़े कीमती थे और उनका लेबुल हटाकर अपने सिगारोंके डिब्बेमें डाल लिया। वे सभी जानते थे कि मेरे डिब्बेमें कैसे सिगार रहते थे।

दावत खानेके बाद उन्हें मैंने सिगार दिये। उन्होंने सुलगाया और कुछ मिनटों तक उनसे सङ्घर्ष करते रहे, अन्तमें एक-एक करके वे चले गये। सवेरे मैंने देखा कि वे सारे सिगार फेंके हुए हैं, सिर्फ उसी एक आदमीने सिगार नहीं फेंका था, जिससे मैंने लिया था। उस मित्रने यह भी बताया कि कुछ लोग कहते थे कि मैंने भविष्यमें ऐसे रद्दी सिगार अगर फिर दिये, तो मुझे गोलीका शिकार होना पड़ेगा।

पत्रोंका मूल्य

पत्र तो हम आप सभी लिखते हैं, लेकिन इतिहासमें ऐसे व्यक्ति भी हो गये हैं, जिनके पत्र हजारों लाखों रुपयेमें बिक चुके हैं। नेपोलियनने अपने सैन्य-विभागके अधिकारियोंके नाम जो पत्र लिखे थे, वे २४६९ पौण्डमें बिके हैं। अभी कुछ साल पहले नेपोलियनके प्रायः ३०० पत्र, जो उसने अपनी प्रेयसी मेरी लुईको लिखे थे, फ्रान्सीसी सरकारने १५,०००

पौण्डमें खरीदे हैं। अपनी पहली पत्नी जोसेफाइनके नाम लिखे गये उसके आठ पत्र और भी ऊंचे मूल्य ४,४०० पौण्डमें बिके थे।

नेल्सनके कुछ पत्रोंका एक संग्रह २५०० पौण्डमें बिका था। राबर्ट और एलिजाबेथ बैरेट ब्राउनिङ्गके प्रेमपत्र १९१३ में ६५५० पौण्डमें बिके थे और एलिजाबेथके २२ पत्रोंको एक अमेरिकनने ८००० पौण्डमें खरीदा था। ब्राउनिङ्गके दूसरे कुछ पत्र ३६९६ पौण्डमें नीलाम हुए थे।

१९२२ में शेलीका एक पत्र १४२ पौण्डमें बिका था और उसीका एक दूसरा पत्र, जिसमें उसकी वसीयतका मसविदा था, ३५० पौण्डमें बिका था। शेलीने कीट्सके नाम एक पत्र लिखा था, जो २६२ पौण्डमें बिका। जिन लोगोंके पत्र काफी मूल्यमें बिके हैं, उनमें बर्न्स भी है। उसके एक-एक पत्र दो-दो सौ पौण्डमें बिके हैं। चार्ल्स डिकेन्सके कुछ पत्र ९०० पौ० में बिके थे, लेकिन १९२२ में उसके कुछ पत्रोंपर २१५० पौण्ड तक मिले।

समय बीतनेके साथ-साथ ऐतिहासिक महत्त्वके पत्रोंका मूल्य बढ़ता ही जाता है। जार्ज वाशिङ्गटनने अपने भाई आगस्टसके नाम एक पत्र लिखा था, जो न्यूयार्कमें ६०० पौण्डमें बिका। क्रामवेलने एक पत्र मार्स्टन-मूर-युद्धका वर्णन करते हुए लिखा था, जो ३०० और उसीका अपने पुत्र 'डिक' के नाम लिखा हुआ एक पत्र २०० पौण्डमें बिका।

सम्राज्ञी मेरीके पत्र भी बड़े ऊंचे दामोंमें बिके हैं। ड्यूक आव गाइजके नाम लिखा हुआ पत्र ३४९, फ्रान्सके राजाके नाम लिखित पत्र ३६० और स्पेनके राजाके नाम लिखित ३४० पौण्डमें बिका। फ्रान्सके राजाके नाम लिखा हुआ सम्राज्ञी एलिजाबेथका पत्र केवल १५० पौण्डमें ही बिका था।

शेक्सपियरके कुछ नाटकोंमें एक हंसोड़ अभिनेता फाल्स्टफका नाम आता है, जिसे अब तक आम तौरपर लोगोंने काल्पनिक पात्र समझ रखा था; पर अब उसके नामके पत्र मिले हैं, जिनसे पता चलता है कि वह काल्पनिक नहीं, वास्तविक मनुष्य था। सर जान फाल्स्टफके नामसे १४४९ में लिखे हुए कुछ पत्र १९१९ में ६९० पौण्डमें बिके थे। अमेरिगो वास्कुचीका १४७६ में लिखा हुआ एक पत्र—पत्र क्या मुश्किलसे दो वाक्य ३९० पौण्डमें बिके थे। इसी इटैलियन परिव्राजकके नाम अमेरिकाका नाम रखा गया मालूम होता है।

प्रेसिडेण्ट अब्राहम लिङ्कनने अमेरिकन सेनाके सेनापतिके नाम एक पत्र लिखा था, जो थोड़े दिन पहले १९०० डालरमें बिका है। लिङ्कनका यह पत्र कई पुस्तकोंमें प्रकाशित भी हो चुका है। लेकिन किसी एक पत्रका जो सबसे अधिक मूल्य लगा है, पत्र है मेरी आन्तेनेतका, जिसे उसने शिरच्छेद-के पहले लिखा था। वह पत्र कुछ वर्ष पहले प्रेगमें एक अमेरिकनने ५००० पौण्डमें खरीदा था।
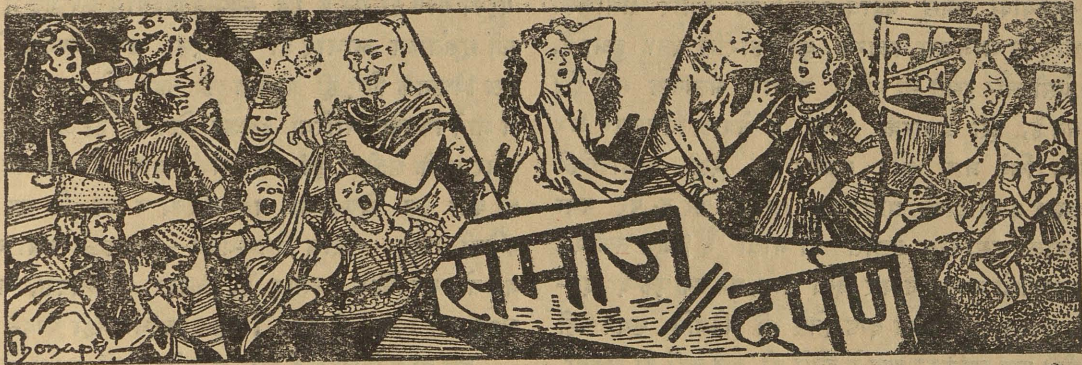
धार्मिक कुसंस्कारोंकी भीषणता

हिन्दू-समाज आज जिस अवस्थामें पड़ा हुआ है, उसमें इसकी उन्नतिके सारे मार्ग ही अवरुद्ध नहीं होते जा रहे हैं; बल्कि अगर समय रहते, समाजकी दुर्बलताओंका निराकरण नहीं कर लिया गया, तो समाज जिस प्रकार भीतर ही भीतर जर्जरित होता जा रहा है, वह अत्यन्त भयावह होगा। हिन्दू-समाज आज कुरीतियोंका दास हो रहा है और इन कुरीतियोंकी भीषणता और भी इसलिए बढ़ जाती है कि इनका आधार धर्म माना जाता है। मनुष्यकी जैसी स्वाभाविक प्रवृत्ति है, उसमें वह धर्म और ईश्वरसे डरता है और यद्यपि इन दोनों ही के विरुद्ध काफी अवसरोंपर काफी लोगोंने तरह-तरहकी बातें की हैं; पर अधिकांश जनताकी मानसिक स्थितिमें इनके आधारपर जो बातें कह दी जाती हैं, उनसे वे अपनेको अलग करते हुए हिचकते, एक प्रकारकी भयत्रस्त भावनाओंसे सोचते हैं, इसलिए इन कुरीतियोंके आधारमें जब धर्म आ जाता है, तब इसका निराकरण करना अपेक्षाकृत कठिन हो जाता है।

हमने देखा है कि जब-जब समाज-सुधारकी बातें उठायी गयीं, जब-जब सामाजिक पुनरुद्धारकी योजनायें रखी गयीं, तभी उनका विरोध किया गया और इस विरोधका आधार बताया गया धर्म। वर्तमान बाल-विवाह-निषेधक कानून जब व्यवस्थापिका परिषद्में पेश था, तब देखा गया कि हिन्दू-मुसलमान दोनोंने इस धर्म-विरोधी (?) व्यवस्थाके विरुद्ध सम्मिलित आवाज उठायी। कहा गया कि सम्राज्ञी विक्टोरियाने धर्ममें हस्तक्षेप न करनेकी जो घोषणा की थी, उसके विरुद्ध यह व्यवस्था है। उक्त घोषणाका उक्त व्यवस्थासे क्या सम्बन्ध है, इसका विवेचन करनेकी आवश्यकता नहीं है; पर इतना तो स्पष्ट ही हो जाता है कि भारतीय जनता ऐसे किसी भी कार्यको प्रोत्साहन नहीं दे सकती, जिसे वह धर्म-विरुद्ध मानती है।

अतः यह धर्म हमारे जीवनमें—व्यक्तिगत और सामाजिक दोनोंमें कुछ ऐसा स्थान बना गया है कि इसके आधारपर अच्छी-बुरी किसी भी बातका हम समर्थन करने लगते हैं। हमारे समाजकी कितनी ही कुरीतियां इस धार्मिक भावनाके आधारपर रुकी हुई हैं, लेकिन हमारा दुर्भाग्य तो यह है कि हमने यह सोचनेकी आवश्यकता बहुत कम समझी कि वास्तवमें धर्मके नामपर हम उन बाह्याडम्बरोंको ही गलेसे बांधे नहीं घूम रहे हैं, जिनसे वास्तविक धर्मसे कोई सम्बन्ध भी नहीं है और उल्टे उनके नामपर स्थायित्व प्राप्त कर वे फूलती-फलती जा रही हैं।

हमारी अन्धश्रद्धा हमसे कैसे-कैसे काण्ड करा सकती है, इसके उदाहरण समय-समयपर मिलते रहते हैं। अभी २३ अप्रैलका जबलपुरका समाचार है कि एक पुरोहितने वन-देवीको प्रसन्न करनेके लिए एक गोंड़ दम्पतिकी बलि चढ़ायी है। कहते हैं कि इस दम्पतिको फुसलाकर वह पुरोहित देवस्थान तक गया और वहां जाकर जब पुरोहितके आदेशसे उन्होंने घुटने टेके, तो पुरोहितने उनके सिर काट डाले।

यह जबलपुर जिलेकी घटना है; पर ऐसी घटनाओंवाले भारत-भरमें न जाने कितने जबलपुर हैं। देवताओंके नामपर नर-बलिका यह अकेला उदाहरण नहीं है। इस अभागे

देशमें इतने धर्म और इतने पन्थ चलते हैं कि ऐसी कितनी नर-बलियोंपर आंसू बहाये जायं! जब हमारे समाजका आधार ही आज इस प्रकारके कुसंस्कारोंसे बना हुआ है, तब ऐसी और इससे भी भीषण घटनायें असम्भव नहीं हैं। सम्भव है, इस प्रकारके काण्ड करनेवाले गिरफ्तार कर दण्डित किये जायें और सम्भव है, ऐसी घटनाओंकी भीषणता हममें इसके प्रति क्षोभ उत्पन्न कर दे; पर क्या समस्याका समाधान इसीसे हो जाता है? जब तक ऐसे कुसंस्कारोंको उन्मूल न कर दिया जाय, तब तक एक-दो, दस-बीस, पचास व्यक्तियोंको दण्ड देनेसे भी स्थिति सुधर नहीं सकती। एक व्यक्तिको दण्ड दे देनेसे ही कुछ नहीं हो सकता, जब तक कि समाजकी इस प्रकारकी मनोवृत्तियोंका निराकरण नहीं हो जाता।

इसी घटनाके साथ जरा एक दूसरी घटना भी देखिये। झांसीका २३ अप्रैलका समाचार है कि स्वप्नके विश्वासने एक औरतके प्राण ले लिये। कहते हैं कि एक विधवाने, जिसका पति कुछ काल पूर्व ही मरा था, स्वप्न देखा कि यदि वह चलती रेलगाड़ीसे बेतवा नदीमें कूद पड़े, तो स्वर्गमें अपने पतिसे मिल सकती है। इसीपर एक दिन वह स्त्री अपने पांच वर्षके बच्चेको लेकर गांवसे चल पड़ी। उसने ओरछाका टिकट कटाया। जब गाड़ी बेतवाके पुलके निकट पहुंची, तो उसने अपने बच्चेको छातीसे चिपटायार और उसका चुम्बन किया तथा गाड़ीका दरवाजा खोलकर खड़ी हो गयी। जब गाड़ी पुलके ऊपर पहुंची, तो औरत नदीमें कूद पड़ी।

ओरछा पहुंचनेपर रेलवेके अधिकारियोंको इसका पता चला, और इञ्जन ब्रेकके साथ घटनास्थलको भेजा गया। स्त्री गले तक पानीमें थी, उसे लाकर अस्पतालमें भर्ती किया गया, और आत्महत्या करनेके अपराधमें गिरफ्तार कर लिया गया।

संयोगकी ही बात है कि इस अभागिनी विधवाकी जान बचा ली गयी, अन्यथा पतिको खोकर वह न केवल अपने ही प्राण खोती, बल्कि उसके पांच वर्षके बच्चेके पालन-पोषणकी भी समस्या अत्यन्त जटिल हो जाती। सम्भव है, कुछ धर्मभीरु भाई इस प्रकारकी घटनाओंकी सराहना उसके पति-प्रेमके नामपर करें और कितने ही लालबुझक्कड़ तो ऐसी ही घटनाओंको लेकर सतीत्वकी प्रथाका भी समर्थन करते दिखाई पड़ते हैं; पर हम ऐसी घटनाओंकी सराहना नहीं कर सकते। पहली बात तो यह है कि स्वप्नमें विश्वास कर नदीमें कूदनेकी मूर्खताका आधार ही एक ऐसा अन्ध-विश्वास है, जो इस विधवाके लिए ही प्राणघातक नहीं हो रहा था, ऐसी न जाने कितनी नारियां इसका शिकार हो जाती हैं, और अगर उसके सतीत्व एवं पति-प्रेमकी बात मान भी ली जाय, तो क्या इस विधवाका यह कर्तव्य न था कि वह अपने पतिकी धरोहर—उसके प्रेम-स्वरूप—बालककी रक्षा करती। यह तो मानसिक उन्माद है, जिसपर, दुर्भाग्यवश, धार्मिक आधारपर कितने ही लोग विचार करना नहीं चाहते।

इस तरहकी घटनायें इस अभागे देशमें प्रायः होती ही रहती हैं। एक ओर हम अपनी सभ्यताकी डींग हांकते हैं और भारतीय तत्त्वज्ञानपर फूले नहीं समाते, और दूसरी ओर समाजका अङ्ग-अङ्ग भीषण कुसंस्कारोंमें फंसा न केवल प्रगतिका विरोध कर रहा है, बल्कि स्वयं कुठाराघात कर रहा है। हम कुछ व्यक्तियोंकी विद्वत्ता और उनकी महत्ताकी प्रशंसा चाहे जितनी करें, हमें यह बात भी भूलनी नहीं चाहिए कि समाज केवल कुछ चोटीके व्यक्तियोंको ही लेकर नहीं बना है। समाजका एक बड़ा भाग जब तक ऐसे कुसंस्कारोंमें फंसा रहेगा, तब तक व्यापक रूपसे हमारी कोई सुधार-योजना सफल नहीं हो सकती। हम यह नहीं कहते कि दूसरे धर्मोंमें ऐसे कुसंस्कार हैं ही नहीं; पर हमारे समाजने तो धर्मकी वास्तविकताओंको छोड़कर उसके कुसंस्कारोंको ही जैसे अपना लिया है। कहनेकी आवश्यकता नहीं कि इनसे मुक्ति पाये बिना हमारी स्थिति दिनोंदिन बदतर ही होती जायगी।

सामाजिक आदर्शोंका सङ्घर्ष

सभ्यता और सामाजिक आदर्शको लेकर नये और पुरानेमें सदासे सङ्घर्ष चला आया है। पुराना जब अपनी प्राचीनताके कारण आकर्षण खोने लगता और नवीन अपने नये आकर्षणोंके साथ आता है, तब प्रायः देखा जाता है कि बूढ़े प्राचीनताके साथ—जिसके साथ वे बंधे आये हैं—बंधे रहना चाहते हैं और युवक नवीन आकर्षणोंसे प्रभावित होते हैं। यही कारण है कि सभी समाजों और सभी युगोंमें देखा गया है कि युवकों और बूढ़ोंके विचारोंमें सामञ्जस्य मिलाना

कठिन रहा है। दोनों ही अपने-अपने दृष्टिकोणसे परम्पराओं एवं परिवर्तनोंको देखते और अपने मार्गसे चलनेपर जोर देते हैं। और इन सबका परिणाम होता है सङ्घर्ष।

और यह बात जो व्यक्तियोंके सम्बन्धमें है, वही समाजों तथा देशोंके बारेमें भी सत्य है। समाज एक ओर प्राचीन परम्पराओंसे अपनेको अलग करनेमें हिचकता, पर नयेको अपनानेकी ओर ही आकर्षित होता है। इस प्रकार दोनों ही को लेकर सङ्घर्ष उत्पन्न होता है, क्योंकि यह अन्तिम रूपसे स्पष्ट नहीं हो पाता कि वास्तवमें सही रास्ता कौन है।

हिन्दू-समाज आज ऐसे स्थलपर खड़ा है, जहां विभिन्न विचार-धारायें परस्पर टकरा रही हैं। एक ओर प्राचीन आदर्श हैं, और दूसरी ओर नयी विचार-धारायें। हिन्दू-समाजकी पुरानी परम्परायें नारीकी स्वाधीनताका समर्थन नहीं करतीं। एक ऐसा भी समय था, जब नारीके लिए 'असूर्यम्पश्या' का आदर्श था। रहा चाहे जिन कारणोंसे हो, पर था अवश्य। पुरुष और नारीके स्वच्छन्द मिलनको भी परम्परायें रोकती हैं, और पुरुषकी अनियन्त्रित वासनाओंके विरुद्ध भी यद्यपि मत हैं, पर नारीके सतीत्वका जितना ऊंचा मूल्य रखा गया, वैसी बात पुरुषके लिए कभी सोची न गयी। आज भी पुरुष किसी विधर्मी नारीसे सम्पर्क रखता हुआ समाजमें चल जाता है, पर नारी ऐसा नहीं कर सकती। नारी एक बार भी—कुछ घण्टोंके लिए भी अगर किसी विधर्मी अथवा किसी पराये पुरुषके साथ गायब हो जाय, तो उसकी पवित्रतापर किसी प्रकारकी आंच आये बिना भी वह पुनः समाजमें दाखिल नहीं हो सकती। ऐसा न होता, तो दूसरे धर्मवालोंकी इतनी बड़ी संख्या न होती चलती और न वेश्याओंकी इतनी बड़ी पल्टन ही तैयार खड़ी मिलती।

परम्परासे चली आयी ये बातें हैं, जिनकी छानबीन करनेकी आवश्यकता हमने नहीं समझी। अतः वे बातें अब तक यों ही चली आयीं। लेकिन समयके प्रवाहमें जब हमारा समाज अनेक विचार-धाराओंके सम्पर्कमें आया है—तब स्वभावतः हम उनसे प्रभावित होनेसे इसे बचा नहीं सके हैं। एक समय था, जब नारीके सतीत्वका इतना बड़ा मूल्य था कि मन, वचन, कर्म—किसी प्रकारसे भी उसके मनमें विचार आया नहीं कि वह अपने धर्मसे च्युत हुई समझी जाने लगी। एक समय था, जब उसके लिए पतिकी चितापर स्वयं भी जलकर प्राण देना ही उसके धर्मकी पराकाष्ठा नहीं, उसका साधारण धर्म माना जाता था; और एक समय था, जब पतिके अन्धे और बहरे रहनेपर उसे भी अपने कानोंमें रुई डाले अथवा आंखोंपर पट्टी बांधे रहना पड़ता था, तब ऐसा भी समय आया, जब नारीके लिए आगमें जलकर अपने पतिव्रत धर्मकी परीक्षा देनेकी आवश्यकता नहीं रह गयी। उसके लिए आंखोंपर पट्टी बांधनेकी जगह केवल 'अन्धे, बधिर, कोढ़ी पति' की सेवा करने ही से उसके धर्मकी पूर्ति समझी जाने लगी और समयके प्रवाहमें बात यहां तक आयी कि विधवा चाहे, तो दूसरे पुरुषसे विवाह तक कर सकती है। बहुत दिनों तक क्षत और अक्षत योनि विधवाको लेकर विवाद चलता रहा और अन्तमें यह बात भी समाजमें आयी कि क्षत-अक्षतका तो प्रश्न ही क्या, गोदमें बच्चे लेकर—बालिग बच्चोंकी मां भी चाहे, तो विवाह कर सकती है। हिन्दू-समाजने अपनी उदारता यहां तक दिखायी। हम हिन्दू-समाजकी बात कहते हैं, हिन्दू धर्मकी नहीं; क्योंकि हिन्दू-धर्म एक ऐसी चीज है, जिसको लेकर कहना कठिन है कि इसका प्रामाणिक व्याख्याता कौन है। और यह चाहे जितना विवादग्रस्त विषय हो, इतना तो स्पष्ट ही है कि समाजमें जो बातें तथ्य-रूपमें आयी हैं, उन्हें कितने ही धर्म-ग्रन्थ अथवा तर्क इनकार नहीं कर सकते। पतन अथवा उत्थान चाहे जो नाम इसे दे लीजिये, इसकी प्रगतिसे आप इनकार नहीं कर सकते।

तो इस प्रकार सामाजिक आदर्श सदा परिवर्तित होते रहते हैं। अतः हमारे समाजके सामने आज जो समस्यायें उपस्थित हो गयी हैं, उनपर हम केवल परम्पराओंके आधारपर ही विचार नहीं कर सकते। आज जब हम नारीको कर्म-क्षेत्रमें उतरनेकी बात कहते हैं, आज जब हमने उसके लिए एक नये प्रकारकी शिक्षा-दीक्षाका प्रबन्ध किया है, आज जब जीवनसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी व्यवस्थाओंका रूप बदल गया है, तब उससे आशा करना कि उसमें वही पुरानी परम्पराके अनुसार काम करनेकी प्रवृत्ति बनी रहेगी, अस्वाभाविक है। जब समाजकी सारी व्यवस्थायें बदल जायेंगी, तब उसमें रहनेवाले प्राणियोंमें परिवर्तन न होगा, यह कैसी बात? आज जब हमारी शिक्षा-दीक्षाकी प्रणाली पश्चिमकी है, हमारा पाठ्यक्रम पश्चिमका है, पश्चिम-

की—एक नयी विचार-धारामें आज जब हम सोचते हैं, हमारे सामने जब नये आदर्शोंकी बातें रखी जाती हैं, तब हमसे आशा की जाय कि हम उनसे प्रभावित नहीं होंगे, यह कैसे सम्भव है ?

इसलिए इन परिवर्तनोंके साथ-साथ नैतिकताको लेकर जो अपनी धारणाओंमें हम परिवर्तन नहीं करना चाहते, इसीलिए एक मानसिक द्वन्द्वमें हम पड़े हुए हैं, जिसका परिणाम सामाजिक सङ्घर्षके रूपमें दिखाई पड़ रहा है। घरके बूढ़े कहते हैं—पढ़-लिखकर बच्चे खराब हो रहे हैं, घरकी दादियां बच्चियोंकी हरकतोंसे परेशान हो रही हैं। लड़कीको शिक्षा देकर तैयार किया गया और उसके विवाहका प्रसङ्ग छेड़ा गया, तब लड़कीके मुंहसे उसके विवाहकी बात सुनकर घोर कलियुग आ जानेका शोर-गुल करनेवाली नारियोंसे लेकर बायरन और शेली पढ़नेवाली युवतियां तक—दोनों ही आज भारतीय घरोंमें एक साथ पायी जाती हैं और इसीलिए घरमें विचारोंका सामञ्जस्य नहीं हो पाता—नहीं हो सकता। हमारे समाजके सामने इस प्रकारकी समस्यायें आज उठ खड़ी हुई हैं। एक विचार-धाराको प्रगतिशीलताके नामपर समर्थन मिलता है, तो उसीकी उच्छृङ्खलताके नामपर निन्दा करनेवालोंकी भी संख्या कम नहीं है। आजके समाजमें जिसे "नैतिकताकी ढील" के नामसे पुकारते हैं, वह वास्तवमें नैतिकताको दूसरे पैमानेसे नापनेके कारण ही ऐसा कहते हैं। आजकी नैतिकता, जो आजकी शिक्षा-दीक्षा, सम्पर्क, समाजोंके आदान-प्रदान, परिस्थितियों एवं परिवर्तित वातावरणोंके आधारपर बनी है, उसे आजसे हजार वर्ष पहलेके निर्धारित किये हुए नैतिकताके पैमानेसे नापनेपर ही हम ऐसा कहते हैं। इसीलिए जीवनके मूल्य आंकनेके पैमानेके इस विभेदसे हमारे समाजमें एक विशृङ्खला दिखाई पड़ रही है। वास्तवमें यह बात उतनी सत्य नहीं है, जितनी सत्य दो दृष्टिकोणोंकी विभिन्नता है।

अतएव आवश्यकता इस बातकी है कि हम वास्तविकताओंको देखते हुए परिस्थितियोंके अनुकूल सामाजिक नियमोंमें सुधार करें, अन्यथा हमारी प्राचीन परम्परायें केवल प्राचीनताके नामपर ही नहीं टिकी रह सकतीं। जब किसी समाजके बनाये हुए नियम समाजकी आवश्यकताओं एवं नवीन परिस्थितियोंके तथ्योंसे सम्बन्ध नहीं रखते, तब उनकी व्यर्थता स्पष्ट होने लगती है और धर्म-वाक्यों अथवा नरकका भय दिखाकर उनकी रक्षा नहीं की जा सकती। समाजका कल्याण चाहनेवालोंको यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि समाजका निर्माण मनुष्यके लिए हुआ है, अतः मनुष्यकी आवश्यकताओंके प्रतिकूल चलनेवाली सामाजिक व्यवस्थायें स्थायी नहीं हो सकतीं। अतः आज जो परिवर्तन आवश्यक हैं, उनकी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए। बिना इसके हम नये समाजका निर्माण नहीं कर सकते।

———

हमारे साहित्यकी प्रगति

साहित्यकी महिमा अपार है और अगर इस शब्दका प्रयोग इसके व्यापक अर्थोंमें किया जाय, तो मानव जातिके इतिहासमें साहित्यने जबर्दस्त काम कर दिखाया है। बड़ी-बड़ी क्रान्तियां हुई हैं, जिनका आधार पहले साहित्यने तैयार किया, और बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं, जिनके लिए पहले साहित्यने आवाज उठायी। इसलिए किसी भी समाजमें जब साहित्यकी रचना होने लगती है, तब प्रश्न उठता है कि जिस साहित्यकी सृष्टि हो रही है, उसका रूप क्या है, समाजके लिए उसकी प्रतिक्रिया कैसी होनेकी सम्भावना है। एक समय था, जब कलाकार 'स्वान्तः सुखाय' लिखते थे। और आज भी कभी-कभी इसके आधारपर कलाकारोंको साहित्य-की सृष्टि करनेकी पूरी स्वाधीनता देनेका समर्थन किया जाता है। इस स्वाधीनताके कारण कैसे साहित्यकी रचना हो सकती है, इसके प्रमाण समय-समयपर मिलते रहते हैं। हमें यह बात भूलनी न चाहिए कि जिस प्रकार किसी भी क्षेत्रमें स्वाधीनता आवश्यक है, पर स्वेच्छाचारिताका परिणाम कभी अच्छा नहीं हो सकता, जिस प्रकार किसी भी क्षेत्रमें अधिकारके साथ-साथ कर्तव्य भी होते हैं और अधिकारका उपयोग किसी प्रकार भी नहीं किया जा सकता, जिससे दूसरेके अधिकारमें बाधा पहुंचे, उसी प्रकार साहित्यमें है। साहित्यकार आज अपनेको समाजसे अलग नहीं कर सकता। आज वह समाजका उसी प्रकार एक अङ्ग है, जिस प्रकार कोई भी प्राणी। अतः समाजका कल्याण-चिन्तन उसका भी एक कर्तव्य है। जिन कलाकारोंने मानवताके कल्याणका राग गाया है, वे सदा अमर हो गये हैं; लेकिन जिन लोगोंने अपनी प्रतिभाका दुरुपयोग किया, उनके लिए संसारमें कहीं भी स्थान नहीं है।

और इसीलिए आज ऐसे साहित्यकी हमारे लिए आव-श्यकता आ पड़ी है, जो हमारे जीवनको स्पर्श करे। मानवके व्यक्तिगत सुख-दुःखके अतिरिक्त, मानव-समाजकी भी कुछ आवश्यकतायें हैं, जिनपर प्रकाश डालनेकी आवश्यकता है।

पर हमारे साहित्यकी आज क्या प्रगति है? समाजमें एक ओर हजारों भुखमरोंकी पल्टन तैयार है, और उनके पास ही पड़े कविजी इन्द्र-धनुषके रङ्गों और पानीकी परियोंका गीत सुन रहे हैं। हिन्दी-साहित्यिकोंकी गरीबीका प्रश्न आज हमारे विवादका खास विषय बन गया है—उनके सङ्गठन और उनकी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिए रोज आन्दोलन चलाया जा रहा है, उनके मरनेके पश्चात् उनके परिवारके भरण-पोषणके लिए सभायें होतीं और अपीलें निकलती रहती हैं; पर उनकी साहित्यिक सृष्टि देखिये, तो जैसे उन्होंने कभी दुःख-दारिद्र्यकी अनुभूति ही नहीं की। आजके हिन्दी-साहित्यकी रोमाण्टिक कविताओंको सौ साल बाद जब पढ़ा जायगा, तो इतिहासकारके लिए इस निष्कर्षपर—उन्हींके आधारपर यह कहना कठिन होगा कि जिस युगकी ये रचनायें हैं, उसमें भारतमें कहीं भी दुःख-दारिद्र्य रहा है। हमारा आजका साहित्य इस प्रकार हमारी समस्याओंसे अछूता चला आ रहा है।

इस सम्बन्धमें एक बात और कहनी है। हमारे एक कवि मित्रने गोर्कीकी मृत्युके बाद, जब यह पढ़ा कि स्वयं

स्टैलिनने भी गोर्कीकी अर्थीको कन्धा टेका, तो इस बातसे वे बड़े भावोद्वेलित हो उठे थे और उन्होंने आते ही कोसना शुरू किया कि आज हिन्दीमें साहित्यिकोंकी क्या दुर्दशा है। इसे भी उन्होंने हिन्दी-साहित्यकी वर्तमान अधोगतिका एक कारण बताया।

बातें तो सच हैं, इसमें सन्देह नहीं; पर इनकी तहमें वास्तवमें क्या है, इसपर विचार कर लेना चाहिए। मनुष्य जो कुछ देता है, वही उसे मिलता भी है, इसे चाहे आप प्रकृतिका नियम, अपने ही कार्योंकी प्रतिक्रिया अथवा किसी भी नामसे कह लीजिये। हमारे साहित्यिक आज समाजमें सम्मान नहीं प्राप्त करते हैं, तो प्रश्न है कि जिस समाजसे वे ऐसी शिकायत करते हैं, उसके लिए उन्होंने क्या किया? समाजके लिए अगर उन्होंने बहुत कुछ किया और समाजने फिर भी उनके प्रति उपेक्षा दिखायी, तो निश्चय ही यह उसकी कृतघ्नता है। पर अगर उन्होंने समाजके लिए कुछ भी नहीं किया, तो उन्हें इस बातकी आशा नहीं होनी चाहिए कि समाजमें इतनी उदारता होगी। गोर्की जिस समाजमें उत्पन्न हुए थे, उसकी उन्होंने कितनी सेवा की! उसके कल्याणके लिए ही उनकी सारी साहित्यिक क्षमता लग गयी। रूसकी क्रान्तिमें उनकी लेखनीने कितना जबर्दस्त हिस्सा बंटाया, यह तथ्य स्टैलिन द्वारा उनकी अर्थी उठानेकी बातको पढ़ते समय भूल नहीं जाना चाहिए। यह घटना बताती है कि जिनके लिए आप कुछ करेंगे, वे उसे अधिकांशतः याद रखेंगे। और इसके साथ ही इसका उल्टा भी सच है। भिखमङ्गोंकी गलीमें पड़ा हुआ कवि जब नन्दन-निकुञ्ज और आलोक-मालाओंके गीत गायेगा, तब उसकी मृत्युके बाद भिखमङ्गे आंसू बहायेंगे, इसकी आशा भला कैसे की जा सकती है?

सम्भव है कि ये शब्द कलाकारोंकी स्वाभाविक भावुकताको ठेस पहुंचायें; पर अगर उन्हें वास्तविकतासे एकदम शत्रुता नहीं ठान लेनी है, तो उन्हें सोचना चाहिए कि वे कहां हैं? इस प्रकारकी अ-वास्तविकताका अन्त कितने ही साहित्योंसे हो चुका है। दूसरे देशोंसे प्रकाशित होकर जो साहित्य हमारे पास आता है, उसमें हम देखते हैं कि शृङ्गारी कविताका अंश बहुत कम होता है और उपन्यासोंमें भी जीवनकी वर्तमान समस्याओंको सुलझानेके प्रयत्न रहते हैं। समाज और राष्ट्रकी आवश्यकताओंकी उनमें उपेक्षा नहीं रहती। आश्चर्य है कि आजकी समस्याओंकी उपेक्षा कर हम रोमाण्टिक कालकी कविताओंकी नकल अपने साहित्यमें करें।

एक ओर हमारे साहित्यमें अर्थशास्त्र, राजनीति, विज्ञान आदि कितने ही विषयोंका एकदम अभाव है और दूसरी ओर जो रचना होती है, वह हृदयके हाहाकारों, पतझड़ों तथा नीरव रुदनसे आगे नहीं बढ़ पाती। जीवनकी वास्तविकताओंसे आज हम कितनी दूर जा पड़े हैं? व्रजभाषाकी कविताओंको पद्यबद्ध नायिका-भेद बतानेवाले भी 'सुमुखि' और 'सजनि' के अभिसारोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर पा रहे हैं। यह तस्वीर है हमारे वर्तमान साहित्यकी।

राष्ट्रभाषाका सङ्गठन

श्री काका कालेलकरके सारे सुझावोंसे कोई सहमत भले ही न हो; पर लिपि एवं भाषा-सम्बन्धी उनके प्रयत्नोंके लिए उनकी सराहना अवश्य करनी पड़ेगी। इन विषयोंको लेकर वे काफी शक्ति लगा रहे हैं। अतः विवादग्रस्त विषयोंपर मतभेदकी स्वाभाविकता स्वीकार करते हुए राष्ट्रभाषाके सङ्गठनके सम्बन्धमें उन्होंने हालमें जो विचार प्रकट किये हैं, उनका कुछ अंश हम दे रहे हैं, जो यों है:—

हम अपनी भाषामें संस्कृतके शब्द कहां तक आने दें, यह सवाल सिर्फ हिन्दीके ही सामने नहीं है; बल्कि भारतकी सभी भाषाओंके सामने है। यों तो यहांकी किसी भी भाषामें जो शब्द चल रहे हैं—बोले या लिखे जाते हैं—उनमेंसे अधिकांश शब्द किसी-न-किसी रूपमें संस्कृतसे ही आये हुए हैं। संस्कारी हिन्दुस्तानकी प्राचीन राष्ट्रभाषा संस्कृत थी। संस्कृत ही के पोषणसे सभी प्राचीन भाषायें पली-पुसी हुई हैं। उर्दू और तमिलमें भी संस्कृतके शब्द काफी मात्रामें मिलते हैं। अगर हम वायुमण्डलके बिना पृथ्वीपर जी सकें, तभी संस्कृतके स्पर्श बिना हम हिन्दुस्तानमें बोल सकते हैं। हमारी समस्त भाषाओंकी बुनियाद ही संस्कृत है। इंगलैण्डके सभी शिक्षित लोग लैटिन या ग्रीक या दोनों भाषायें कुछ हद तक सीखते हैं। इसी तरह अगर हम भारतीय भी कुछ हद तक अनिवार्य-रूपसे संस्कृतका अध्ययन

चालू रखते, तो हमारी सब भाषायें एक-दूसरेके बहुत ही समीप आ जातीं और उनकी शक्ति भी बहुत कुछ बढ़ती।

हमारी प्रान्तीय भाषायें अगर मनमें धार लें, तो वे बहुत कुछ एक-दूसरेके पास आ सकती हैं। और उलटा ही सङ्कल्प करें, तो आज जहां एक भाषा चलती है, वहां उसी भाषाके अनेक टुकड़े हो जायंगे, और वे दोनों आपसमें कहने लगेंगी कि मैं तुम्हें पहचान नहीं सकती। प्रान्तीय भाषाओं-को एक-दूसरेके समीप लानेका काम संस्कृत ही कर सकती है। कुछ हद तक फारसी और अरबी भी इसमें सहायक हो सकती हैं। और आगे जाकर हम यह महसूस करेंगे कि भारतीय राष्ट्र-जीवनका द्रोह करनेवाली अंगरेजी भी प्रायश्चित्त करनेके बाद राष्ट्रीय एकतामें अपनी ओरसे कुछ-न-कुछ सहायता ही करेगी।

राष्ट्रभाषाने संस्कृत-संस्कृति और इस्लामी संस्कृतिके भिन्न-भिन्न अनुपातके अनेक मिश्रण करके इस ऐक्यमें मदद ही की है और इससे भी कहीं ज्यादा भविष्यमें करनेवाली है।

ऐसे मिश्रणोंमें हमने आसान, सर्वसुलभ और प्रचलित संस्कृत शब्दोंकी अधिक मात्रा न रखी, तो हमारी एकता खतरेमें पड़ जायगी। हमें इस बातको भी समझ लेना और स्वीकार करना होगा कि अरबी-फारसीके भी कुछ ऐसे शब्द हैं, जो आज भारतकी सभी भाषाओंमें चलते हुए पाये जाते हैं। इन शब्दोंका स्वागत भी हमें उसी उत्साहसे करना चाहिए, जैसा हम आम-फहम (प्रचलित) संस्कृत शब्दोंका करते हैं।

जहां देशी शब्द नहीं मिलते और नये देशी शब्दोंको गढ़नेकी तकलीफ है, वहां उन अंगरेजी शब्दोंको भी, जो लोकमें रूढ़ होनेकी तैयारीमें हैं, ले लेना बेहतर होगा।

जन-समुदायकी भाषा, देहातियोंकी भाषा और पिछड़े हुए लोगोंकी भाषा अलग ही होती है। इनमें न तो शिक्षित समाजके संस्कृत शब्दोंकी भरमार होती है, न अरबी-फारसीके। और जहां जन-समुदायके लोग शिष्ट शब्द लेते भी हैं, वहां वे तुरन्त उनकी सूरत भी बदल देते हैं।

अब सवाल यह उठता है कि जनताके साथ अपना सम्पर्क बढ़ानेके लिए हम संस्कृत शब्दोंका और अन्तरप्रान्तीय एकताका आग्रह छोड़कर देहाती और लोक-सुलभ शब्दोंका ही व्यवहार करें या लोगोंको उनके चिर-परिचित अन्तस्तलमें ही रखकर ऊपर-ऊपरके लोग अन्तरप्रान्तीयताकी ओर बढ़ें।

जनता-युगके इन दिनोंमें हमारी प्रान्तीय भाषायें कालेजोंके युगको छोड़कर लोक-रूढ़ शब्दोंकी ओर जा रही हैं। जनताको सम्राट्का पद देनेकी इच्छा रखनेवाले लोग अब संस्कृत-संस्कृतिसे विमुख होने लगे हैं। और अपनी भाषाका प्रादेशिक रूप बढ़ानेपर तुले हुए हैं। तमाम प्रान्तीय भाषाओंमें अब यह वृत्ति स्पष्ट रूपसे दीख पड़ती है कि आयन्दा बोलचालकी भाषा और साहित्यकी भाषा अलग-अलग न हो। साहित्यिक भाषाको अलग रखनेकी जिद करनेवाले लोगोंको अब हम लोग प्रतिगामी और बूर्ज्वा कहकर उनका अनादर करने लगे हैं। हिन्दीमें आज भी ऐसे लोग हैं, जो बोलचालकी भाषाका तिरस्कार करके अपनी साहित्यिक भाषापर गर्व करते सकुचाते नहीं हैं! चन्द 'साहित्यिक' भाषावाले अपना पण्डिताऊ ढङ्गका प्राण-हीन साहित्य बढ़ाते जाते हैं; किन्तु उनका वह साहित्य लोगों तक पहुंचता ही नहीं, और लोक-समाजके लिए लिखने-वाले लोग संस्कारिताकी और लोक-सेवाकी परवाह न करते हुए लोक-रञ्जन और धनोपार्जनका ही उद्देश्य रखने लगे हैं। इसमें भी अब कुछ-कुछ सुधार हो रहा है, लेकिन भेदकी रेखा अब भी स्पष्ट दीख रही है।

अब सवाल यह है कि इस दशामें राष्ट्र-भाषाका रुख किस ओर रहे? राष्ट्रीय एकताके मानी यदि शिष्ट लोगोंकी एकतासे हो, तब तो हमें कुछ नहीं कहना है। हमें तो जनताकी बोलचालकी भाषा लेकर ही एकताकी प्रतिष्ठा करनी है। किन्तु बोलचालकी भाषामें ही प्रान्तीय भेद सबसे अधिक और सबसे ज्यादा मुश्किल होते हैं। अगर संस्कृत-प्रधान शिष्ट साहित्यको देखें, तो हिन्दुस्तानके किसी भी प्रान्तका साहित्य किसी भी दूसरे प्रान्तके शिक्षित लोग आसानीसे पढ़ सकते हैं। इसमें अगर कुछ भी अड़चन है, तो सिर्फ लिपिकी ही है।

इस सन्दिग्ध अवस्थामें अगर किसीने हमारी सहायता की है, तो भारतवर्षके सन्तोंने। उन्होंने संस्कृत-संस्कृतिको अच्छी तरहसे हजम करके, उसको दुहकर, उसका मक्खन संस्कृत ही के शब्दोंको बिलकुल आसान और लोक-सुलभ बनाकर जनता तक पहुंचा दिया।

और अगर हम सूक्ष्म दृष्टिसे आज देखें, तो वही काम आजके राष्ट्रीय शिक्षक, रचनात्मक कार्य करनेवाले जन-सेवक और कुछ हद तक स्वदेशी वृत्त-विवेचक (पत्रकार) कर रहे हैं।

राष्ट्र-भाषाके सङ्गठनमें हमें अब प्रयत्नपूर्वक इस बातकी तलाश करनी होगी कि भारत-भरकी प्रान्तीय भाषाओंमें बोलचालकी शैलीके कितने शब्द सर्वसाधारणके कामके हैं और ऐसे शब्दोंका ही हमें प्रचार बढ़ाना चाहिए। ये शब्द किस भाषासे आये हैं, इसकी छान-बीन और नाप-तौलका धन्धा हम न करें, हिन्दू-मुस्लिमका झगड़ा भी हम भूल जायें और केवल जन-हित तथा राष्ट्रीय ऐक्यका ही ध्यान रखें।

× × ×

व्यावहारिक जन्म-निरोध। लेखक—श्री ए० ए० खां; एम० एस-सी०; प्रकाशक—भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, बनारस; जिल्द, छपाई-सफाई सुन्दर; पृष्ठ-संख्या ५७१; मूल्य ४)।

प्रस्तुत पुस्तक, जैसा कि इसके नामसे स्पष्ट है, सन्तति-निग्रहके सम्बन्धमें लिखी गयी है। छब्बीस अध्यायोंमें लेखकने जन्म-निरोध, उसका इतिहास, आवश्यकता तथा उसके व्यावहारिक साधन आदिपर प्रकाश डाला है। लेखक इस विषयके अच्छे जानकार मालूम होते हैं। हमारे देशमें, जहां नैतिकताका अर्थ यह समझा जाता है कि ऐसे कितने ही विषयोंको छूना भी पाप है, प्रस्तुत पुस्तकका प्रकाशन एक साहस समझा जायेगा, इसमें सन्देह नहीं। इसीलिए यद्यपि दूसरी भाषाओंमें ऐसी कितनी ही पुस्तकें मौजूद हैं, हिन्दीमें ऐसे विषय अब तक अछूत समझे जाते रहे हैं और उस दशामें, जब कि हरिजनोंके सबसे बड़े हिमायती व्यावहारिक साधनोंसे सन्तति-निग्रह घातक मानते हैं।

पुस्तक सावधानीसे लिखी गयी है और कई चित्रोंको देकर विषयको स्पष्ट करनेकी कोशिश की गयी है; पर कहीं-कहीं पारिभाषिक शब्द ऐसे हैं, जो केवल हिन्दी जाननेवालोंके लिए स्पष्ट नहीं होंगे। यदि इस विषयके विवेचनको ही अश्लील न मान लिया जाय, तो कहना होगा कि लेखककी वर्णनशैलीमें कहीं भी अश्लीलता नहीं आने पायी है और इसका कारण यह है कि लेखकने एकदम वैज्ञानिक विवेचनकी ही ओर ध्यान दिया है और पुस्तकको सनसनीखेज और आकर्षक बनानेके बजाय उपयोगी बनानेका ही ध्यान अधिक रखा है।

पुष्करिणी। लेखक—श्री भगवतीप्रसादजी वाजपेयी; प्रकाशक—इण्डियन प्रेस लि०, प्रयाग; पृष्ठ-संख्या २०० से ऊपर, मूल्य १॥)।

हिन्दी संसारमें जिन कलाकारोंने सुन्दर कलात्मक कहानियां दी हैं, उनमें वाजपेयीजीका भी स्थान है और इस तथ्यसे कौन इनकार करेगा कि उनकी कितनी ही कहानियां काफी ऊंचे धरातलकी हैं।

प्रस्तुत पुस्तक वाजपेयीजीकी १४ कहानियोंका संग्रह है, जिसमें निंदिया लागी, तारा, प्रेमचन्द्र, प्रतिदान, चोर और सूखी लकड़ी आदि हैं। सूखी लकड़ी हमने पहले भी इस पत्रमें ही पढ़ी है और हम मुग्ध रह गये हैं यह देखकर कि वाजपेयीजीने इस 'सूखी लकड़ी' में कितनी सरलता, कितनी प्राण-शक्ति भर दी है। पुष्करिणीकी और भी कितनी ही कहानियां काफी उच्चकोटिकी हैं। हमारा ख्याल है, उनकी और रचनाओंकी भांति ही पुष्करिणी भी समादृत होगी।

———
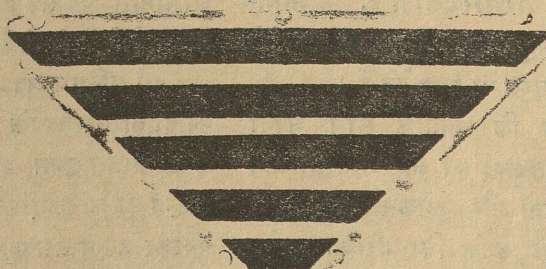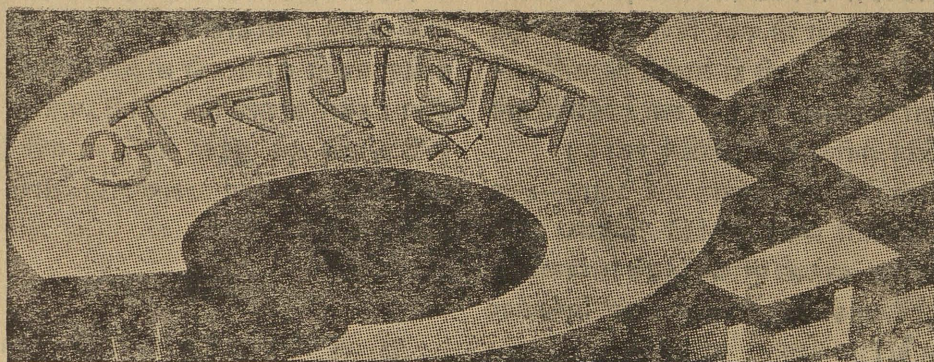
सुदूर पूर्वकी समस्यायें

हिटलर ब्रिटेनके विरुद्ध अपनी कूटनीतिक चालमें व्यस्त है। सोवियट रूस, जापान और इटलीको ब्रिटेनके विरुद्ध खड़ा करनेके लिए तैयार करनेमें लगा है। परन्तु बोलशेविक रूस और इटलीका विरोध अब भी बना हुआ है, अतः वे दोनों मिल नहीं सकते और उधर रूस और जापान चीनमें एकमत कभी भी हो सकेंगे, इसमें सन्देह ही है। इस सम्बन्धमें इस बातकी भी आशङ्का की जाती है कि सुदूर पूर्वकी समस्याओंको वह रूप देनेकी कोशिश की जा रही है, जो ब्रिटेनके हितोंके विरुद्ध जाय। इस सम्बन्धमें 'फार ईस्टर्न सर्विस' लन्दनके एक पत्रकारने कुछ प्रकाश डाला है। यह सज्जन सुदूर पूर्वकी समस्याओंपर प्रामाणिकताके साथ बोलनेवाले कहे जाते हैं। उन्होंने लिखा है:—

यद्यपि चीनमें जापान बुरी तरह उलझा हुआ है, फिर भी राष्ट्रोंके समक्ष वह ऐसी-ऐसी बातें रखता चलता है, जो आकर्षक होती हैं और इसीलिए दूसरे राष्ट्रोंकी चिन्ता बढ़ जाती है। टोकियोके पत्र 'होची शिम्बुन' ने लिखा था कि रूस और जापानमें इस बातका समझौता हो जायगा कि रूस चीनमें जापानकी गुड़िया सरकारको स्वीकार कर लेगा और इसके बदले जापान उत्तरी चीनमें बोलशेविज्मके प्रचारके लिए रूसको अवसर देगा। यद्यपि जापानने बार-बार कहा है कि वह बोलशेविक विचार-धाराको रोकनेके लिए ही चीनमें लड़ रहा है, फिर भी जापान अगर ऐसी सुविधा देनेके लिए तैयार हो जाय, तो इसमें आश्चर्य नहीं हो सकता। पर क्या चीनी कम्यूनिस्ट जापानका विरोध केवल इसीलिए बन्द कर देंगे?

उक्त जापानी लेखकका अनुमान है कि रूस इस शर्तको स्वीकार कर लेगा; परन्तु वह यह बात भूल जाता है कि उक्त अञ्चलोंमें रूसका प्रभाव पहले ही से इतना अधिक है कि जापानके साथ इसके लिए समझौता करनेकी आवश्यकता नहीं है। पिछले दो वर्षोंमें जापानी हरकतोंसे स्पष्ट हो जाता है कि जापान रूससे लड़ाईकी सम्भावनासे डरता है। मञ्चूरियापर जबसे जापानका आधिपत्य हुआ है, तभीसे उसके सीमान्तपर रूसको एक विशाल सेना रखनी पड़ती है और रूसने जापानकी गुड़िया सरकारपर स्वीकृति दी नहीं कि एक विशाल सीमापर उसे अपनी सेना बड़ी सतर्कताके साथ रखनी पड़ेगी। रूस इस बातको जानता है कि जब तक चीनमें जापानके पैर जम नहीं सके हैं, तब तक तो सीमान्तपर होनेवाली घटनायें उतना महत्व नहीं रखतीं, क्योंकि चीनी स्वयं भी उन घटनाओंको विकट नहीं होने देंगे; पर एक बार जापानके पैर जमे नहीं कि रूसके लिए एक कठिन समस्या उपस्थित हो जायगी।

अमेरिका दोनोंका विरोधी

पिछले महायुद्धकी तरह इस युद्धके छिड़नेके साथ-साथ अमेरिकामें तरह-तरहके विचार प्रकट किये जा रहे हैं। अमेरिका युद्धमें भाग लेगा या नहीं, यह आज भी अनुमानका विषय बना हुआ है। इस सम्बन्धमें 'वाल स्ट्रीट जर्नल' न्यूयार्कके सम्पादक टामस उडलाकने अपने विचार प्रकट किये हैं। वाल स्ट्रीट अमेरिकाके उन लोगोंका प्रधान केन्द्र है, जो अमेरिकाको हर हालतमें युद्धसे अलग रखना चाहते हैं। और उक्त पत्रने तो फिनलैण्डको उधार माल तक देनेके

विरुद्ध मत प्रकट किया था। उक्त पत्रके सम्पादकने अमेरिकामें ब्रिटेन-विरोधी मनोवृत्तिका जो वर्णन किया है, उसकी पुष्टि मि० डक कूपरकी इस बातसे भी हो जाती है कि नात्सियोंने अमेरिकामें ऐसा प्रभावशाली प्रचार कर रखा है कि अमेरिकाने जर्मनी और ब्रिटेन दोनोंको एक ही कोटिमें रखा है।

विचार, भावावेश, अन्धविश्वास और अज्ञान—इनके मेलसे उत्पन्न होनेवाली स्थितिका—जिसे 'लोकमत' कहा जाता है—विश्लेषण करनेपर यूरोपीय युद्धके सम्बन्धमें जो प्रतिक्रियायें हुई हैं, उनको लेकर दो-एक मजेदार निष्कर्षोंपर पहुंचना पड़ता है।

पहली बात तो यह है कि आम तौरपर अमेरिकन लोकमत मित्र-शक्तियोंके पक्षमें है और इसका कारण यह है कि पिछले वर्ष जैसी घटनायें होती गयी हैं, उनसे अमेरिकन जनता दङ्ग रह गयी है। हिटलर और स्टैलिनके प्रशंसक उनके गुट्टके बाहर और कहीं नहीं मिल सकते। अमेरिकाकी अधिकांश जनता उनका पतन चाहती है और इस कार्यमें वह औरोंकी सहायता करना चाहती है, बशर्ते कि इसके लिए उसे युद्धमें पड़कर भाग न लेना पड़े।

फिर भी लोकमतको परीक्षा और विश्लेषणके बाद यह तथ्य भी स्पष्ट हो जाता है कि अमेरिकाकी काफी जनता—शायद अमेरिकाके बहुसंख्यक ब्रिटिश-विरोधी भी हैं। यह इन बातोंसे प्रमाणित हो जाता है कि समय-समयपर जनताको "प्रचारोंसे सावधान" रहनेके लिए चेतावनी दी जाती है और ब्रिटेनके पिछले साम्राज्यवादी कारनामोंकी भी आलोचना कम नहीं होती। अक्सर यह आलोचना इस रूपमें होती है, मानो हिटलर जो कुछ कर रहा है, उसका समर्थन किया जा रहा हो और हमें ब्रिटेन और फ्रान्सकी सहायता नहीं करनी चाहिए।

कुछ लोगोंका ख्याल है कि अमेरिकाकी इस मनोवृत्तिके मूलमें यह तथ्य है कि ब्रिटेन हमारा मौलिक शत्रु है। और कुछ लोग जो परम्पराओंमें दृढ़ विश्वास रखते हैं, वे इस बातको भूलते नहीं, बल्कि यह सोचते ही उनकी ब्रिटिश-विरोधी भावनायें और भी उग्र हो जाती हैं।

भावना और बुद्धिमें अन्तर है और बुद्धि जब गणतन्त्र और तानाशाहीके आधारपर इस प्रश्नका निपटारा करना चाहती है, तब हमें यह बात भूलनी नहीं चाहिए कि सरकारोंके रूपसे अधिक आवश्यक बात यह है कि हम उनके भीतरकी चीजें पहचानें। सरकारोंके रूपसे हमें भ्रम नहीं होना चाहिए, यह तो सारतत्त्वको छोड़कर छायाको ग्रहण करना होगा। हमारे जीवनके लिए जितनी बातोंकी आवश्यकता होती है, सभी इस युद्धके खतरेमें आ गयी हैं। पाश्चात्य संस्कृति एवं पाश्चात्य सुव्यवस्थाकी सारी बातें खतरेमें आ गयी हैं।

विश्व-सङ्घ

यूरोपीय महायुद्धके बाद वार्साईकी सन्धिके फलस्वरूप अनेक गणतन्त्रात्मक राज्योंका निर्माण हुआ था, जिनमें कितने ही आज स्वतन्त्र देशके रूपमें नक्शेसे गिर चुके हैं। एक बार फिर पशुबलने जोर मारा और न्यायपर बलकी विजय हुई है। वार्साईकी सन्धि चाहे गणतन्त्र आधारोंपर ही हुई हो; पर संसारमें एक बार युद्धके ध्वंसकारी महादानवको लाकर खड़ा करनेकी जिम्मेदारी जर्मनीपर ही है।

और आज जब जर्मनी गणतन्त्रात्मक राष्ट्रोंसे लड़ रहा है, और इस बातकी जब फिर आशा की जाने लगी है कि युद्धके बाद एक नयी व्यवस्था होगी, तब स्वभावतः संसारके विचारकोंके सामने एक प्रश्न आ गया है कि युद्धकी समाप्तिके बाद हमारे शान्तिके उद्देश्य क्या होंगे। युद्धके उद्देश्य तो वास्तवमें इस शान्तिके उद्देश्यको ही कार्यान्वित करनेके लिए होंगे। अतः वे उद्देश्य अगर ऐसे न हुए जिनसे एक ऐसी व्यवस्थाकी स्थापना हो सके, तो उनके प्रति किसीकी भी सहानुभूति नहीं हो सकती।

इसीलिए युद्धके बाद सदा युद्धकी सम्भावनाओंको समाप्त कर देनेके लिए संसारके विचारक यह सोचने लगे हैं कि एक विश्व-सङ्घकी स्थापना की जाय, जिसके सभी राष्ट्र समानताके पदपर सदस्य हो सकें। पिछले महायुद्धकी समाप्तिके बाद भी ऐसा ही कुछ श्मशान-वैराग्य राजनीतिज्ञोंमें आया था, जिसके फलस्वरूप वर्तमान राष्ट्रसङ्घका जन्म हुआ था। पर राष्ट्रसङ्घ कितना सफल हो सका? राष्ट्रसङ्घसे जितनी आशायें लगायी गयी थीं और जितने राष्ट्रोंका उसे सहयोग मिला और जितना उसकी व्यवस्थाओंपर खर्च किया गया, उसका परिणाम आज किस रूपमें दिखाई पड़ रहा है। राष्ट्रसङ्घ अपने उद्देश्यमें सर्वथा असफल हुआ हो,

ऐसा तो नहीं कह सकते। फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय मामलोंको सुलझानेमें वह सदा विफल रहा है। उसके सामाजिक क्षेत्रके कार्य निश्चय ही प्रशंसनीय हैं; पर राष्ट्रसङ्घोंकी स्थापना इससे बड़े उद्देश्योंको लेकर की गयी थी।

अतः आवश्यकता इस बातकी है कि अगर किसी भी विश्व-सङ्घके बनाये जानेकी योजनापर विचार किया जाय, तो उन कारणोंको समझ लेनेकी आवश्यकता है, जिनसे राष्ट्र-सङ्घ विफल हो गया। और इन कारणोंमें सबसे प्रबल कारण यह रहा है कि राष्ट्रसङ्घके सदस्य राष्ट्रोंको कभी भी समानताका पद नहीं दिया गया। किसी भी विश्व-सङ्घकी कल्पना सार्थक नहीं हो सकती, जब तक संसारके कितने ही देश दूसरे देशोंके पराधीनता-पाशमें बंधे हुए हैं और जब तक सभीको नयी व्यवस्थाओंके अनुसार समानाधिकारके साथ काम करनेकी सुविधा नहीं है, जब तक संसारकी एक बहुत बड़ी संख्याके शोषणके लिए खुला क्षेत्र पड़ा रहेगा और कच्चे माल, प्राकृतिक साधन आदिके लूटनेकी औपनिवेशिक मनो-वृत्ति बनी रहेगी, तब तक विश्व-सङ्घका स्वप्न चरितार्थ होगा, इसमें सन्देह ही है।

भारत—ब्रिटेनका परीक्षास्थल

युद्धके उद्देश्योंको लेकर भारतके सम्बन्धमें लिखते हुए न्यूयार्कके 'न्यू रिपब्लिक' ने लिखा हैः—

विगत महायुद्धके समय ग्रेट ब्रिटेनने भारतको स्वायत्त शासन-प्रणालीकी स्थापनाका वचन दिया था। २० अगस्त १९१७ को तत्कालीन भारत-मन्त्री मि० माण्टेगूने इस सम्बन्धमें एक घोषणा भी की थी और इसके बाद तत्कालीन वायसराय लार्ड चेम्सफोर्डके साथ वे इस योजनाको कार्यान्वित करनेके इरादेसे भारत गये। पिछले २२ वर्षोंके भीतर इस दिशामें जो भी कार्य हुआ है, वह नहींके बराबर ही है। प्रान्तोंमें भारतीयोंको कुछ अधिकार मिले हुए हैं; किन्तु

उनका जिन विषयोंपर नियन्त्रण है, उनकी अपेक्षा वे विषय कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण हैं,जो ब्रिटिश राज्यके लिए सुरक्षित हैं। जिन बहुसंख्यक भारतीयोंको राजनीतिक चेतना प्राप्त है, उनका विश्वास है कि जिस शासन-प्रणालीकी स्थापना की जा रही है, उससे स्वायत्त शासन-प्रणालीकी स्थापना नहीं होती, अतः ब्रिटेनने जो वचन दिया है, उससे उसने विश्वासघात किया है

कांग्रेसके सभी समर्थकोंके मुंहपर तमाचा-सा लगा, जब हाल ही में वायसरायने घोषणा की कि युद्ध जब तक समाप्त नहीं होता, तब तक औपनिवेशिक स्वराज्यका प्रश्न टला रहेगा। पिछले युद्धमें भारतको वचन दिया गया था, जो पूरा नहीं किया गया और इस बार भारतको वचन भी नहीं मिला।

भारत आज गम्भीर और यथार्थ भावनाओंको समझ रहा है। जापानकी साम्राज्यवादी महात्त्वाकांक्षाओं तथा जबर्दस्ती सोवियट रूसमें मिलाये जानेकी सम्भावनाओंसे पिछले वर्षोंमें पूर्ण स्वाधीनताका आन्दोलन प्रभावित हुआ है। लेकिन ब्रिटिश शासन बुरा होते हुए भी भारतीय जापान अथवा रूसी शासनसे इसे बदलना नहीं चाहते। दूसरे शब्दोंमें भारत ब्रिटिश साम्राज्यके अन्तर्गत स्वाधीन पद प्राप्त करना चाहता है। १९१४ में कैसर विल्हेल्मके प्रति शिक्षित भारतीयोंकी जैसी घृणा थी, उससे कहीं अधिक वे हिटलरसे घृणा करते हैं। भारत वास्तवमें युद्धमें भाग लेना चाहता है। ऐसी अवस्थामें वायसरायका यह कह देना कि युद्धके समाप्त होनेके पहले औपनिवेशिक स्वराज्यपर वाद-विवाद नहीं हो हो सकता, भीषण भूल—प्रायः अपराध-सा है। यह बात तब और भी भीषण हो जाती है जब उन्होंने यह बात भी अपनी घोषणामें नहीं कही कि जब तक ऐसा निर्णय नहीं हो जाता, तब तक भारतसे युद्धमें सहायता नहीं ली जायगी। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि भारतीयोंको साम्राज्यके लिए पैसा देने और मरनेके लिए कहा जायगा, पर साम्राज्यके भीतर उन्हें अपने ही मामलोंमें दखल देनेका कोई अधिकार नहीं है।

भारतमें जैसी स्थिति हो रही है, उसका परिणाम तटस्थ देशोंके लोकमतपर पड़ रहा है, यह और भी अशान्तिमूलक बात है। जर्मन प्रचार संसारको यह विश्वास दिला रहा है कि यह युद्ध वास्तवमें आदर्शोंका नहीं, साम्राज्योंका है। इंगलैण्ड वास्तवमें गणतन्त्रके लिए नहीं, अपनी सदियोंकी लूटकी रक्षाके लिए लड़ रहा है।

ब्रिटेन इस बातको स्वीकार नहीं करता, वह कहता है कि वह आदर्शके लिए लड़ रहा है। ऐसी दशामें भारत ब्रिटेनका स्पष्ट परीक्षा-स्थल है। उसके उद्देश्य भारतके प्रति उसके व्यवहारसे स्पष्ट हो जायेंगे। अगर वायसरायके ये शब्द ही अन्तिम शब्द हैं, तब तो संसारको और खासकर अमेरिकाको विश्वास हो जायगा कि जिन उद्देश्योंको लेकर ब्रिटेन लड़नेकी बात कहता है, वे खोखले हैं।

सिर दर्द को
सारिडन
से भगाइये
Saridon
ANALGESIC TABLETS
sabse ज्यादा निरापद और शीघ्र दर्द दूर करनेवाली दवा
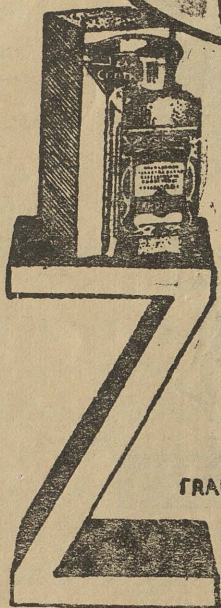
आजाद मुसलिम कान्फरेन्स

दिल्लीमें अप्रैलके अन्तिम सप्ताहमें सिन्धके भूतपूर्व प्रीमियर खां बहादुर अल्लाबख्शकी अध्यक्षतामें होनेवाली आजाद मुसलिम कान्फरेन्स कई दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण कही जायगी। कान्फरेन्समें मुसलमानोंके विभिन्न फिरकों--शिया, सुन्नी, अहरार और मोमिनोंके प्रतिनिधि सारे भारतसे एकत्र हुए थे। और इन प्रतिनिधियोंने पूर्ण स्वाधीनता अपना लक्ष्य घोषित करते हुए भारतकी भौगोलिक अखण्डताका प्रस्ताव—सर्वसम्मतिसे पास किया है। सम्मेलनमें जो प्रस्ताव स्वीकृत किये गये हैं, वे किसी भी समय उपयोगी होते, लेकिन इस समय उनकी उपयोगिता ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। पहला सर्वसम्मतिसे स्वीकृत प्रस्ताव यों है:—

"स्वदेशके लिए पूर्ण स्वाधीनताकी चाहना करनेवाले समस्त प्रान्तोंसे आगत भारतीय मुसलमानोंका यह प्रतिनिधि-सम्मेलन मुसलिम सम्प्रदाय तथा समस्त देशके हितोंका ध्यान रखकर पूर्ण सतर्कतापूर्वक सारे प्रश्नोंका विचार कर इस बातकी घोषणा करता है कि भारत भौगोलिक एवं राजनीतिक सीमाओंसे अखण्ड है। और इस प्रकार यह बिना जाति-धर्मका ध्यान रखे हुए समस्त भारतीयोंकी सम्मिलित निवास-भूमि है।......कान्फरेन्स स्पष्ट जोरदार शब्दोंमें इस बातकी घोषणा कर देना चाहती है कि भारतीय मुसलमानोंका ध्येय पूर्ण स्वाधीनता है और वे इस ध्येयकी पूर्ति जितनी जल्दी हो सके, करना चाहते हैं। इसी उद्देश्यसे उत्साहित होकर उन्होंने त्याग किये हैं।

"कान्फरेन्स स्पष्ट रूपसे जोरदार शब्दोंमें ब्रिटिश साम्राज्यवादके एजेण्टों तथा दूसरे लोगोंके इस निराधार अभियोगका प्रतिवाद कर रही है कि वे भारतीय स्वाधीनताके मार्गमें बाधा हैं और जोरदार घोषणा करती है कि मुसलमान अपने उत्तरदायित्वको समझते हैं और वे यह भी समझते हैं कि देशकी आजादीकी लड़ाईमें पीछे रहना उनकी परम्पराके प्रतिकूल तथा उनके सम्मानके लिए घातक है।"

भावी विधान

भारतके भावी विधानके सम्बन्धमें सम्मेलनने यह प्रस्ताव पास किया:—"कान्फरेन्सकी रायमें भारतका वही भावी शासन-विधान भारतीयोंको स्वीकृत होगा, जो बालिग मताधिकार द्वारा निर्वाचित भारतीयोंकी विधान-परिषद् द्वारा तैयार किया जायगा। इस विधान-परिषद्के मुसलिम सदस्यों द्वारा निश्चित मुसलमानोंके उचित हितोंको संरक्षण प्राप्त होगा और उन हितोंके निश्चित करनेमें दूसरे सम्प्रदायके प्रतिनिधियों अथवा बाहरी व्यक्तियोंको हस्तक्षेप करनेका अधिकार नहीं होगा।"

इस प्रकार भारतकी भौगोलिक और राजनीतिक अखण्डनीयता स्वीकार करनेके बाद आजाद मुसलिम सम्मेलनने इस बातपर भी स्वीकृति दी है कि भावी विधान विधान-परिषद् द्वारा बनाया जाय। वे यह भी अधिकार नहीं चाहते कि भावी विधान तब तक स्वीकार्य न हो, जब तक मुसलमानोंकी स्वीकृति उसपर न हो, जैसा कि मुसलिम लीग कहती है। भारतकी अखण्डनीयतामें उक्त सम्मेलनका कितना विश्वास है, यह एक दूसरे प्रस्तावसे स्पष्ट हो जायगा, जो यों है:—

"इस कान्फरेन्सके विचारानुसार ऐसी कोई भी योजना, जो भारतवर्षको हिन्दू भारत और मुसलिम भारतमें विभाजित करती है, अव्यावहारिक है और आम तौरसे सारे देश तथा खास तौरसे मुसलमानोंके हितके लिए घातक है।

कान्फरेन्स इस बातकी कायल है कि ऐसी योजनाका निश्चित परिणाम यह होगा कि इससे भारतीय स्वाधीनताके मार्गमें अड़चनें पैदा होंगी और ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसका शोषण अपने उद्देश्यकी पूर्तिके लिए करेगा।"

इस प्रस्तावने लाहौरमें स्वीकृत लीगकी पाकिस्तानकी योजनाको देश और खासकर मुसलमानोंके लिए घातक बताया है। सम्मेलनके अध्यक्षने भी उक्त योजनाकी आलोचना करते हुए उसकी अव्यावहारिकता और घातकताको मूर्खता-पूर्ण बताते हुए उसे ठुकराया है और अध्यक्ष भारतकी अखण्डनीयतामें ऐसा क्यों विश्वास करते हैं, उसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है :—

"नौ करोड़ भारतीय मुसलमानोंमेंसे बहुत अधिक भारतके पहले निवासियोंके वंशज हैं और वे उसी प्रकार इस देशकी सन्तान हैं, जैसे द्रविड़ और आर्य। उन्हींकी तरह उन्हें अपनी गणना सबोंकी इस भूमिके आदि निवासियोंमें करानेका अधिकार है। विभिन्न देशोंके निवासी केवल धर्म परिवर्तन करनेसे ही अपनी राष्ट्रीयतासे वञ्चित नहीं हो जाते......हमारे धर्म कुछ भी क्यों न हों, हमें अपने देशके भीतर पूरे मेल-जोलके वातावरणमें रहना चाहिए और हमारे आपसके सम्बन्ध वैसे ही होने चाहिए, जैसे कि संयुक्त परिवारके कई भाइयोंके होते हैं।"

आजाद मुसलिम कान्फरेन्सने एक अत्यन्त राजनीतिक महत्त्वके समय यह बात प्रमाणित की है कि मुसलिम लीगका भारतके समस्त मुसलमानोंका प्रतिनिधित्व करनेका दावा कितना गलत है। और जैसा कि सम्मेलनके अध्यक्षने कहा है, स्थानीय सभाओंमें भाषण करनेके अतिरिक्त लीग किसीका प्रतिनिधित्व नहीं करती। फिर भी कौन नहीं जानता कि मुसलिम लीग इस समय किन राजनीतिक आवश्यकताओंके कारण प्रतिनिधि संस्था मान ली गयी है। और इन्हीं कारणोंसे आजाद मुसलिम कान्फरेन्सके निर्णयोंके महत्त्वको कम करनेकी कोशिश भी की जायगी। पर उक्त सम्मेलनने मुसलिम सम्प्रदायको ऐसे समय सही नेतृत्व देनेका प्रयत्न किया है, जिस समय इसकी सख्त जरूरत थी।

पार्लमेण्टमें भारत

ब्रिटिश पार्लमेण्टमें, जिसे भारतके भाग्य-निर्णयका अधिकार प्राप्त है और जिसमें भारतका प्रतिनिधित्व करनेके लिए किसी भारतीयकी आवश्यकता नहीं समझी जाती, भारतके सम्बन्धमें पिछले दिनों फिर स्थितिका स्पष्टीकरण किया गया है। हाउस आव कामन्सके विवादमें सरकारी वक्तव्यसे दो बातें स्पष्ट होती हैं—(१) भारतको जो कुछ राजनीतिक अधिकार मिलनेवाले हैं, वे अभी नहीं मिल सकते; कब मिलेंगे, इसके लिए भी अवधि निश्चित नहीं की जा सकती और विधान-निर्माणके लिए कांग्रेस द्वारा प्रस्तावित विधान-परिषद्को पूर्णाधिकार नहीं दिया जा सकता और (२) यदि कांग्रेसने सत्याग्रह आन्दोलन छेड़ा, तो उसे दबाया जायगा।

हाउस आव लार्ड्समें भारत-मन्त्री लार्ड जेटलैण्डने जो वक्तव्य दिया है, उसमें उन्होंने एक खास बात कही है। सदाकी भांति उन्होंने केवल अल्पसंख्यकोंका ही सहारा नहीं लिया, बल्कि उन्होंने यह भी कहा कि भारतके विधान-निर्माणका सारा भार केवल भारतीयोंको ही नहीं दिया जा सकता। २०० वर्षोंसे ब्रिटेनका भारतके साथ जो सम्बन्ध रहा है, उस इतिहासको मिटाया नहीं जा सकता।

इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि कांग्रेसकी विधान-परिषद्की मांग—भारतीयोंको भारतके भाग्य-निर्णयका अधिकार नहीं दिया जा सकता, और साथ ही जो भी नया विधान बनाया जायगा, उसके निर्माणमें ब्रिटेनका हिस्सा रहेगा और यह केवल इसलिए नहीं कि अल्पसंख्यकोंके प्रति ब्रिटेनकी खास जिम्मेदारियां हैं, जैसा कि अब तक कहा जाता रहा है, बल्कि इसलिए भी कि ब्रिटेनका भारतपर शासन रहा है। अतः ब्रिटेन भारतको भाग्य-निर्णय नहीं करने देगा, ऐसी कोई भी योजना ब्रिटेनकी सहायतासे बनेगी और ऐसा करनेका उसे अधिकार है। लार्ड जेटलैण्डके इन शब्दोंमें प्रच्छन्न ब्रिटिश कूटनीति इतनी स्पष्ट हो चली है कि इसके लिए उनकी सराहना करनी पड़ती है। वास्तवमें ब्रिटेनकी यह मनोवृत्ति और उसके साम्राज्यवादी हित विधान-परिषद्की मांगकी अस्वीकृतिके मूलमें हैं। और इसीलिए अल्पसंख्यकों द्वारा इस मांगका विरोध न होनेपर भी ब्रिटेन इसे स्वीकार न करता। राष्ट्रवादी भारत इस तथ्यको जितनी जल्दी और जितनी स्पष्टतासे समझ ले, उतना ही अच्छा है।

स्वाधीन भारत और देशी राज्य

श्री जयप्रकाशनारायणने गांधीजीके पास रामगढ़ कांग्रेसके पहले एक प्रस्तावका मसविदा भेजा था, जिसमें

उन्होंने स्वाधीन भारतके रूपकी कल्पना की थी और इसपर गांधीजीका मत चाहा था। गांधीजीने अब अपने मत सहित प्रस्ताव प्रकाशित कर दिया है। उसके अनुसार साधारण तौरपर कहा जा सकता है कि देशमें समाजवादी सरकारकी स्थापना होगी। इसके साथ ही देशी राज्योंके सम्बन्धमें उन्होंने लिखा था :—

"देशी राज्योंमें सम्पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक सरकारें स्थापित होंगी और नागरिकोंकी समताके तथा सामाजिक भेद-भावोंको मिटानेके सिद्धान्तके अनुसार राजाओं और नवाबोंके रूपमें देशी रियासतोंमें कोई नामधारी शासक नहीं रहेंगे।......कांग्रेसके सामने देशकी शासन-व्यवस्थाका यही चित्र है और इसीको स्थापित करनेका वह यत्न करेगी।"

गांधीजीने इस मसविदेपर अपनी राय देते हुए कहा है—"यद्यपि अहिंसाकी दृष्टिसे श्री जयप्रकाशकी सूचनाओंका सामान्य समर्थन करनेमें मुझे कोई कठिनाई नहीं मालूम होती, तो भी मैं राजाओंके सम्बन्धमें उनकी सूचनाका समर्थन नहीं कर सकता। कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतन्त्र हैं। यह सच है कि उनकी स्वतन्त्रताका कोई विशेष मूल्य नहीं है, क्योंकि एक प्रबल शक्ति उनका संरक्षण करती है। लेकिन हमारे मुकाबलेमें वे अपनी स्वतन्त्रताका दावा कर सकते हैं। श्री जयप्रकाशकी प्रस्तावित सूचनाओंमें जो बातें कही गयी हैं, उनके अनुसार अहिंसात्मक साधनों द्वारा हम स्वतन्त्र हो जायें, तो उस हालतमें मैं ऐसे किसी समझौतेकी कल्पना नहीं करता, जिसमें राजा लोग अपनेको खुद ही मिटानेको तैयार होंगे। समझौता किसी भी तरहका क्यों न हो, राष्ट्रको उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा। इसलिए मैं तो सिर्फ ऐसे समझौतेकी ही कल्पना कर सकता हूं, जिसमें बड़ी-बड़ी रियासतें अपने दर्जेको कायम रखेंगी।"

स्वाधीन भारतमें "बड़ी-बड़ी रियासतें अपने दर्जेको कायम रखेंगी", यह स्पष्टतः विवादग्रस्त विषय है। पर इसपर हम कुछ न कहकर उन आधारोंपर ही कुछ कहना चाहते हैं। "कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतन्त्र हैं" यह गांधीजी कहते हैं; पर जिस कानूनकी दृष्टिसे वे स्वतन्त्र हैं, उसमें क्या गांधीजी संशोधनकी आवश्यकता नहीं समझते और क्या यह सच नहीं है कि कितने ही राज्योंका निर्माण एक दूसरी शक्तिने किया है और इसी शक्तिके विरुद्ध भारतका अहिंसात्मक आन्दोलन है। गांधीजीने पिछले दिनों इस शक्तिके चार स्तम्भोंमें देशी राज्योंको भी एक स्तम्भ माना था। अतः प्रश्न यह है कि जिन सन्धि-पत्रोंके आधारपर वे स्वतन्त्र हैं, उनका वैधानिक मूल्य ही कितना रह जाता है, जब उनके साथ सन्धि करनेवाली दूसरी पार्टीके ही स्थायित्वकी कल्पना आप नहीं करते। जिस सन्धिपर स्वाधीन भारतकी स्वीकृति न हो, उसे स्वाधीन भारतपर माननेकी नियमानुकूल कोई जिम्मेदारी नहीं होनी चाहिए। भारतपर लिये गये ऋणके विरुद्ध भी यही तर्क था और इसीलिए उसके विरुद्ध लोकमत था, जिसका निर्णय किसी निष्पक्ष अदालत द्वारा हो, यह बात स्वीकृत की गयी थी। देशी राज्योंको लेकर जो सन्धियां हुई हैं, उनमें (१) सन्धि जिस शक्तिने की, उसपर ही उसकी रक्षाकी जिम्मेदारी है और यह जिम्मेदारी वह निभाती जा रही है और (२) सन्धि क्यों की गयी, उसका उद्देश्य और शर्तें क्या रहीं, यह भी विचारनेका प्रश्न है। इन उद्देश्योंको अगर भारतके हितोंके अनुकूल न माना जाय और शर्तें नवीन परिस्थितियोंमें हानिकर हों, तो भी उनका पालन केवल इसलिए करना वैधानिक दृष्टिकोणसे भी कहां तक वाञ्छनीय होगा, इस प्रश्नकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। "समझौता किसी भी तरहका क्यों न हो, राष्ट्रको उसका पूरा-पूरा पालन करना ही होगा!" लेकिन यह "किसी तरहका भी समझौता" किसके द्वारा हो? दूसरे व्यक्तियों द्वारा किये गये समझौते भी? इसे तो विधानकी दृष्टिसे भी माननेके लिए आप बाध्य नहीं हैं। "हमारे मुकाबले वे स्वाधीनताका दावा कर सकते हैं" पर अपनी प्रजाके मुकाबले वे किस बातका दावा करेंगे? वह पूर्ण प्रजातन्त्रात्मक राज्यकी स्थापना करना चाहे, जैसा कि कितने ही यूरोपीय राष्ट्रोंमें हुआ है, और यह सब अहिंसात्मक उपायोंसे ही हो, तो भी गांधीजी-को क्या इसमें आपत्ति हो सकती है? और उस हालतमें, जब गांधीजी जनताके अन्तिम राजनीतिक सत्ताके निर्णयका अधिकार स्वीकार करते हैं? जिस विधान-परिषद्के निर्णयसे वे ब्रिटिश साम्राज्यवादपर विजय प्राप्त करना चाहते हैं, वही अधिकार क्या वे देशी राज्योंकी प्रजाको नहीं देना चाहते?

युद्धका रङ्गमञ्च

युद्धके रङ्गमञ्चके और भी विस्तृत होनेकी सम्भावनायें प्रबल हैं और स्कैण्डीनेवियन तथा बाल्कन प्रदेशोंमें युद्धकी जो चिनगारियां दिखाई पड़ी हैं, उनसे युद्धकी आग भड़केगी, इसके सम्बन्धमें हमने पिछली बार लिखा था और तबसे घटनाओंने इस तथ्यको और भी स्पष्ट किया है। वसन्त-कालमें पश्चिमी मोर्चेपर युद्धके सङ्गीन होनेकी प्रतीक्षा मित्र-शक्तियां कर रही थीं; परन्तु जर्मनीने फिर चक्रमेमें डालकर डेनमार्क और नारवेपर आक्रमण कर दिया। आक्रमणके कुछ दिनों पूर्व ब्रिटेन उत्तरी सागरमें सुरङ्गें बिछा रहा था, फिर भी जर्मनी जिस गतिसे वहां पहुंचा है, उससे मित्र-शक्तियोंको कितना आश्चर्य हुआ है, यह समय-समयपर दिये गये उनके राजनीतिज्ञोंके वक्तव्योंसे स्पष्ट हो जाता है।

उत्तरी यूरोपमें जर्मनीके इस आक्रमणके साथ अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी उलझनें और भी बढ़ी हैं और इटली और टर्कीने जैसी प्रगति दिखायी है, उससे पिछले दिनों भूमध्यसागरको लेकर भी आशङ्कायें बढ़ने लगी थीं। उस अञ्चलको अब भी खतरेकी सम्भावनाओंसे रहित नहीं समझा जा सकता। भूमध्यसागरको लेकर ब्रिटेन और इटलीका मनोमालिन्य पहलेसे रहा है और इधर इटैलियन प्रेसमें जैसी बातें आयी हैं, उनसे इटलीका विक्षोभ स्पष्ट होता है।

और इधर रूसकी गति-विधि फिर एक बार अस्पष्ट हो चली है। जर्मनी जब उधर व्यस्त है, तब रूस रूमानिया तथा दूसरे देशोंसे समझौतेकी चर्चामें लगा है। यह समझौतेकी चर्चा युद्धके पहलेकी एक 'टेक्निक' के रूपमें पिछले दिनोंसे स्पष्ट होती आयी है। इटली उधर बाल्कन प्रान्तोंके प्रतिनिधियों-का एक सम्मेलन बुला रहा है और रूस तथा इटली उक्त अञ्चलोंको लेकर सदा परस्पर-विरोधी आकांक्षायें पालते आ रहे हैं। अतः उक्त अञ्चलोंकी सम्भावनाओंकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

अमेरिका चीनमें अपने हितोंकी हानि उठाकर भी चीन-जापान-युद्धसे अलग रहा है और वर्तमान युद्धमें भी वह तटस्थ रहनेकी नीतिकी घोषणा कर चुका है। पर डच इण्डीजको लेकर जापानने जैसा मनोभाव प्रकट किया है, और उसका उत्तर कार्डेल हलने अमेरिकासे जैसा दिया है, उन सबको देखते हुए अमेरिका और जापानके मनोभावोंमें विरोध बढ़नेके कारण उत्पन्न हो गये हैं और ये घटनायें यूरोपीय युद्धके साथ-साथ अधिक सम्भावनाओंसे भरी दिखाई पड़ें, तो आश्चर्य नहीं करना चाहिए।

इन सारी अवस्थाओंमें अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितिकी उल-झनें पिछले दिनों बढ़ी हैं और उनकी सम्भावनायें काफी खतरनाक प्रतीत हो रही हैं।

लन्दनमें हिन्दुस्तानी भवन

भारत और ब्रिटेनमें सद्भाव स्थापित करनेवालोंके प्रयत्नसे लन्दनमें एक हिन्दुस्तानी हाउसकी स्थापना हुई है। हिन्दुस्तानियोंको अब भी रङ्गभेदके कारण लन्दनके कितने ही होटलोंमें प्रवेश नहीं करने दिया जाता और उनके साथ अछूतोंका-सा व्यवहार किया जाता है। अभी पिछले दिनों कई भारतीयोंने अपने भ्रमण-वृत्तान्तोंमें इस प्रकारके अपमान-जनक व्यवहारका उल्लेख किया था। रङ्गभेदके कारण शासक जातिके लोगोंकी इस मनोवृत्तिसे आज जैसी अशान्ति मची हुई है, वह तथा उसके परिणाम किसीपर अस्पष्ट नहीं हैं। शासक और शासितकी मनोवृत्ति भी है, जो दोनों जातियोंमें सम्पर्क बढ़नेके मार्गमें बाधा है। भारत और ब्रिटेनकी सामाजिक ही नहीं, राजनीतिक समस्याओंकी जटिलता भी बहुत कुछ ऐसे प्रयत्नोंसे सुलझ सकती है; क्योंकि दुर्भाग्यवश राष्ट्रके लिए महान् प्रश्नोंपर भी दोनोंके दृष्टिकोणोंमें—परिस्थितिको ठीक रूपसे न समझनेके कारण महान् अन्तर हो जाया करता है। अतः लन्दनका हिन्दुस्तानी हाउस इन मनोवृत्तियोंके निवारणमें प्रयत्नशील और सफल हो सके, तो निश्चय ही यह उसकी महान् सफलता होगी। इसलिए हम इस हिन्दुस्तानी भवन सम्बन्धी प्रयत्नकी सराहना करते और इसकी सफलता चाहते हैं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन

अखिल भारतवर्षीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलनका अगला अधिवेशन इसी मईके चौथे सप्ताहमें होनेके लिए श्री काका कालेलकरने पूनेमें निमन्त्रित किया था; पर अब उन्होंने सम्मे-लनके प्रधानमन्त्रीके पास तार भेजकर अपना निमन्त्रण वापस

ले लिया है। इसका कारण पूनाका सम्मेलन-विरोधी वाता-वरण बताया जाता है। इस तारके बाद सम्मेलनके प्रधान-मन्त्रीने वक्तव्य देते हुए कहा है कि "सम्मेलनके अधिकारी परिस्थितिपर विचार कर रहे हैं।" उधर पूना अधिवेशनके लिए जिस स्वागत-समितिका निर्वाचन हुआ है, उसके अध्यक्ष श्री वैशम्पायनने श्री कालेलकरके निमन्त्रण वापस लेनेकी बात-को दुःखद बताते हुए कहा है कि अधिवेशनकी तैयारियां हो रही हैं। कालेलकरजीने सम्मेलनके भूतपूर्व अध्यक्ष श्री बाबू-राव विष्णु पराड़करके पास एक पत्र भेजा था, जो प्रकाशित किया जा चुका है। उसमें उनका कहना है कि सम्मे-लनको अगर पूनामें किया गया, तो इससे उसे क्षति पहुंचेगी।

इन सारी बातोंके आधारपर यह निष्कर्ष निकालना जरा कठिन है कि वास्तवमें स्थिति क्या है; पर पूनाका वातावरण सम्मेलनके अनुकूल नहीं है, यह बात हमें बहुत देरसे और स्वागत-समितिके निर्वाचन-परिणाम जान लेनेके बाद कालेलकरजीने सुनायी है और अभी अप्रैलके प्रारम्भ तक सम्मेलनके अध्यक्ष-पदके लिए वे श्री सम्पूर्णानन्दके लिए प्रयत्न करते रहे हैं। अपने पत्रोंमें ही नहीं, दूसरे पत्रोंमें भी इसके लिए उनकी अपीलें निकलती रही हैं। स्वागताध्यक्ष-पदके लिए चुपचाप सम्भवतः स्वागत-समितिसे परामर्श लिये बिना ही उन्होंने श्री बालासाहब खेरके स्वागताध्यक्ष बनानेकी बात कह दी थी, श्री सम्पूर्णानन्दने पत्रोंमें अपनी उम्मेद-वारीके विरुद्ध मतामत देखनेके बाद भी चुनावसे अलग रहने-की इच्छा नहीं जाहिर की थी, तो अकस्मात् अधिवेशनके एक महीने पहले स्वागत-समितिके पदाधिकारियोंके निर्वाचन-परिणामके बाद कालेलकरजीका निमन्त्रण वापस ले लेना और तत्काल श्री सम्पूर्णानन्दजीका निर्वाचन लड़नेसे इनकार कर देना, और फिर 'मरहट्टा'-सम्पादक श्री केतकर तथा कुछ दूसरे व्यक्तियोंका यह कहना कि राजनीतिक कारणोंसे 'हिन्दी' के स्थानपर, जिसके लिए सम्मेलन अब तक काम करता रहा है, एक दलका 'हिन्दी' याने हिन्दुस्तानीके लिए प्रयत्न करनेका विरोध और इसी दलके हाथसे स्वागत-समितिका अधिकार निकल जाना—ये सब बातें स्पष्ट करती हैं कि पूनाका वातावरण वास्तवमें सम्मेलन-विरोधी नहीं, बल्कि एक खास दल तथा उसकी भाषा-सम्बन्धी विचार-धाराका विरोधी है। अतः इस सम्बन्धमें कालेलकरजीका वक्तव्य सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता।

कालेलकरजीने सम्मेलनको निमन्त्रण दिया था, वह व्यक्तिगत न था—था पूनाकी ओरसे और पूना अधिवेशनकी स्वागत-समितिमें उनका बहुमत न हो सकना ही—यदि वास्तवमें भीतर और बातें न हों,जो प्रकाशमें नहीं आयी हैं—सम्मेलन-विरोधी वातावरण नहीं कहा जा सकेगा। दूसरा प्रश्न है हिन्दी, हिन्दुस्तानीका, सो यह अखिल भारतीय प्रश्न है और सम्मेलनका जो भी निर्णय होगा, वह अखिल भारतीय होगा, सम्मेलनकी स्वागत-समितिका चाहे इसपर जो भी मत हो, इसका निर्णय तो सम्मेलनमें उपस्थित प्रतिनिधि करेंगे। अतः इस आधारपर भी निमन्त्रण वापस लेना युक्तिसङ्गत नहीं। यद्यपि साहित्य-सम्मेलनमें इस प्रकारकी दलबन्दी नितान्त अवाञ्छनीय है; पर जब स्पष्ट रूपसे एक दल—वह कोई भी हो—कुछ खास व्यक्तियोंके पक्षमें प्रचार कर, लोकमत उसके पक्षमें लाना चाहेगा, तब इन्हीं उपायों द्वारा दूसरोंके इन प्रयत्नों और इन प्रयत्नोंकी सफलताओंकी निन्दा यह नहीं कर सकता। पिछले कई वर्षोंसे दलबन्दीका यह रूप सम्मेलन-अधिवेशनोंको लेकर नहीं दिखाई पड़ा है, यह कौन कह सकता है? कौन कह सकता है कि सम्मेलनोंके उच्चासनोंपर ऐसे-ऐसे व्यक्ति भी यदा-कदा—साहित्यिक कारणोंके अतिरिक्त दूसरे कारणोंसे ही—नहीं बैठाये गये और काफी प्रचार करनेके बाद—जिससे कितने ही लोगोंको सन्तोष नहीं हुआ है, फिर भी इन घटनाओंकी उपेक्षा की गयी है। अतः यह दलबन्दी अवाञ्छनीय होते हुए भी रही है, और पूना अधिवेशनको लेकर जो परिस्थितियां उत्पन्न हो गयी हैं, वे अप्रत्याशित भले ही दीख रही हों; पर वास्तवमें वे ऐसी हैं नहीं। अतः सम्मेलनके अधिकारियोंको कुछ भी अन्तिम निश्चय करनेके पहले परिस्थितिकी वास्तविकताओंको उनके वास्तविक रूपमें ही देखना चाहिए। सम्मेलनका इस समय और इन कारणोंसे स्थगित करना अथवा दूसरे स्थान-पर करना—जहांके लिए भी कोई विश्वास नहीं दिला सकता कि दल-विशेषके हाथमें ही शक्ति रहेगी और दल-विशेषके ही चुने हुए व्यक्ति पदारूढ़ हो सकेंगे, किसीके लिए भी असम्भव है—कहां तक तर्कयुक्त एवं नियमानुकूल होगा, ये प्रश्न हैं, जिनको सम्मेलनके अधिकारी अन्तिम निश्चय करते हुए

ध्यानमें रखेंगे, ऐसी आशा है। सम्मेलनके अधिकारियोंने सूचित किया है कि उनका निश्चय समयानुसार जनताके लिए प्रकाशित कर दिया जायगा। अच्छा हो कि इस सम्बन्धमें सारी वास्तविक परिस्थितियों एवं तथ्योंको—अगर वे हों—बताने लिए भी जनताका विश्वास लिया जाय।

कोई कार्यक्रम नहीं ?

जिन लोगोंने यह समझा था कि मन्त्रित्व पदसे त्याग-पत्र देनेके बाद कांग्रेसका दूसरा कदम भद्र अवज्ञा आन्दोलन होगा, उन्हें महायुद्धके आठ महीने चलते रहनेके बाद भी गांधीजीके समय-समयपर विभिन्न कारणोंसे आन्दोलन टालते रहनेसे इस बातकी आशङ्का होने लगी है कि फिलहाल आन्दोलनकी कोई सम्भावना नहीं है। पहले देश तैयार न था और मुसलिम लीग द्वारा विरोध होनेकी आशङ्का थी, कांग्रेसकी आन्तरिक दुर्बलतायें और अनुशासनकी प्रवृत्तियां भी थीं, जिनके कारण आन्दोलन छेड़नेमें कठिनाई थी। और अब खाकसार आन्दोलनसे वे घबराये हुए दिखाई पड़ते हैं। चर्खे और खादीकी शर्त पूरी करनेमें तो कांग्रेसजन गांधीजीकी आज्ञा पालन कर सकते थे; परन्तु खाकसार आन्दोलन तथा दूसरे अ-कांग्रेसी आन्दोलनोंपर कांग्रेसजनोंका अधिकार क्या हो सकता है ? देशकी स्वाधीनताका आन्दोलन छेड़ने और न छेड़नेका जब सारा उत्तरदायित्व कांग्रेसने गांधीजीपर छोड़ रखा है, और वे कुछ शर्तोंपर ही नेतृत्व करनेपर तैयार हैं, तब उनकी शर्तें मान्य होनी चाहिए; पर ये शर्तें केवल कांग्रेसजनोंके लिए ही हो सकती हैं। अतः दूसरी संस्थाओंके शान्त हुए बिना अगर आन्दोलन नहीं छिड़ता, तो निकट भविष्यमें इसकी कोई सम्भावना नहीं होनी चाहिए। क्योंकि भारतकी वर्तमान अवस्थामें हमें इस बातकी आशा नहीं है कि देशके सभी दल आन्दोलनका समर्थन तो क्या, उसका विरोध भी नहीं करेंगे। इस बातकी पुष्टि इस बातसे भी हो जाती है, जब गांधीजी कहते हैं कि कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटीने जो प्रस्ताव पास किया है, उसके अतिरिक्त और कुछ वह कर नहीं सकती थी; क्योंकि उसके सामने कोई कार्यक्रम न था।

दीनबन्धु एण्डरूजका स्वर्गवास

दीनबन्धु सी० एफ० एण्डरूजकी मृत्यु विगत ५ अप्रैलको हो गयी। उनकी मृत्युसे वास्तवमें दीनोंका एक बन्धु उठ गया। एण्डरूजने भारतको ही अपना देश मान लिया था और सदा इसके हितोंके अनुकूल ही कार्य करते रहे। यह उन्हींके हृदयकी महत्ता थी कि उन्होंने अपना सारा जीवन ही दरिद्र नारायणकी सेवामें अर्पित कर दिया था। सेवाकी सच्ची भावनायें उनमें कितनी थीं और ख्यातिसे वे कितनी दूर रहते थे, इसका पता इसीसे लगता है कि उन्होंने सदा अपना समय और शक्ति ऐसे कार्योंमें लगायी, जिनकी ओर बहुतोंका ध्यान तक नहीं जाता था। प्रवासी भारतीयोंकी उनकी सेवा सदा स्मरणीय रहेगी। उनकी मृत्युसे भारतने अपना एक महान् हितैषी खो दिया। यह ऐसी क्षति है, जिसकी पूर्ति निकट भविष्यमें हो सकेगी, यह कहना कठिन है। वे सच्चे अर्थोंमें ईसाई और मानवताके उपासक थे। और इतने लोकप्रिय कि उनकी मृत्युसे सभी सम्प्रदायोंको आन्तरिक पीड़ा हुई है। ऐसी पवित्रात्माको प्रभुकी गोदमें शान्ति मिलेगी, इसमें सन्देह नहीं।

'विश्वमित्र' प्रेस, १४।१ए, शम्भू चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्तासे पं० मातासेवक पाठक द्वारा मुद्रित और प्रकाशित।
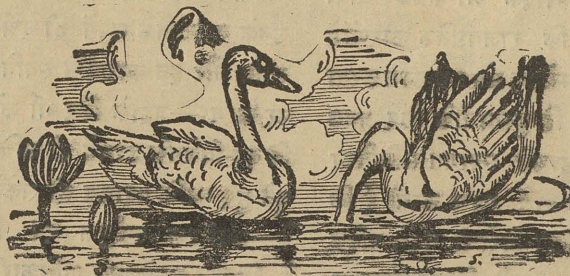
जितने साबुन मैं जानती हूं उन में से
सनलाइट् साबुन
निःसन्देह कपड़े अधिक साफ धोता है ॥

मेरे कपड़े सदा ही धुलाई के पीछे कुछ मैले से और धूसर दिखाई पड़ते थे। तब मेरी एक सहेली ने मुझे सनलाइट् साबुन का समाचार दिया। उसने बताया की कच्चे साबुन उड़ाऊ होते हैं क्योंकि उन में से मैल काटने वाली फेन बहुत कम निकलती है और कपड़े साबुन की फेन ही से साफ होते हैं ॥

सनलाइट् साबुन से बहुत ज्यादा फेन निकलती है और सनलाइट् से धुले हुए कपड़े वास्तव में साफ होते हैं ॥

सनलाइट साबुन

भारतवर्ष में केवल शुद्ध वनस्पति तैलों से तय्यार होता है ॥

असली सनलाइट् साबुन केवल इन गत्ते के डिब्बों में बिकता है ॥

LEVER BROTHERS (INDIA) LIMITED

16-95 HI